Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाकवि कालिदास

द्वितीय खण्ड

(कृतियों का साहित्यशास्त्रीय समीक्षण)

दयालु अग्निहोत्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

2 महाकवि कालिदास डॉ० प्रभुदयालु अग्निहोत्री

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

महाकवि कालिदास के इस द्वितीय खण्ड में कवि के साहित्यिक अवदान का शास्त्रीय दृष्टि से समीक्षण है। इसमें उनकी सौन्दर्य दृष्टि पर, जिसके अन्तर्गत पुरुष, स्त्री, वन, पर्वत, नदी, समुद्र, ऋतु, काल, स्थान आदि सभी का सौन्दर्य समाहित है, व्यापक चर्चा है। दोनों प्रसिद्ध विलाप-वर्णनों पर दृष्टि निक्षेप है और है उनकी रचनाओं को आधार बनाकर काव्यगत रीति, गुणों और दोषों का सोदाहरण विवेचन। ऐसा करते समय सभी प्रमुख आचार्यों की मान्यताओं का ध्यान रखा गया है। इसी प्रकार व्यापक परिप्रेक्ष्य में रस, अलंकार, भाषा, शैली आदि की दृष्टि से उन की कृतियों की समीक्षा की गयी है और उन माप दण्डों से भी परखा गया है जिनकी ओर समीक्षकों का ध्यान नहीं गया। तीनों रूपकों पर काव्यात्मक विहंग दृष्टि डाली गयी है। अन्त में कवि की प्रसिद्धि की हेतुभूत उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं पर विचार और उनके अति प्रसिद्ध अर्थान्तरन्यासों और सुभाषितों की लम्बी सूची भी दे दी गई है।

मूल्य रु० ४५०-००

I.S.B.N : 81-86339-55-8

I.S.B.N : 81-86339-57-4 (3 Vol. Set)

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

13485

113485
विद्यालय
सदस्य संख्या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

R
83
362.2

113485

R 83/362.2 पुस्तकालय 113485
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
विषय संख्या ______ आगत नं० ______
लेखक महाकवि कालिदास ग्रं० (2)
शीर्षक ______

दिनांक	सदस्य संख्या	दिनांक	सदस्य संख्या

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
कृपया पुस्तक के ऊपर कोई निशान आदि न लगायें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

R
४३
३६२.२

पुस्तकालय

गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

113485

वर्ग संख्या............ आगत संख्या............

पुस्तक-विवरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित ३०वें दिन तक यह पुस्तक पुस्तकालय में वापिस आ जानी चाहिए अन्यथा ५० पैसे प्रति दिन के हिसाब से विलम्ब-दण्ड लगेगा।

4 JUN 2004

R [illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाकवि कालिदास

द्वितीय खण्ड

(कृतियों का साहित्यशास्त्रीय समीक्षण)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri 113485

महाकवि कालिदास

(द्वितीय खण्ड)

113485

113485

लेखक

डॉ. प्रभुदयालु अग्निहोत्री

पुस्तकालय
पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

BOOK EASTERN EBL LINKERS

ईस्टर्न बुक लिंकर्स

दिल्ली: (भारत)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाशक :
ईस्टर्न बुक लिंकर्स
५८२५, न्यू चन्द्रावल, जवाहर नगर
दिल्ली-११०००७

R
43
362.2

© लेखक

प्रथम संस्करण १९९८

मूल्य रु० : 450.00

I.S.B.N : 81-86339-55-8
I.S.B.N : 81-86339-57-4 (3 Vol. Set)

अक्षरयोजक तथा मुद्रक :
यूनीक प्रिंट मीडिया
८/२५-ए, विजय नगर, दिल्ली-११०००९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रस्तावना

'महाकवि कालिदास' के प्रथम खण्ड में कवि के काल और स्थान से सम्बन्धित उलझे और विवादास्पद प्रश्नों के साथ उनकी कृतियों से जुड़े कुछ जटिल प्रश्नों के समाधान का प्रयत्न किया गया था। उन प्रश्नों में 'ऋतु' संहार का कर्ता कौन ?, मालविकाग्नि की काटयवेम टीका से उठी शंकायें, रामगिरि की स्थिति, और आषाढस्य प्रथम दिवसे या प्रथम दिवसे पाठ की विश्वसनीयता जैसे प्रश्न प्रमुख थे। ग्रन्थ के अन्तिम भाग में महाकवि की कृतियों से भी पाठकों का परिचय करा दिया गया था।

प्रस्तुत खण्ड में कालिदास के साहित्यिक अवदान का मूल्यांकन है। उनकी सातों कृतियों का पारम्परिक किन्तु उसके साथ ही यत्र तत्र परम्परा हटकर भी शास्त्रीय विश्लेषण है। कालिदास मूलतः सुकुमार, सौन्दर्य के कवि थे। सृष्टि में सजीव या निर्जीव जो भी सुन्दर लगा, उसे किसी न किसी व्याज से उन्होंने लेखनी का विषय बनाया और इस प्रकार चित्रित किया कि वह अपने मूल रूप से भी कहीं अधिक भव्य और मनोमोहक दिखने लगा। उनकी दृष्टि इतनी विशाल और पारदर्शी थी कि बाल, युवा, प्रौढ़ और वृद्ध स्त्री-पुरुषों के बाह्य और आन्तरिक सौन्दर्य के साथ नद-नदी, समुद्र, पर्वत, वन, उपवन, नगर, ग्राम, तडाग, सर निर्झर, विविध ऋतु (सर्वाधिक वर्षा और वसन्त) प्रभात, सन्ध्या, द्यौ, अन्तरिक्ष, सूर्यचन्द्र, नक्षत्र, देव (प्रमुखतः इन्द्र) दानव, गन्धर्व, अप्सरा, आश्रम आदि में कोई-कुछ भी उनके संस्पर्श से नहीं बच पाया।

भाषा पर कालिदास का अप्रतिहत अधिकार है। शब्द-शब्द की अन्तरात्मा और परिवेश से वह सुपरिचित हैं। उपमायें उनके चतुर्दिक् हवा में तैरतीं हैं और उत्प्रेक्षायें उनकी मुट्ठी के बन्द। अर्थान्तर न्यास उनके आदेश की प्रतीक्षा को द्वार पर खड़े उठते हैं और सूक्तियों का उनके पास स्वानुभवजनित भाण्डार हैं। उनकी वाणी रस सिद्ध है और व्यञ्जकता उनकी शैली का स्वभाव। अलंकृति उन्हें पाकर स्वयम् सम्मोहक बन जाती है। ऐसे सहज कवि की रचना को यदि विभिन्न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काव्याचार्यों की तुला पर तोलने की चेष्टा की है तो अपनी मान्यता पर भरत, भामह, वामन, दण्डी, उद्भट, आनन्द वर्धन, मम्मट और योगेन्द्र जैसे न्यायाधीशों की भी मुद्रा से अंकित कराकर उसका सत्यापन करने के लिये । रीति, गुण, दोष, अलंकार और रसपाक शीर्षकों के अन्तर्गत यह शल्यक्रिया इसी चेष्टा का परिणाम है । इससे पाठकों को इन रचनाओं का आस्वाद ग्रहण करने में सहायता ही प्राप्त होगी । मैंने इस काव्य पायस में अनायास ही दिख पड़ी नन्हीं नन्हीं कंकड़ियों को भी लीन कर एक किनारे कर देने का प्रयत्न किया है जिससे रस ग्रहण में बाधा न पड़ सके । ऐसा करते समय मैंने कुछ कम प्रसिद्ध आचार्यों के मानदण्डों का भी उपयोग किया है ।

अन्य समीक्षकों के समान मैं भी प्रतिपत्ति के सर्वथा निर्दुष्ट होने का दावा नहीं करता। ऐसा करना केवल मूर्खता ही होगी। मैंने तो अन्य अग्रगामी विद्वद्वरेण्यों के द्वारा वाग् देवता के चरणों में अर्पित सुरभित पुष्पाञ्जलि के पार्श्व में अथवा निर्गन्ध कर्णिकार रख दिया है । सुधी समाज इसे मेरी नम्र श्रद्धा के रूप में ग्रहण करेगा । इस आशा के साथ

श्री राम नवमी — विनत

२८.३.९६ — प्रभुदयालु अग्निहोत्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषयानुक्रमणिका

(१) सौन्दर्य-दृष्टि

पुरुष-सौन्दर्य—नारी-सौन्दर्यः—

पृ० १-३५

अङ्ग-विन्यास-केश-केशपाश-कर्ण-भूषण-भूभङ्गि-नेत्र और विप्रेक्षण-गण्ड-स्थली-मुख-अधर और स्मित-स्तन-बाहु-कण्ठ-कटि-उरु और जंघा-चरण-लाक्षाराग-आभरण प्रसाधन-मद्यपान।

(२) वर्णन

ऋतु वर्णन ३६-६३

वसन्त वर्णन-प्रावृट्-ग्रीष्म-शरद्-हेमन्त-शिशिर

हिमालय वर्णन ६४-७३

हिमवतपुर-कैलास और अलका-वन वर्णन—

समुद्रवर्णन ७४-७८

जल-क्रीडा वर्णन—

काल-स्थान-वर्णन ७९-९१

सन्ध्या-वर्णन—रात्रिवर्णन-चन्द्रोदय-ऊर्ध्वलोक वर्णन- किंपुरुष और मर्यादा पर्वत-हेमकूट-आकाशगामी रथ।

विलाप वर्णन ९२-१०८

रति विलाप-अजविलाद १०९-१३२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३) रीति-गुणदोष

रीति-गति-जाति-काव्यमुद्रा-उक्ति-युक्ति-भणिति-शय्या-गुण-संक्षेप-प्रसाद-प्रौढि-समता-माधुर्य-अर्थ व्यक्ति-समता- सौकुमार्य -उदारता-समाधि-काव्यदोष-अविमृष्ट-विधेयांश-अक्रमता-अमत परार्थता-अस्थान पदता-अनवी-कृतत्व-पुनर्दीप्ति-भग्न प्रक्रमता-दोष निरास-न्यूनपदता-अश्लीलता-विधेय विमर्शता-पदक्यांश-दोष-श्रुति कटुत्व-निहतार्थता-भग्नप्रक्रमता-निर्हेतुता-न्यूनपदता-भग्नच्छन्द-स्कता-व्याहतता-उपात्तविरुद्धता-न्यूनपदत्व-व्याकीर्णता-समाप्तपुनरात्तता-सन्दिग्धता-अश्लीलता-अधिकपदत्व ।

(४) अलंकार विधान १३३-२०७

अनुप्रास-यमक-श्लेष-उत्प्रेक्षा-अतिशयोक्ति-अर्थान्तरन्यास-अप्रस्तुतप्रशंसा-अर्थापत्ति-अनुमान-अन्योन्य-आक्षेप-उदात्त-उपमेयोपमा-ऊर्जस्वी-काव्यलिङ्ग-तुल्ययोगिता-तद्गुण-दीपक-दृष्टान्त-निदर्शना-प्रतिवस्तूपमा-परिकर-परिणाम-रूपक-विशेष- विकल्प-विषम-विरोध-विरोधाभास-विभावना-विशेषोक्ति-स्वभावोक्ति समासोक्ति-विनोक्ति-वक्रोक्ति-सहोक्ति-प्रतीप-भ्रान्तिमान्-प्रहर्षण-ससन्देह-व्यतिरेक-सम-स्मरण-यथासंख्य-सार-व्याजस्तुति-समुच्चय-विकस्वर-शब्दप्रमाणालंकार-श्रुत्यलंकार-पर्याय-पर्यायोक्त-परिवृत्ति-हेतु-अहेतु-सूक्ष्म-प्रस्तुतांकुर-प्रेय-भाविक उदान्त-प्रपंचोकित-प्रतिवस्तूक्ति-दृष्टान्तोक्ति- क्रम-संभव-वितर्क-स्मृति-उपमान-अभाव-सामर्थ्याभाव-आप्तवचन-ललित-संसृष्टि-संकर ।

परिशिष्टः—

अनुप्रास-उपमा-मालोपमा-कल्पितोपमा-उत्प्रेक्षा-रूपक-यथा-संख्य-विशेष ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(५) रससिद्धि २०८-२३०

व्यभिचारीभावः—

स्मृति-ऊह-अभिलाष-चपलता-मति-अवहित्यत्था-मद-दैन्य-ग्लानि-आवेग-मोह-स्वप्न-मरण ।

रूपसंपत्-शीलसंपत्-प्रज्ञा संपत्-त्याग-त्याग संपत्-संयमसंपत्-माल्य आदि ।

(६) नायक-नायिका-गुण २३१-२३२

(७) रूपकचर्चा २३३-२६५

(८) उपमाकालिदासस्य २६६-२८२

(९) अर्थान्तरन्यास और सुभाषित २८३-३०२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वितीय खण्ड

साहित्यिक अवदान

सौन्दर्य-दृष्टि

पुरुष-सौन्दर्य

कालिदास ने पुरुष और नारी दोनों के रूप सौन्दर्य का वर्णन अपनी कृतियों में किया है। उनकी दृष्टि के लक्ष्य युवा नर-नारी हैं। इन दोनों के सौन्दर्य के माप-दण्ड अलग- अलग हैं। पुरुष में युवा होने पर ओज, तेज, शक्ति, प्राणवत्ता और साहस का उदय होता है तो नारी में शरीर के विकास, लावण्य और आकर्षण का। पुरूष के शारीरिक सौन्दर्य का अंकन करते हुए वह कहते है—

व्यूढोरस्को वृषस्कन्धः शालप्रांशुर्महाभुजः।

आत्मकर्म-क्षमं देहं क्षात्रो धर्म इवाश्रितः॥ रघु. १-१३

सर्वातिरिक्त -सारेण सर्वतेजोऽभिभाविना।

स्थितः सर्वोन्नतेनोर्वीं क्रान्त्वामेरुरिवात्मना॥ वही १४

आकार-सदृश-प्रज्ञः प्रज्ञया सदृशागमः॥ वहीं १५

अधृष्यश्चाभिगम्यश्च यादोरत्नैरिवार्णवः। वही १६

चौड़ा वक्ष, बैल के समान उठे हुए कन्धे, बड़ी बड़ी भुजायें और शालवृक्ष जैसी ऊँचाई। अपने कर्तव्य कामों के अनुकूल, समर्थ देह। क्षत्रिय हो तो सबसे बढ़कर शक्ति या बल, सबसे बढ़कर तेज और बड़प्पन या औन्नत्य। फिर शरीर के अनुरूप प्रज्ञा (जिससे बलीवर्द बनकर न रह जाय), प्रज्ञा के समान शास्त्राभ्यास और इतनी क्षमता कि दबाने की बात तो क्या कोई सहसा पास आने से भी झिझके।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह था कालिदास की कल्पना का युवा रूप । यद्यपि उन्होंने यह बात आदर्श क्षत्रिय कुमार के सन्दर्भ में कही है फिर भी थोड़े बहुत अन्तर के साथ सामान्य युवा पर भी लागू होती है । यौवन में शरीर किस प्रकार परिपुष्ट होकर गाम्भीर्य और मनोहरता का संमिश्र रूप बन जाता है, उसका एक निदर्शन देखिये—

महोक्षतां वत्सतरः स्पृशन्निव द्विपेन्द्रभावं कलभः श्रयन्निव ।
रघुः क्रमाद् यौवनभिन्न-शैशवःपुपोष गाम्भीर्य-मनोहरं वपुः ।

रघु. ३-३२

युवा युग-व्यायत-बाहुरंसलः कपाटवक्षाः परिणद्धकन्धरः ।
वपुः- प्रकर्षादजयद् गुरुं रघुस्तथापि नीचै र्विनयाददृश्यत ।

वही ३४

महोक्षा (साँड) जैसा बलवान्, हाथी के समान प्रभावशाली, सौन्दर्य और गाम्भीर्य से युक्त, युग (गाड़ी का जुआ) के समान दीर्घबाहुवाला, उच्च उठे कन्धों से शोभित, कपाट जैसे दृढ़ और चौड़े वक्ष से संपन्न और बड़ी मोटी गर्दन से मण्डित रघु शरीर-संपत्ति में पिता से बढ़कर लगता था, फिर भी विनय के कारण नीचा दिखने की चेष्टा करता था ।

अलंकार शेखर ने पुरुष की सुन्दरता के ये मापदण्ड बतलाये हैं जो राजाओं के लिए है—

राज्ञामत्यन्तपीनत्वमुच्चता दीर्घबाहुता ।
युगार्गल-भुजङ्गेन्द्र दण्ड- स्तम्भेभहस्तकैः ॥
वाहुः वक्षः कपाटेन शिलापट्टेन वर्ण्यते ।
अंसे विपुलता मध्ये कार्श्यमुन्नतता पदे ।१४-१,२

यह मान, लगता है कालिदास के राजाओं को ही देखकर स्थिर किया है । उनके वीर युग- व्यायत- वाहु ही नहीं, बड़े धनुर्धर भी है । इन्द्र की उँगलियाँ एरावत को चलाते चलाते अंकुश की पकड़ से कड़ी पड़ गयी है—"सुर- द्विपास्फालन कर्कशाङ्गुलौ ।।रघु. ३-५५ । रघु के हाथ मौर्वी के किणों से अङ्कित हैं । दुष्यन्त 'अनवरतधनुर्ज्या- स्फालन- क्रूर- पूर्वम् । शाकु. २-४१ और 'मौर्वी किणाङ्कित, है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शाकु. १-१३ । वह परिघ- प्रांशुवाहु भी है—एकः कृत्स्नां (धरित्रीम्) नगर परिघ-प्रांशुवाहु र्भुनक्ति । शाकु. २-१६ । अग्निमित्र की भी भुजायें परिघ गुरु हैं

तवहृतवतो दण्डानीकै र्विदर्भपतेः श्रियम्।

परिघगुरुभि र्दोर्भिर्विष्णोः प्रसह्य च मेदिनीम्।। माल. ५-२

अवन्तिनरेश भी अलं: शे. के प्रतिमान पर खरे उतरते है—

अवन्तिनाथोऽयमुदग्र- वाहु र्विशाल-वक्षास्तनु-वृत्तमध्यः ।

रघु. ६-३२

और कलिङ्गनरेश की भुजाओं में ज्याघात की रेखाये हैं—

ज्याघातरेखे सुभुजो भुजाभ्यां विभर्ति यश्चापभृतां पुरोगः ।रघु. ६-५२ रघु की भुजा भी ज्याघात-किणाङ्कित होने के साथ महाबलशालिनी है—पिता विश्वास के साथ उसे पृथिवी की रक्षा का भार सौंपता है—

भुजे भुजङ्गेन्द्र- समानसारे भूयः स भूमेर्धुरमाससञ्ज ।।रघु. २-७४

और रघुवंशीय राजा भी पूर्वजों के समान चौड़े वक्ष वाले हैं—

तस्याभवत् सूनुरुदारशीलः शिलः शिलापट्ट- विशाल- वक्षाः ।

इस प्रकार कालिदास के नायक अत्यन्त पुष्ट शरीर और वीर तथा आकर्षक शरीर सम्पत्ति से युक्त हैं ।

नारी-सौन्दर्य

अलंकार शेखर ने नारी-अंगों के लिये भी कुछ उपमान सुझाये हैं । यथा नारी के शरीर की कान्ति—"रोचना- स्वर्ण- विद्युद्भिर्हरिद्राभिर्वराटकैः—चम्पकै र्हैम केतक्या वर्ण्यते तत्तनोर्द्युतिः" । केशों के लिये तमस्, शैवाल, मेघ, वर्ह, भ्रमर आदि उपमान हो सकते हैं । ललाट के लिये अर्धचन्द्र या हेमपट्टिका; भ्रू के लिये स्मर-धनुष्, वीचि, भृङ्गली; कपोलों के लिये चन्द्र और आदर्श (दर्पण); मुख के लिये इन्दु अव्ज और दर्पण; नासा के लिये तिल- प्रसून, कण्ठ के लिये कम्बु, नेत्र के लिये मृगाक्षि, कमल, मीन, खंजन, चकोरनेत्र, केतक, स्मर-वाण; अधरोष्ठ के लिये प्रवाल, विम्बा, वन्धूक; दाँतों के लिये मुक्ता, माणिक्य, नारङ्ग; दाडिम, कुन्द, कोरक; वाणी के लिये हंस, शुक, किन्नर, वेणु, कोकिल, वीणा; वाहु के लिये विस, विद्युल्लता,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मृणाल, कर के लिये पद्म, पल्लव, विद्रुम; नखों के लिये चन्द्रकला, कुन्दकोरक, उरोजो के लिये पूग, कमल- कोरक, विल्व, तालगुच्छ, गज़कुम्भ; नाभि के लिये आवर्त, ह्रद, कूप; कटि के लिये सिंह- कटि, मुष्टि- ग्राह्यता; जघन के लिये पुलिन, नितम्ब के लिये पीठ. प्रस्तर, उरु के लिये करिहस्त, कदली, करभ, कर्ण के लिए पल्लव, कमल, स्थल- पदम, गमन के लिए हंस, गज, कटाक्ष के लिये युमना-वीचि, भृङ्गालि और नूपुरध्वनि के लिये हंस और सारस का शब्द- ये सब उपमा द्रव्य नारी के लिये कवियों ने ग्रहण किये हैं। अलंकार शेखर ने १४वीं मरीचि में उनका सोदाहरण वर्णन किया है। यह संस्कृत के महाकवियों की रचनाओं के आधार पर है। ये उपमान कवियों के मध्य समादृत ही नहीं, रुढ़ हो गये थे। कालिदास की रचनाओं में प्रायेण ये ही उपमान प्रयुक्त हुए हैं। यह बात दूसरी है कि प्रतिभा-सम्पन्न सर्जक होने के नाते उन्होंने इन पारम्परिक उपमानों को भी शैली एवं कथ्य की मौलिकता से विशिष्ट अभिराम्ता प्रदान कर दी है। आइये देखें—

नारी की रूप-सम्पत्ति, अंग-विन्यास तथा अलंकरणों की चर्चा करते कालिदास नहीं अघाते। वह उनके काव्य का प्राण है। रुप वर्णन में उन्होंने प्रत्येक अंग पर दृष्टि डाली है और समन्वित सौन्दर्य तथा उसके प्रभाव को भी अंकित किया है। सामान्य वर्णन को पहले लें। उसका मन पर जो समग्र प्रभाव पड़ता है वह अनिर्वचनीय होता है। कभी कभी यह विश्वास करने को जी ही नहीं होता कि उस रुप को उसी ब्रह्मा ने बनाया होगा जिसने अन्यसृष्टि की रचना की है। उर्वशी को देखकर पुरुरवा के मन में यही भाव उदित हुआ था। वह सोचने लगा—

अस्याः सर्ग- विद्यौ प्रजापतिरभूच्चन्द्रो नु कान्तिप्रदः।

शृङ्गारैकरसः स्वयं नु मदनो मासो नु पुष्पाकरः।

वेदाभ्यासजडः कथन्नु विषय- व्यावृत्त-कौतूहलो,

निर्मातुं प्रभवेन्मनोहरमिदं रूपं पुराणो मुनिः। विक्रमो. १-१०

निश्चय ही उर्वशी या तो कान्तिप्रद चन्द्र द्वारा निर्मित है, अथवा आपाद शृंगार रस में निमग्न कामदेव के द्वारा अथवा पुष्पाकर वसन्त के द्वारा, क्योंकि सूखे नीरस वेदादि ग्रन्थों का अनुशीलन करते करते ब्रह्मा का, जों यो भी पुराण (वृद्ध) है, सारा रस सूख चुका होगा। वे ऐसी मनोहर आकृति का निर्माण भला कैसे कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकते थे ? यह रूप कोई सामान्य तो है नहीं । इसे जिसने एक बार भी देख लिया है, वह इसके बिना बेचैन हो उठा है—

यदृच्छया त्वं सकृदप्यवन्ध्ययोः

पथि स्थिता सुन्दरि यस्य नेत्रयोः ।

त्वया विना सोऽपि समुत्सुको भवेत् ॥

सखी जनस्ते किमु नार्द्र सौहृदः ॥ वही १-११

ऐसी ही सर्वाङ्ग-सुन्दरी को देखकर शिव का मन विचलित हो गया था—

तां वीक्ष्य सर्वावयवानवद्यां रतेरपि ह्रीपदमादधानाम् ।

कुमार ३-५७

ऐसी कृति के लिए उपकरण सामग्री भी अपूर्व चाहिये । सो विधाता ने पहले सारे उपमान-द्रव्य एक स्थान पर इकट्ठे किये और फिर उन्हें अंगों के हिसाब से क्रमवार जमाया और फिर सारे सौन्दर्योपादानों के सामग्रिक प्रभाव को एक साथ देखने की इच्छा से इसका निर्माण किया । उत्प्रेक्षा के सहारे कवि ने कैसी सुन्दर कल्पना की है—

सर्वोपमाद्रव्य-समुच्चयेन यथाप्रदेशं विनिवेशितेन ।

सा निर्मिता विश्वसृजा प्रयत्नादेकत्र सौन्दर्य-दिदृक्षयेव ।

कुमार. १-४९

ऐसे वपुष् को किसी प्रकार के अलंकरण की आवश्यकता नहीं होती । वह "अव्याज-मनोहर" (अभि. १-१७) होता है । जिसका अधर किसलय-सा लाल हो, भुजायें कोमल विटप सी सुकुमार हों और जिस के अंग अंग से कुसुमों-सा यौवन फूटा पड़ रहा हो, उसका कहना ही क्या !

अधरः किसलयरागः कोमल-विटपानुकारिणौ बाहू ।

कुसुममिव लोभनीयं यौवनमङ्गेषु संनद्धम् ॥ अभि. १-१९

शरीर-यष्टि क्या जीवन्त पुष्पित पादप ही प्रस्तुत कर दिया कवि ने । क्या अब भी इसे भूषणों से सजाने को जी करेगा किसी का ! कमल के विसदण्ड सिवार में लिपटे रहने पर भी सुन्दर लगते हैं और चन्द्र कलिमा- कलित होने पर भी मनोरम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रभा विकीर्ण करता है । मधुर आकृतियों को भूषणों की आवश्यता नहीं होती । वे तो हर वेष और भूषा में मनोरम लगती है—

सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यं,
मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति ।
इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी,
किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम् ॥ शाकु. १-१८

ऐसी कृतियों को देखकर सन्देह होने लगता है कि ये मानुषी हैं भी या नहीं !

मानुषीषु कथं वा स्यादस्य रुपस्य संभवः । शाकु० १-२३

क्योंकि वे औरों से सर्वथा अलग ही दिखाई देती हैं । लगता है जैसे ब्रह्मा ने पहले चित्रफलक पर आदर्श बनाया । फिर सारी सुन्दर वस्तुओं का सार लेकर उसमें भरा और मन से (बिना अंगुलियों द्वारा छुए) ही इसमें प्राण डाले । इसीलिये यह स्त्री- रचना सर्वथा अलग ही दिखती है—

चित्रे निवेश्य परिकल्पित-सत्त्वयोगा,
रुपोच्चयेन मनसा विधिना कृता नु ।
स्त्री-रत्न-सृष्टिरपरा प्रतिभाति सा मे,
धातु र्विभुत्वमनुचिन्त्य वपुश्च तस्याः ॥ शाकु. २-१०

अँगुलियों से बिना छुए, मन के द्वारा निर्मित होने के कारण वह आनाघ्रात पुष्प, बिना नखों द्वारा तोड़े किसलय, बिना विंधे रत्न और बिना अधर-स्पृष्ट मधु के समान शुद्ध, अनघ लगती है—

अनाघ्रातं पुष्पं किसलयमलूनं कररूहै—
रनाविद्धंरत्नं मधु नवमनास्वादित-रसम् । शाकु.२-११

ऐसी सलोनी आकृति का कैसा ही सुन्दर चित्र बनाया जाय, यही लगेगा कि चित्र में उसकी कान्ति पूरी तरह प्रकाशित नहीं हो पायी । संभवतः चित्र बनाने वाले का ध्यान- भंग हो गया होगा—

चित्रगतायामस्यां कान्ति-विसंवादि मे हृदयम् ।
सम्प्रति शिथिल-समाधिं मन्ये येनेयमालिखिता । शाकु. २-२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विहारी ने इसी भाव को यों व्यक्त किया है—

लिखन वैठिजाकी सबी गहिगहि गरब गरुर।

भये न केते जगत के चतुर चितेरे कूर॥

ऐसी भव्य कृति पर वसन्त के समान यौवन अवतरित हो जाय तब सौन्दर्य का कहना ही क्या ! तब तो मण्डन अनायास ही उसे और उन्मादक बना देते हैं और लगता है जैसे यह पंचवाण काम का छठा अस्त्र है। जैसे तूलिका द्वारा रंगों से उन्मीलित चित्र या सूर्य किरणों से स्फुटित अरविन्द, ऐसे ही यौवन शरीर को चतुरस्रशोभी (अन्यूनातिरिक्त) बनाकर प्रकाशित कर देता है—

असंभृतं मण्डनमङ्गयष्टे रनासवारव्यं करणं मदस्य,

कामस्य पुष्प-व्यतिरिक्तमस्त्रं बाल्यात् परं सऽथ वयः प्रपेदे।

उन्मीलितं तूलिकयेव चित्रं सूर्यांशुभिर्भिन्नमिवारविन्दम्। कुमार. १-२१

वभूव तस्या श्चतुरस्त्रशोभि वपु र्विभक्तं नष-यौवनेन। वही ३२

फिर वह चाहे शृंगार करे या न करे, अंगों की साज- सँवार करे या न करें—कैसी भी स्थिति में रहे, सुन्दर ही लगती है—

यथा प्रसिद्धै र्मधुरैः शिरोरुहै र्जटाभिरप्येवमभूत्तदाननम्।

न षट्पद- श्रेणिभिरेवपङ्कजं सशैवलासङ्गमपि प्रकाशते।

कुमार. ५-९

ऊपर जिस सौन्दर्य का उल्लेख किया गया है वह अंग विन्यास से उत्पन्न प्रभाव है। कुल मिलाकर वह काव्य में ध्वनि के समान है जिसके लिये आनन्दवर्धन ने कहा है—यत्तच्छरीरावयवातिरिक्तं विभाति लावण्यमिवाङ्गनासु (ध्वन्यालोक)। सौन्दर्य अंगों के उपमानानुकूल होने से ही उत्पन्न नहीं होता। साहित्य ग्रन्थों में नारी के विभिन्न अंगों के जो उपमान मिलते हैं, यदि उनके आधार पर नारी का रेखाचित्र तैयार किया जाय तो वह केवल कार्टून ही लगेगा। उपमान किसी विशिष्ट अंग की बनावट का आभासमात्र दे सकते हैं। कभी कभी तो वे उपमान से बढ़कर दिखते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। उर्वशी का रूप स्वयं आभरण को आभूषित करता था, प्रसाधनों का प्रसाधन और उपमानों का प्रत्युपमान था—

आभरणस्याभरणं प्रसाधनविधेः प्रसाधन-विशेषः।

उपमानस्यापि सखे प्रत्युपमानं वपुस्तस्याः। विक्रमो० २-३

ऐसी ही सुन्दरता को व्यक्त करने के लिये हिन्दी के विख्यात कवि बिहारी ने अपनी नायिका को सुवर्ण के आभूषण पहनने से मना किया था क्योंकि उसके शरीर की आभा के सामने वे ऐसे लगते थे जैसे दर्पण में लगे मोरचे (जंग)—

पहिरु न भूषन कनक के कहि आवत इहि हेत।

दरपन के से मोरचे दूरि दिखाई देत॥

अङ्ग-विन्यास—

यों कालिदास की अंग-प्रत्यंग के विषय में अपनी स्वतन्त्र दृष्टि थी जो कहीं पारम्परिक तो कहीं मौलिक उद्भावनाओं के साथ अभिव्यक्त हुई है। उनकी कल्पना की नारी का एक चित्र देखें। यह सामान्य गृहस्थ महिला है

तन्वी श्यामा शिखरि-दशना पक्वविम्वाधरोष्ठी,

मध्ये क्षामा चकित-हरिणी-प्रेक्षणा निम्न-नाभिः।

श्रोणीभारादलसगमना स्तोकनम्रा स्तनाभ्यां

या तत्र स्याद् युवतिविषये सृष्टिराद्येव धातुः। मेघ. २-१९

नायिका युवती है और कवि की दृष्टि में ब्रह्मा की सर्वश्रेष्ठ कृति भी। वह तन्वी अर्थात् इकहरी शरीर-यष्टि वाली है— छर-हरी देह की। यौवन के मध्य द्वार पर स्थित है। कुछ नुकीले, थोड़ा ऊपर उठे दाँतों वाली है। उसके अधर पके विम्बा (कुँदरु) के समान लाल हैं। कटि या मध्य भाग पतला, नाभि गहरी, नेत्र हरिणी के समान बड़े, कजरारे और चञ्चल, नितम्ब भारी, क्षिप्र गति के बाधक स्तनों के भार से कुछ झुकी-झुकी। यह है कालिदास की नारी का चित्र। फिर नारी यदि नर्तकी भी हो तो उसके देह की तराश-खराश कुछ विशिष्ट होगी। शरीर का गठन, उसका कसाव, छरहरापन जो गति और अंग- संचालन एवं पादक्षेप को सहजता, क्षिप्रता और घुमाव दे सके। नर्तकी के लिये यह आवश्यक है। साथ ही उसके रूप का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रथम-दृष्ट्या आकर्षक होना आवश्यक है। यह बात निम्न श्लोक में कही गयी है—

दीर्घाक्षं शरदिन्दु- कान्ति वदनं बाहू नतावंसयोः,

संक्षिप्तं निविडोन्नतस्तनमुरः पार्श्वे प्रमृष्टे इव।

मध्यः पाणिमितो नितम्बि जघनं पादावरालाङ्गुली,

छन्दो नर्तयितु र्यथैव मनसः श्लिष्टं तथाऽस्यावपुः। माल.२-३

बड़ी बड़ी आँखों वाला चाँद जैसा चमकता मुख, कन्धों पर नीचे झुके दोनों वाहु, (पुरुष के अंस उन्नत होते है), सीना कम चौड़ा (पुरुष का वक्ष चौड़ा होता है), उस पर परस्पर-सटे स्तन और तराशे हुए से दोनों पार्श्व, कमर खूब पतली वालिश्त भर चौड़ी, भारी नितम्बों वाली जाँघें, मुड़ी-सी उँगलियों वाले पाँव। यह है नर्तकी का गठा हुआ शरीर जिसे नृत्याचार्य पसन्द करते हैं। और ऐसी सुन्दर नर्तकी की अवस्थान मुद्रा का एक दृश्य—

वामं सन्धिस्तमित-वलयं न्यस्य हस्तं नितम्बे,

कृत्वा श्यामा-विटप-सदृशं स्रस्तमुक्तं द्वितीयम्।

पादाङ्गुष्ठालुलितकुसुमे कुट्टिमे पातिताक्षं

नृत्तादस्याः स्थितमतितरां कान्तमृज्वायतार्धम्। माल. २-६

वायाँ हाथ इस प्रकार मुड़ा हुआ नितम्ब पर रखा कि कलाई में पहना कंगन न वजे, और दूसरा श्यामा (फलिनी) की शाखा के समान ढीला लम्बा छोड़ा हुआ, दृष्टि पैरों के अँगूठे से मर्दित फूलों वाले पक्के फर्श पर जमी और ऊपर का शरीरार्धभाग सीधा सुन्दर स्थित। यह मुद्रा नृत में और भी अधिक मनोहर लगती है।

केश

कवि की दृष्टि नारी के प्रत्येक अंग के विषय में एक कल्पना सँजोये है। उदाहरणार्थ केशों को लें। बिना सुगन्धित पदार्थों से धुले (स्नान- कषायवासित ऋतु० १-४) केशों की वह कल्पना तक नहीं कर पाते। उनकी युवतियों के अलक सदा, अगुरु, आदि सुगन्धित पदार्थों की धूप से धूपित रहते हैं—सदा सुरभित।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हेमन्त में जब वे सुगन्धित धूप में बसाये हुए घुँघराले केश बिखेरे शय्या से उठती हैं तो केशपाश से फूलो की माला टूट कर गिर चुकी होती हैं—

अगुरु-सुरभिधूपामोदितं केशपाशं

गलितकुसुममालं तन्वती कुञ्चिताग्रम्।

त्यजति शयनमन्या कामिनी चारुशोभा। ऋतु ५-१२

ऋतु. ४-५ में भी 'शिरांसिकालागुरु- धूपितानि' कहकर उन्होंने सुरभीकृत केशों के प्रति अपनी रुचि प्रदर्शित की है। केश घने नीलरंग के और लम्बे हों—"घननील- शिरोरुहान्ताः" ऋतु ४-१५ तथा 'आलम्बिनील- ललितालक-कुञ्चिताक्षी' वही १७। लम्बे, मुख पर लटकते केश जिनके कारण आँखें अधखुली दिखें, आकर्षक होते हैं। स्नान के बाद जब युवती केशों को आगे की ओर बिखेरे आती है तो उसकी सुन्दरता और भी बढ़ जाती है—"मुखमसकल- व्यक्ति लम्वाल कत्वात्" (मेघ. २-२१)। बालों के बीच लगा कुंकुम जब स्नान के समय पानी से घुल जाता है तो केशों के कुंचितभाग भी सीधे हो जाते है और उनसे कुंकुम की लाल बूँदें टपकती है—

वक्रेतराग्रैरलकैस्तरुण्यश्चूर्णारुणान् वारिकणान् वमन्ति। रघु. १६-६६

पार्वती के परिणय के समय प्रसाधिकायें उनका शृंगार करती है तो उनके केशपाश को सुगन्धित धूप से सुखाती है। फिर उनमें पुष्प निवेशित करती है और दूर्वा के साथ सुनहरे कच्चे मधूक पुष्पों की माला सजाती है—

धूपोष्मणा त्याजितमार्द्रभावं केशान्तमन्तः-कुसुमं तदीयम्।

पर्याक्षिपत्काचिदुदारबन्ध-दूर्वावता पाण्डुमधूकदाम्ना।

कुमार. ७-१४

वे उन्हें कुछ ढीली गाँठों के साथ गूँथती है। केश प्रसाधन के पश्चात् उनकी मुखश्री द्विरेफों से मण्डित पद्मों और मेघ लेखा से युक्त चन्द्रमा के विम्ब को भी पीछे छोड़ देती है—

लग्न-द्विरेफं परिभूय पद्मं समेघलेखं शशिनश्चबिम्बम्।
तदाननश्रीरलकैः प्रसिद्धैश्चिच्छेद सादृश्य-कथा-प्रसङ्गम्।

वही. ७-१६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कालिदास को लम्बे और पुष्पमण्डित केश बहुत प्रिय हैं। बार-बार वह उनका उल्लेख करते हैं—

शिरोरुहैः श्रोणितटावलम्बिभिः

कृतावतंसैः कुसुमैः सुगन्धिभिः। ऋतु २-१९

उन्होंने सुगन्धित पुष्पों के नाम तक गिनाये हैं—

मालाः कदम्वनवकेसर केतकीभिरायोजिताः

शिरसि विभ्रति योषितोद्य। वही २१

स्त्रियाँ वर्षा ऋतु में कदम्ब, केसर और केतकी की मालाओं से केशों को अलंकृत करती हैं। मालती और वकुल के मिले जुले गजरे भी केशों की शोभा बढ़ाते हैं—

पुष्पावतंस-सुरभीकृत केशपाशाः। ऋतु. २-२२

शिरसि वकुल-मालां मालतीभिः समेताम्। वही २५

केशान्. . आपूरयन्ति वनिता नवमालतीभिः। वही ३-१९

निवेशितान्तःकुसुमैः शिरोरूहैः विभूषयन्तीव हिमागमं स्त्रियः।

चलेषु नीलेष्वलकेष्वशोकम्। वही ५-८

फुल्लं चपुष्पं नवमल्लिकायाः प्रयान्ति कान्तिं प्रमदाजनानाम्।

वही ६-६

केशपाश

प्राचीन भारत में बालों को बाँधने के अनेक प्रकार प्रचलित थे। सामान्यतया सभी तरुणियाँ केशपाश या केशचूडा रखती थीं। पार्वती का- केश पाश तो इतना मनोहर था कि उसके सामने चमरियाँ तक लजा जायें—

लज्जा तिरश्चां यदि चेतसि स्यादसंशयं पर्वतराज- पुत्र्याः।

तं केशपाशं प्रसमीक्ष्य कुर्युर्वाल-प्रियत्वं शिथिलं चमर्यः।

कुमार १-४८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और कभी कभी हड़बड़ी में चलते चलते ढीले केश पाश खुल जाते थे और उनमे गुम्फित गजरे गिर जाते थे तो तरुणियाँ खुले केश लिये ही चल पड़ती थी—

आलोकमार्गं सहसा व्रजन्त्या कयाचिदुद्वेष्टन-वान्तमाल्यः ।

बद्धुं न संभावित एव तावत् करेणरुद्धोऽपि च केशपाशः ॥

वही ७-५७

विक्षिप्त पुरुरवा को भी इतना स्मरण रहा कि उसकी प्रिया 'यूथिका का माल्य केशों में लगाती थी जिससे उसके केश शवल (श्वेत-कृष्ण) दिखते थे—'यूथिका- शवल- केशी' विक्रमो. ४-२४ । और केशों को सुरभित बनाने के लिये धूप का प्रयोग इतना अधिक होता था कि हर्म्यों के जालकों से निकले उस धूप से मेघ के शरीर के परिपुष्ट हो जाने की कल्पना यक्ष करता है—

जालोद्गीर्णैरुपचित-तनुः केशसंस्कारधूपैः । मेघ. १-३२

मयूर के नील वर्ह तरुणी के केशपाश के उपमान माने जाते हैं, जब वे परस्पर सटे रहते हैं किन्तु रतिकाल में जब तरुणी के केश खुल जाते हैं और उनमें गुँथे कुसुमों से सौरभ उद्गलित होने लगता है तो मयूर पिच्छ उसके सम्मुख लजा जाते हैं—

मृदुपवन-विभिन्नो मत्-प्रियाया विनाशाद्

घनरुचिर-कलापो निःसपत्नोऽद्यजातः ।

रतिविगलित-बन्धे केशपाशे प्रियायाः

सति कुसुम-सनाथे कं हरेदेष वर्ही ॥ विक्रमो. ४-१०

इस प्रकार कालिदास काले, लम्बे, सुगन्धद्रव्यों से सुवासित तथा ऋतु के अनुकूल पुष्प माला से अलंकृत, कभी गुँथे, बँधे और कभी खुले कटि तक लहराते और कभी तिरस्करिणी बनकर मुख पर झूलते केशों को मनोहारी मानते हैं ।

कर्ण-भूषण

कालिदास ने कानों की आकृति के विषय में कुछ न कहकर उनके अवतंसकों का वर्णन किया है । उनकी तरुणियाँ प्रावृट् काल में ककुभ या अर्जुन के फूलों से इच्छानुसार कानों को सजाती हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्णान्तरेषु ककुभ-द्रुम-मञ्जरीभि

रिच्छानुकूल रचितानवतंसकांश्च। ऋतु. २-२१

वे शरत्काल में कञ्चन के कुण्डल और नीलोत्पल धारण करती हैं—

कर्णेषुच प्रवरकाञ्चनकुण्डलेषु

नीलोत्पलानि विविधानि निवेशयन्ति। वही ३-१९

वही बसन्त में कर्णिकार पुष्पों के कर्णपूर पहनतीं हैं—कर्णे सुयोग्यं नवकर्णिकारम् (वही ६-६)। प्रावृट् काल तो कवि के अनुसार प्रेमी के समान उन के केशों को मालती के साथ साथ वकुल की भी माला से सजाता है और कानों में विकसित नये पुष्पों और यूथिका की कलियों के साथ साथ ताजे खिले कदम्बों के कर्णफूल पहनाता है—

शिरसि वकुल मालां मालतीभिः समेतां

विकसित नवपुष्पैर्यूथिका कुड्मलैश्च।

विकचनवकदम्बैः कर्णपूरं वधूनां

रचयति जलदौधः कान्तवत् काल एषः॥ ऋतु. २-२५

अभि. शाकु. में दुष्यन्त शकुन्तला के चित्र को देखकर उसमें प्रसाधन की कमी बतलाता हुआ कहता है—

कृतं न कर्णार्पित-बन्धनं सखे

शिरीषमागण्ड-विलम्बिकेसरम्।

न वा शरच्चन्द्र-मरीचिकोमलं

मृणाल-सूत्रं रचितं स्तनान्तरे। शाकु. ६-१८

भ्रूभङ्गि

भ्रू-चालन भी स्त्रियों की शृंगार चेष्टा का महत्त्वपूर्ण अंग होता है और भ्रू-युगल उनके सौन्दर्य का भाग। नदी की तरंगों को कवियों ने उनका उपमान बनाया है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तरङ्गभ्रूभङ्गा क्षुभित-विहग-श्रेणि-रशना,

नदीभावेनेयं ध्रुवमसहना सा परिणता ।। विक्रमो. ४-२०

कभी कभी भ्रू विक्षेप इतना तीव्र होता है कि माथे पर बल पड़ जाते हैं और उसमें लगा तिलक छूट जाता है । स्त्रियाँ मस्तक पर तिलक (बिन्दी) लगाती ही हैं । क्रोध में तीव्र भ्रूभङ्गि उसे भग्न कर देती हैं—"भ्रूभङ्ग- भग्न- तिलकं स्फुरिताध रोष्ठम् ।" माल. ४-९- तिलक गोल बिन्दी के ही रूप में नहीं पत्र-रचना के रूप में भी बनाया जाता था काजल या अञ्जन के द्वारा—

लग्न-द्विरेफाञ्जन-भक्तिचित्रंमुखे मधुश्रीस्तिलकं प्रकाश्य ।

रागेण बालारूण-कोमलेन बालप्रवालोष्ठमलंचकार ।।

कुमार. ३-३०

कौतूहल भरी दृष्टि भ्रूभङ्ग से युक्त रहती है । भ्रूनर्तन उसका आवश्यक अंग है जिसे कवि ने भ्रू-लता-विभ्रम कहा है । भ्रू की उपमा लता की तन्वी और पवन से चंचल शाखा को ध्यान में रखकर दी जाती है । नेत्र-कौतूहल और भ्रू-लता-विभ्रम का साहचर्य है । आश्चर्य और कुतूहल में नेत्रों के पलक ऊपर उठ जाते है और लोग, उन्हें आँखें फाड़कर देखते हैं जिससे उनकी कृष्णश्वेत पुतलियों की प्रभा ऊपर उठी दिखती है । माघ में कुन्दों में फूल खिलते हैं और वायु से प्रेरित हो इधर उधर झूमते हैं तो मधुकर उनके पीछे चक्कर काटते हैं । कुतूहल में इधर उधर घूमते नेत्रों की पुतलियाँ भी वही दृश्य प्रस्तुत करती हैं । कवि ने ऐसी कुतूहलमयी दृष्टि का कैसा भव्य चित्रण किया है—

तामुत्तीर्य व्रज परिचित-भ्रूलता-विभ्रमाणां,

पक्ष्मोत्क्षेपादुपरि विलसत्कृष्णशार-प्रभाणाम् ।

कुन्दक्षेपानुगमधुकर-श्रीमुषामात्मविम्बं,

पात्रीकुर्वन् दशपुर-वधूनेत्र-कौतूहलानाम् ।। मेघ. १-४७

ऊपर जिस भ्रूलता की बात कही गयी है, उसे कवि ने आयत लेखा (लम्बी रेखा वाली) और ऐसी काली लगने वाली कहा है जैसे किसी ने शलाका द्वारा अञ्जन से खीचा हो । वह दर्शक के मन में काम जाग्रत करने का कार्य कामदेव के धनुष से भी बढ़कर करती है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तस्याः शलाकाञ्जननिर्मितेव कान्ति र्भ्रुवोरायतलेखयो र्वा।

तां वीक्ष्य लीला-चतुरामनङ्गः स्वचाप-सौन्दर्य-मदं मुमोच॥

कुमार. १-४३

भ्रू का स्वरूप धनुष के समान होता है। वे लीला चतुर तो होती ही है। एक स्थिति तब होती है जब मदातिरेक में नयन घूर्णमान होते हैं। इसमें पलक खुले और तारे उनके भीतर घूमते दिखते हैं—'घूर्णमान नयनं स्खलत्कथमृ' कुमार. ८-८०

नेत्र और विप्रेक्षण

नेत्रों को अंजन से सजाने की प्रथा अति प्राचीन है और प्रसाधन का अंग भी। पार्वती के विवाह के अवसर पर प्रसाधिका ने उसके नेत्रों को अंजित किया था। नेत्र तो उसके अभिजात कमल के पत्र के समान सुन्दर थे ही। उन्हें अंजन से और सुन्दर तो बनाया नहीं जा सकता था। फिर भी उन्हें किसी की दीठ न लग ज़ाय, इस विचार से दिठौने के रूप में अंजन से आँज दिया गया था—

तस्याः सुजातोत्पलपत्र-कान्ते प्रसाधिकाभिर्नयने निरीक्ष्य।

न चक्षुषोः कान्ति-विशेषबुद्ध्या कालाञ्जनं मङ्गलमित्युपात्तम्॥

वही ७-२०

कभी कभी हड़बड़ी में एक नेत्र में बिना अंजन लगाये ही स्त्रियाँ चल देती हैं। पार्वती की बारात देखने के लिये पुर- सुन्दरियों में कुछ ऐसी उत्का जगी कि वे अधूरा शृंगार करके ही उठ गयीं। दक्षिण नेत्र में अंजन लगा कि चल दीं।

विलोचनं दक्षिणमञ्जनेन संभाव्य तद्वञ्चित-वामनेत्रा।

तथैव वातायन-संनिकर्षं ययौ शलाकामपरा वहन्ती।

कुमार. ७-५९

अंजन शलाका से लगाया जाता था।

कमल पत्र के अतिरिक्त हरिणी नेत्र भी उपमान के रूप में गृहीत हुए हैं। उनमें आकृति और चेष्टा दोनों का सादृश्य मिलता है। श्वेत, श्याम, रतनारी पुतलियाँ, लम्बे पक्ष्म एवं श्याम निम्नभाग और फिर उनमें चंचल चितवन। ये बातें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मृगी और तरुणी में समान होती हैं। इसीलिये वे मृगीदृशः कहलाती हैं। कालिदास ने उनकी चितवन को तेज वायु में हिलते कमल पत्र के समान कहा जो मृगाङ्गनाओं और मुग्धाबालाओं में समान होता है–

प्रवात-नीलोत्पल-निर्विशेषमधीर-विप्रेक्षितमायताक्ष्याः।

तया गृहीतं नु मृगाङ्गनाभ्य स्ततो गृहीतं नु मृगाङ्गनाभिः।

कुमार. १-४६.

और जब वह तप के लिये कमर कसती है तो अपने विप्रेक्षित को मृगियों के ही पास न्यास के रूप में रख जाती है क्योंकि वे ही निक्षेप की पात्र थीं—

पुनग्रहीतुं नियमस्थया तया द्वयेऽपि निक्षेप इवार्पितं द्वयम्।

लतासु तन्वीषु विलास-चेष्टितं विलोलदृष्टं हरिणाङ्गनासु च।

कुमार. ५.१३

निक्षेप विश्वस्त जनों के पास ही रखा जाता है और नीवार तथा अन्य बीज खिलाकर उसने मृगियों में इतना विश्वास उत्पन्न कर लिया था कि उससे बिना डरे वे उसकी आँखों से अपने नेत्रों का सादृश्य मिलाया करती थीं—

निवाप बीजाञ्जलिदान-ललिता

स्तथा च तस्यां हरिणा विशश्वसुः।

यथा तदीयै र्नयनैः कुतूहलात्

पुरः सखीनाममिमीतमीत लोचने। वही ५-१५

अपाङ्ग-वीक्षण का सुख तो अनुभवी ही समझ सकते हैं। कवि ने अनेकशः उस की ओर ध्यान आकृष्ट किया है। मधुकर जब शकुन्तला के समीप मँडराता है तो उसके अपाङ्ग (पक्ष्म) चंचल होते है—काँपते से।

चलापाङ्गां दृष्टिं स्पृशसि बहुशो वेपथुमतीम्। शाकु. १-२१

दृष्टि के विविध प्रकार भिन्न-भिन्न प्रभाव उत्पन्न करने में समर्थ होते हैं। नेत्र कैसे ही सुन्दर हों किन्तु यदि उनमें वीक्षण की कला नहीं, तो कुछ नहीं। बिहारी ने कहा है कि नुकीले बड़े नयनों वाली एक सी दिखने वाली अनेकों सुन्दर तरुणियाँ मिलती हैं किन्तु देखने का ढंग किसी-किसी को ही आता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनियारे दीरघनयन किती न तरुनि समान।

वह चितवनि औरे कछू जेहि वस होत सुजान॥

प्रणय का सारा खेल वीक्षण-कला पर निर्भर है। शकुन्तला को ही देखिये। दुष्यन्त से प्यार करती है किन्तु सामने आने पर दृष्टि नीची कर लेती है—अभिमुखे मयि संहृतमीक्षणम्—शाकु. २-१२। और पार्वती ? विवाह की चर्चा चलने पर वह भी दृष्टि नीची कर लेती है—"एवंवादिनि देवर्षौ पाश्वे पितुरधो मुखी—कुमार ५-८४। सुभ्रु, मृग- प्रेक्षिणि- ये स्त्रियों के समान्य विशेषण बन गये थे वैसे ही जैसे करभोरु। राम सीता से कहते हैं—

कुरुष्वतावत्करभोरू पश्चान्मार्गे मृगप्रेक्षिणि दृष्टिपातम्।

इसी प्रकार नेत्रों में अञ्जन भी, क्योंकि उसके सहारे ही तो वे मृगनेत्रों से स्पर्धा कर पाती थी। इसीलिये जल केलि के समय कवि को अंजन के धुल जाने की चिन्ता हुई।

विलुप्तमन्तःपुरसुन्दरीणां यदञ्जनं नौ-लुलिताभिरद्भिः।

तद्बध्नतीभिर्मदराग-शोभां विलोचनेषु प्रतिमुक्तमासाम्।

रघु. १६-५९

सरयू की लहरों ने तरुणियों की आँखों का अञ्जन तो धो दिया किन्तु उसके बदले उन्हें मदराग वाली अरुणता प्रदान कर दी। कालिदास ने मेघ को टेढ़ामार्ग पकड़कर जो दशार्ण से उज्जयिनी जाने के लिये प्रलोभन दिया उसमें प्रमुख था वहाँ की पौराङ्गनाओं की लोल-अपाङ्ग दृष्टि। मेघ विद्युत् चमकायेगा तो नारियाँ चकित होकर मेघ को लोलापाङ्ग नेत्रों से देखेंगी और उसकी यात्रा सफल हो जायगी—

विद्युद्दाम-स्फुरित-चकितैर्यत्र पौराङ्गनानां

लोलापाङ्गैर्यदि न रमसे लोचनै र्वञ्चितोऽसि। मेघ. १-२५

यहाँ लोचन शब्द साभिप्राय है। कटाक्ष विप्रेक्षण का एक प्रकार है जिसमें नेत्र पूरे नहीं खुलते किन्तु प्रहार पूरा करते हैं। उज्जयिनी की ही वेश्याओं के सन्दर्भ में कवि ने मेघ से कहा है—आमोक्ष्यन्ते त्वयि मधुकर- श्रेणि- दीर्घान् कटाक्षान्—मेघ. १-३५। कटाक्ष भी कैसे ? मधुकर श्रेणिवत् दीर्घ, जो अञ्जन से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अञ्जित नेत्रों के द्वारा ही सम्भव है । दशपुर की वधुओं के संदर्भ में कवि ने इस बात को दोहराया है । वधुयें बड़े कौतूहल के साथ मेघ को देखती हैं ।

कालिदास ने लोचनों का आयत होना उनका सबसे बड़ा गुण माना है । नारी को 'मृगीदृश्' कहने का मूल आधार भी यही है । उनकी शोभा बढ़ा देता है उनका 'असमग्र वृत्ति' होना अर्थात् पूरी तरह खुलकर न देखना । न च प्रियेष्वायत लोचनानां समग्र- वृत्तीनि विलोचनानि । माल. ४-८ । स्त्रियाँ अपने प्रेमी को आधी दृष्टि से ही देखती हैं और यह समग्र दृष्टि से कहीं अधिक वेधक होती है । नेत्रों की आयतता का बखान कालिदास बार बार करते हैं—

अत्यायतं नयनयो र्मम जीवितमेतदायाति । माल. ३-७

तथा—स्मयमानमायताक्ष्याः किंचिदभिव्यक्त- दशन- शोभिमुखम् । माल. ३-१० । आयतन की सीमा है श्रवण-तट । कानों के किनारों तक फैले गुलाबी कोरों वाले नेत्र, किसका मन अपनी ओर आकर्षित नहीं करते—

श्रवणतट निषक्तैः पाटलोपान्तनेत्रैः

श्रिय इव गृहमध्ये संस्थिता योषितोऽद्य । ऋतु. ५-१३

ऐसे नेत्रों के मदकल- विलोकन को नीलोत्पलों और भ्रूविभ्रमों को तन्वी तरंगों के द्वारा यदि कोई विजित कर पाता है तो केवल शरत् काल—नीलोत्पलैर्मदकलानि विलोचनानि भ्रूविभ्रमाश्च रुचिरास्तनुभिस्तरङ्गैः । ऋतु. ३-१७

गण्ड-स्थली

कवि की दृष्टि गण्डस्थली के सौन्दर्य की ओर भी गयी है किन्तु विरह क्षामा की ओर । उसकी भी तो अपनी अलग शोभा है—

शरकाण्ड-पाण्डु-गण्डस्थलेयमाभाति परिमिताभरणा । माल. ३-८

मुख

सामान्यतया कवियों ने चन्द्र और कमल को मुख के उपमान के रूप में याद किया है । इनमें साधारण धर्म है आह्लादकत्व, आरुण्य की झलक के साथ गौरता और गोलाकारत्व । कालिदास ने भी इसी परम्परा का निर्वाह किया है । उनकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मालविका बड़ी बड़ी आँखों वाली शरच्चन्द्र-सी कान्ति से युक्त मुख वाली है—दीर्घाक्षं शरदिन्दु कान्तिवदनम्—माल. २-३ । और पार्वती के मुख पर जैसे श्री ने बसेरा ही कर लिया था । वैसे उसका आवास है पद्म किन्तु उनमें वह दीप्ति या प्रभा नहीं जो चन्द्र में है और चन्द्र में वह मधुर गन्ध और कोमलता नहीं । उमा के मुख में आह्लादक कान्ति और कोमलता दोनों के एक साथ होने से लक्ष्मी अपना चाञ्चल्य छोड़कर स्थिर भाव से उसी में रहने लगी—

चन्द्रंगता पद्मगुणान्नभुङ्क्तेपद्मं गता चान्द्रमसीमभिख्याम् ।

उमा-मुखं तु प्रतिपद्य लोला द्विसंश्रयां प्रीतिमवाप लक्ष्मीः ।

कुमार १-४३

अधर और स्मित मुख की शोभा के संवर्धक होते हैं । कवियों ने उनकी उपमा किसलय और विद्रुम तथा विम्बा फल से दी है । सभी उपमानों में लालिमा सामान्य गुण है । अधरः किसलय- रागः-शाकु. १-१९ तथा विम्बाधरं चेत् स्पृशसि प्रियायाः—शाकु. ६-२० । और अधरों पर बिखरता हास हो तब तो उनकी सुन्दरता का कहना ही क्या ? तब तो उसकी उपमा मिलना कठिन होता है । हाँ प्रवाल या किसलय यदि शुभ्रपुष्प से संयुक्त हों या स्फुटविद्रुम मुक्ता से युक्त हो तो किसी प्रकार उनका साम्य संभावित हो सकता है—

पुष्पं प्रवालोपहितं यदि स्यान्मुक्ताफलं वा स्फुट-विद्रुमस्थम् ।

ततोऽनुकुर्याद् विशदस्य तस्य ताम्रौष्ठपर्यस्त-रुचः स्मितस्य ॥

कुमार. १-४४

इनसे मण्डित मुख वाली प्रमदायें यदि रात्रि को अपने श्वेत हर्म्य की छत पर सुख पूर्वक सो रही हों तो चाँद भी उत्कण्ठा पूर्वक उनकी मुख शोभा निहारने आ जाता है । फिर भले ही वह उनके सौन्दर्य को देखकर लाज के मारे पीला क्यों न पड़ जाय—

सितेषु हर्म्येषु निशासु योषितां
सुख-प्रसुप्तानि मुखानि चन्द्रमाः ।
विलोक्य नूनं भृशमुत्सुकश्चिरं
निशाक्षये याति ह्रियेव पाण्डुताम् । ऋतु. १-९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शरद् का मनोज्ञ वक्त्र फुल्लपद्म ही है—विकचपद्ममनोज्ञवक्त्रा-प्राप्ताशर न्नववधूरिव रुपरम्या—ऋतु. ३-१ । हेमन्त में मुख पुष्पासव की सुगन्ध से सुरभित रहने के साथ अपने निःश्वास वायु से सारे अंगों को आमोदित कर देते हैं—

पुष्पासवामोद-सुगन्धि वक्त्रोनिःश्वासवातैः सुरभीकृताङ्गः ।

वही ४-१२

अधर और स्मित

और इस ऋतु में जब अधर यों ही फटने लगते हैं तो उन पर दन्तच्छेद के व्रण ! किन्तु काम रस के ये स्मारक फिर भी प्रिय ही लगते हैं—

"दन्तच्छदं प्रियतमेन निपीतसारम्"-

तथा दन्तच्छदैः सव्रणदन्तचिहनैः। ऋतु. ४-१४, १३

तथा—निषिक्त विम्वाधरचारु पल्लवाः । वही २-१२

कवि ने शरद् वधू को शशांक- वक्त्रा कहा है, ऐसे शशाङ्क रूप मुखवाली जिस पर से मेघों की छाया हट गयी हो—मेघावरोध- परिमुक्त शशाङ्क-वक्त्रा—ऋतु. ३-७ इसी प्रकार विकसित कमल भी मुख के उपमान हैं—अम्भोरु है विंकसितै र्मुखचन्द्रकान्तिः वही. ३-१७ । यहाँ अम्भोरुहों में विकसित होकर मुख-चन्द्र अर्थात् मुख और उसके उपमान चन्द्र की कान्ति जीत ली है । इसी प्रसंग में कवि ने चारु ताम्र से अधरोंष्ठों को कनक-कमल-कान्त कहा है— "कनक-कमल-कान्तै श्चारु ताम्राधरोष्ठैः" ऋतु. ५-१३ । यहाँ कवि के पास उपमानों का दैन्य है । कवि- परम्परा से हटकर उनकी श्री और प्रभाव पर ध्यान केन्द्रित करता तो मुख और अंधरों के वर्णन में इतना बासीपन न रहता । अपनी उन्हीं घिसी पिटी उपमाओं को उन्होंने बार बार दोहराया है—

श्यामास्वङ्गं चकित-हरिणी-प्रेक्षणे दृष्टिपातं

वक्त्रच्छायां शशिनि शिखिनां वर्हभारेषु केशान्

उत्पश्यामि प्रतनुषु नदी-वीचिषु भ्रूविलासान्

हन्तैकस्मिन् क्वचिदपिन ते चण्डि सादृश्यमस्ति। मेघ. २-४१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

R 8 3 362.2

श्यामा लता सी शरीर- यष्टि, चकित हरिणी सदृश दृष्टिपात, चन्द्र सी वक्त्र शोभा, मयूर के वर्हों जैसे केश, नदी- वीचियों के समान भ्रू विलास—ये वे उपमाये हैं जिनका प्रयोग कालिदास में बार-बार मिलता है। ऐसे ही, अधर और विद्रुम का सादृश्य है—तवाधर- स्पर्धिषु विद्रुमेषु—रघु. १३-१३। फिर भी यह वर्णन आकर्षक है। मुख का चित्र लें—

स्मयमानमायताक्ष्याः किञ्चिदभिव्यक्तदशन-शोभि मुखम्।

असमग्र-लक्ष्य-केसरमुच्छ्वसदिव पङ्कजं दृष्टम्॥ माल. ३-१०

गुरुकुल पुस्तकालय

बड़ी बड़ी आँखों वाला गोल मुख, ओठों पर मुस्कराहट और उससे थोड़े थोड़े दिखते नेत्र मानों कुछ-कुछ खिलते कमल के अधूरे केसर दिखायी दे रहे हों। इस कथन में ताजगी और तुल्य प्रभावोत्पादकता भी है।

अधरों को लाली से रंजित करने की भी प्रथा कालिदास के समय में थी। जैसे नत्रों में अञ्जन, ऐसे ही अधरों में राग की प्रथा युवतियों में थी। वे स्तनों में भी अरुण अङ्गराग लगाती थीं। कन्दुक क्रीडा में कन्दुक उछलकर स्तनों का स्पर्श करता तो वह भी अंगराग की लाली से अरुण हो जाता था—

विसृष्टरागादधरान्निवर्तितः स्तनाङ्गरागारुणिताच्च कन्दुकात्। कुमार. ५-११। कुमार संभव ३-३० में अधरोष्ठ में लाली लगाने का फिर उल्लेख है—

रागेण वालारूण- कोमलेन चूत- प्रवालोष्ठमलंचकार।

113485

स्तन

नारी-सौन्दर्य-वर्णन में कालिदास की दृष्टि दो अंगों पर जाकर बार बार ठहर गयी है और वे हैं स्तन तथा नितम्ब। यह बात यहाँ तक है कि वह तपः प्रसंगों में भी उन पर दृष्टि डालना नहीं भूलते। पहले स्तनों को लें। निश्चित ही वे नारीत्व के लक्षण हैं। पतञ्जलि ने नारी की परिभाषा ही दी है—स्तन केशवती नारी लोमशः पुरुषः पुमान्। स्तन ही नारी को नारी बनाते, साथ ही उसमें आकर्षण भरते हैं। ऋतु संहार में तो प्रत्येक ऋतु में उनका अलग आकर्षण मुखर हुआ है। ग्रीष्म में वे हार, मुक्ता दाम और चन्दन से सम्पन्न है—

स्तनैः सहाराभरणैः सचन्दनैः स्त्रियो

निदाधं शमयन्ति कामिनाम्। ऋतु. १-४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा—पयोधराश्चन्दनपङ्क-चर्चितास्तुषार-गौरार्पित-हार-शेखराः । वही १-६ । भला गीले चन्दन का लेप लगाये और सुन्दर श्वेत पुष्पों या मुक्ताओं का हार पहने गोरे-गारे स्तन किसके मन में काम की अभिलाषा नहीं जाग्रत कर देते । कवि ने बार बार 'सहारयष्टि- स्तन- मण्डलार्पणैः (वही. १-८), स्तनैः सहारैः (वही २-१८), दधति वरकुचाग्रैरुन्नतै र्हारयष्टिम् (वही. २-२५), हारैः सचन्दन रसैः स्तन-मण्डलानि (भूषयन्नि) वही ३-२०, जैसी उक्तियों का प्रयोग किया है । ग्रीष्म में उन्नतस्तनी स्त्रियाँ भारी मोटे वस्त्रों को छोड़कर झीने वस्त्र पहनती हैं—

विमुच्य वासांसि गुरुणि साम्प्रतं स्तनेषु तन्वंशुकमुन्नतस्तनाः ।

ऋतु. १-७

तो हेमन्त में सब कुछ उलट जाता है । अब न शीतलहार कुचमण्डल को अलंकृत करते हैं, न पत्र- लेखायें मुख कमलों को और न ही पतले अंशुक वक्ष को—

तुषार-कुन्देन्दुनिभैश्च हारैर्नालंक्रियन्ते स्तनमण्डलानि ।

ऋतु. ४-२

तथा (नैव) तन्वंशुकं पीन पयोधरेषु (वही ४-३) तथा (नैव) सपत्रलेखानि मुखाम्बुजानि (वही ४-५) । तन्वंशुक के स्थान पर वे अपने स्तनों को कूर्पासक (मोटी चोली) से ढँक कर रखती हैं—कूर्पासकं परिदधाति नखक्षताङ्गी-वही ४-१७ तथा- मनोज्ञ कूर्पासक- पीडित- स्तनाः वही ५-८ । शिशिर में शैत्य के कारण स्त्रियाँ अपनी चोली को कसकर बाँधती हैं । वे स्तनों पर केशर का लेप भी करती हैं जिससे उनमें गर्मी रहती है—पयोधरैः कुङ्कुमरागपिञ्जरैः सुखोपसेव्यैर्नव यौवनोष्मभिः । वही ५-९ । और फिर वसन्त आया कि पुनः स्तनों पर सफेद चन्दन से गीले किये हुए हार और श्रृंगार के लिये बनाये वेल-बूटों से मण्डित स्वर्ण कमल जैसे मुख, कभी मौक्तिकमाल्य से भूषित स्तन नारियों की शोभा बढ़ाने लगते हैं—स्तनेषु हाराः सितचन्दनार्द्राः (वही ६-६) तथा—

सपत्रलेखेषु विलासिनीनां वक्त्रेषु हैमाम्बुरुहोपमेषु ।
स्तनान्तरे मौक्तिकसङ्गरम्यः स्वेदागमोविस्तरतामुपैति ।

ऋतु. ६-७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा—तन्वंशुकैः कुङ्कुमरागरक्तैरलं क्रियन्ते स्तन-मण्डलानि । वही ६-५ तथा स्तनेषु हाराः सितचन्दनार्द्राः । वही ६-७ । वसन्त में नारियों द्वारा स्तनों की परिचर्या का प्रकार देखिये—

प्रियङ्गु कालीयक-कुङ्कुमाक्तं स्तनेषु गौरेषु विलासिनीभिः ।
आलिप्यते चन्दनमङ्गनाभि र्मदालसाभिर्मृगनाभियुक्तम् ।

ऋतु. ६-१२

मदिरा के नशे से अलसाई हुई स्त्रियाँ वसन्त ऋतु में अपने गोरे-गोरे स्तनों पर प्रियंगु, कालीयक और केसर मिलाकर पीसे हुए कस्तूरीयुक्त चन्दन का लेप करती हैं । कभी कभी वे 'आलम्बि हेमरशनाः स्तनसक्तहाराः' दृष्टिगोचर होती हैं । स्तनों का सौन्दर्य परिणाह में है, उनकी निविडता में है और है उनकी कठोरता में । उनके भार से स्त्रियाँ झुक जाती हैं । "पीनोन्नतस्तन- भरानत गात्रयष्ट्यः" ऋतु. ४-१६ तथा "स्तनभर- परिखेदान् मन्दमन्दं व्रजन्त्यः ।" वही ५-१४ जैसी उक्तियाँ, जो कालिदास की रुचि की परिचायक हैं, उनके काव्य में प्रचुर संख्या में उपलब्ध हैं । पार्वती के यौवन का वर्णन करते हुए वह कहते हैं कि उनके स्तनों का परिणाह इतना बढ़ गया कि वे दोनों एक दूसरे से रगड़ने लगे और दोनों के बीच इतना भी अन्तराल न रहा कि मृणाल का पतला तन्तु तक उनके बीच से निकल सकता—

अन्योन्यमुत्पीडयदुत्पलाक्ष्याः स्तनद्वयं पाण्डु तथा प्रवृद्धम् ।
मध्ये यथा श्याममुखस्य तस्य मृणासूत्रान्तरमप्यलभ्यम् ॥

कुमार. १-४०

यहाँ कवि ने स्तनों को पाण्डु तथा उनके मुख को श्याम कहा है । गर्भवती नारी के भी स्तनों के अग्रभाग पर उनकी दृष्टि जा टिकती है । सुदक्षिणा के स्तन गर्भावस्था में और अधिक पीवर हो गये थे और उनका मुख सर्वथा नील था । यही बात कवि ने उर्वशी के विषय में भी निरीक्षित की थी—

दिनेषु गच्छत्सु नितान्तपीवरं
तदीयमानील-मुखं स्तनद्वयम् ।
तिरश्चकार भ्रमराभिलीनयोः
सुजातयोः पङ्कज-कोशयोः श्रियम् । रघु. ३-८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहाँ उन्होंने पीवर स्तनों की उपमा पङ्कज कोशों तथा नील चूचुक-परिपार्श्व की उपमा उन कोशों पर बैठे भ्रमरों से दी है। उर्वशी के विषय में पुरुरवा कहता है कि मुझे स्मरण है कि उन दिनों (गर्भावस्था मे) उर्वशी की क्या अवस्था हो गयी थी—

आविल-पयोधराग्रं लवलीदल-पाण्डुराननच्छायम्।

तानि दिनानि वपुरभूत् केवलमलसेक्षणं तस्याः। विक्रमो. ५-८

एक बात जिसे कवि ने बार-बार दोहराया है वह है स्तनों तथा नितम्बों के भार से गति में शैथिल्य "आवर्जिता किञ्चिदिव स्तनाभ्याम्"—कुमार. ३-५४

तथा—

एता गुरुश्रोणि-पयोधरत्वादात्मानमुद्वोढुमशक्नुवत्यः।

रघु. १६-६०

पयोधरों और नितम्बों के कारण वे रानियाँ अपने को ही ढोने में असमर्थ थीं। अस्तु। वे तो थी सुकुमार-शरीर रानियाँ। हिमालय की अश्वमुखी किन्नरियों की एड़ियाँ और पैरों की उँगलियाँ बर्फ से जमी जा रही हैं, फिर भी वे जल्दी-जल्दी पाँव उठा कर नहीं चल पातीं। और इसका भी कारण है उनके स्तनों तथा श्रोणि-भाग का भारी होना—

उद्वेजयत्यङ्गुलि-पार्ष्णिभागान् मार्गे शिलीभूतहिमेऽपि यत्र।

न दुर्वह-श्रोणि-पयोधरार्ता भिन्दन्ति मन्दां गतिमश्वमुख्यः॥

कुमार. १-११

पुरुरवा उर्वशी को खोजता घूम रहा है। नदी के तट पर खड़ा होकर सोचता है—संभव है, इधर से गयी हो किन्तु दूसरे ही क्षण वह जल से गीली बालू को देखकर समझलेता है कि इधर से नहीं गयी है अन्यथा नितम्बों के भारी होने से उसकी एड़ियाँ बालू में धँस गयी होतीं और उनके चिह्न दिखायी पड़ते—

पद्भ्यां स्पृशेद् वसुमतीं यदि सा सुगात्री

मेघाभिवृष्ट-सिकतासु वनस्थलीषु।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पश्चान्नता गुरुनितम्बतया ततोस्या
दृश्येत चारु-पदपङ्क्तिरलक्ताकाङ्क्षा ॥

विक्रमो० ४-६

स्तनों पर हार पहनने और उन पर चन्दन लेप लगाने का उल्लेख ऊपर हुआ है। कण्ठ में लटकते हुए हार की लड़ें हिल हिलकर गीले चन्दन को पोंछ देती है। पार्वती ने तप के लिये हार पहनना छोड़ दिया और वालारूण के समान वभ्रु वल्कल पहनने लगी किन्तु तब उसके स्तनों के विस्तार के कारण वल्कल के जोड़ उखड़ जाते थे—

विमुच्य सा हारमहार्य-निश्चया
विलोलयष्टि-प्रविलुप्त-चन्दनम्।
वभार बालारुणवभ्रु वल्कलं
पयोधरोत्सेध विशीर्ण-संहति॥ कुमार ५-८

वल्कल के जोड़ ही स्तनों की ऊँचाई के कारण नहीं उखड़ जाते थे प्रत्युत खुले स्थान में बैठने से वर्षा की बूँदें जब उसके ऊपर पड़ती थीं तो पहले नेत्रों के पलकों पर क्षण भर टिक जाती थीं, फिर वहाँ से टपक कर ओंठों पर गिरती थीं और वहाँ से फिसल कर जब स्तनों से टकराती थी जो उनकी चोट खाकर चूर्ण-चूर्ण हो जाती थीं—

स्थिताः क्षणं पक्ष्मसु ताडिताधराः पयोधरोत्सेधनिपात-चूर्णिताः।

कुमार ५-२४

बाहु

बाहु के प्रसंग में पीछे कहा गया है कि स्त्री के नत स्कन्ध शोभन माने जाते थे—बाहू नतावंसयोः। इससे बाहु की सुन्दरता बढ़ती है। शाकुन्तल में भी बाहुओं को स्त्रस्तांस (झुके कन्धों वाले) कहकर कवि ने इस मान्यता की पुष्टि की है—"उन्नतांसः पुमान् पूज्यः स्त्रस्तांसा तु सुन्दरी"—

स्त्रस्तांसावतिमात्र लोहित-तलौ बाहू घटोत्क्षेपणात्।
अद्यापि स्तनवेपथुं जनयति श्वासः प्रमाणाधिकः। शाकु. १-२६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसमें बाहु तथा उरोज दोनों के सौन्दर्य का वर्णन आ गया है। पार्वती की बाहुओं की कोमलता तो उनके उपमान से भी आगे बढ़ गयी थी। वे शिरीष के पुष्पों से भी अधिक सुकुमार थीं—

शिरीष-पुष्पाधिक-सौकुमार्यौ बाहू तदीयाविति मे वितर्कः।
पराजितेनापि कृतौ हरस्य यौ कण्ठपाशौ मकरध्वजेन॥

कुमार. १-४०

वे प्रणय के पाश हैं। शाकु० में कवि ने उन्हें 'कोमल विटपानुकारिणौ' कहा है।

कण्ठ

कण्ठ के सौन्दर्य का भी पृथक् महत्त्व है क्योंकि हार उसी में पहना जाता है। कण्ठ ही सुन्दर न हुआ तो हार की शोभा भी कम हो जायगी। पार्वती का कण्ठ स्तनों के कारण बन्धुर (उन्नत) लगता था। अतः उसपर पहना हुआ निस्तल (गोल) हार जहाँ कण्ठ की शोभा बढ़ाता था वहीं कण्ठ हार के आकर्षण में वृद्धि करता था—

कण्ठस्य तस्याः स्तन-वन्धुरस्य मुक्ताकलापस्य च निस्तलस्य।
अन्योन्य-शोभा-जननाद् वभूव साधारणो भूषण-भूष्य-भावः।

कुमार. १-४२

कण्ठ सुन्दर हो और उससे निकलते स्वर भी मुधर तब तो कहना ही क्या? स्वर के साथ वाणी शुद्ध संस्कारवती हो तो वक्ता का सौन्दर्य निखर उठता है। तब तो लगेगा कि उसके सम्मुख कोकिल की वाणी तन्त्रों के उलप पुलट कर जाने से वेसुरीबजती वीणा है—

स्वरेण तस्याममृत-स्रुचेव प्रजल्पितायामभिजात-वाचि।
अप्यन्यपुष्टा प्रतिकूल-शब्दा श्रोतु र्वितन्त्रीरिव ताड्यमाना॥

कुमार. १-४५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाभि

कवियों ने नारी की नाभि, त्रिवली और रोमराजि को भी अपने वर्णन का विषय बनाया है किन्तु कालिदास से लेकर बाण तक सभी ने एक ही उपमान ग्रहण किये हैं। नाभि का गम्भीर होना और उस पर पतली रोमराजि तथा उदर में तीन बलि (रेखायें) पड़ना सौन्दर्य का लक्षण माना जाता है। वाण ने नाभि को 'गङ्गावर्त सनाभिः' कहा है। कालिदास कहते हैं—

कटि

मध्येन सा वेदि-विलग्न-मध्या वलित्रयं चारु वभार वाला।
आरोहणार्थं नवयौवनेन कामस्य सोपानमिव प्रयुक्तम्॥

कुमार. १-३९

मध्य भाग अत्यन्त क्षीण और उस पर वलित्रय। लगता था जैसे यौवन ने काम के आरोहण के लिये सीढ़ी बनायी है। और उसके निम्न गम्भीर नाभि के रन्ध्र में प्रविष्ट होती हुई यौवन के साथ जनमी रोम राजि देखकर लगता था मानो उसकी मेखला में टँकी नील मणि की किरणें ग्रन्थि- सार्थ (नीवी) से बाहर निकल कर नाभि तक आ रही हों। कटि जो काञ्ची या रशना पहनने का स्थान है जिसे अभी ऊपर 'मध्य' कहा है, 'मुष्टिमेया' कही गयी है। यह काञ्ची- गुण- स्थान प्रेमियों को आकृष्ट करता है। कवि कहता है—

एतावता नन्वनुमेयशोभि काञ्चीगुणस्थानमनिन्दितायाः।
आरोपितं यद्गिरिशेन पश्चादनन्यनारी-कमनीयमङ्कम्॥ वही ३७

उरु और जङ्घा

जङ्घायें आनुपूर्वी से गोल (गोपुच्छाकार), अधिक लम्बी न हों तो सुन्दर। किन्तु पार्वती की जंघाओं की रचना करते समय ब्रह्मा ने सारी लावण्य सामग्री उन्ही मे लगा दी और शेष अंगों की रचना के लिये उन्हें फिर से सौन्दर्य- सामग्री जुटानी पड़ी। पार्वती के उरु स्थूल और अत्याकर्षक थे। उरुओं के दो ही उपमान कवियों के पास हैं—हाथी की सूँड और कदली किन्तु प्रथम कर्कश है और द्वितीय अति शीतल। इसलिये वे दोनों उरुओं की उपमा के अयोग्य सिद्ध हुए क्योंकि उमा की जङ्घायें अति कोमल होने के साथ यौवनोष्मा से भी परिप्लुत थी—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वृत्तानुपूर्वे च न चातिदीर्घे जङ्घे शुभे सृष्टवतस्तदीये।
शेषाङ्ग-निर्माण-विधौ विधातु र्लावण्य उत्पाद्य इवास यत्नः।

वही १-३५

नागेन्द्र-हस्तास्त्वचि कर्कशत्वादेकान्त-शैत्यात् कदली-विशेषाः।
लब्ध्वापि लोके परिणाहि रूपं जाता स्तदूर्वोरूपमान-बाह्याः।

वही १-३६

चरण

देवों का सौन्दर्य वर्णन प्रायेण चरणों से प्रारम्भ होता है किन्तु मर्त्यों का केशों से । उसमें चरण अन्तिम पड़ाव है। चरणों को लाक्षा राग (लाल रंग) से रंजित किया जाता और उनमें नूपुर पहने जाते थे जो इस तरह चलते हुए बजते थे कि लगता था जैसे हंस बोल रहा हो—

नितान्त-लाक्षारसरागरञ्जितै र्नितम्बिनीनां चरणैः सनूपुरैः।
पदेपदे हंसरुतानुकारिभिर्जनस्य चित्तं क्रियते समन्मथम्॥

ऋतु. १-५

ऐसे ही—

पादाम्बुजानि, कलनूपुर-शेखरैश्च
नार्यः प्रहृष्ट मनसोऽद्यविभूषयन्ति वही ३-२०

हेमन्त में पैरों में नूपुर नहीं पहने जाते थे। यहाँ चरणो की उपमा कमलें से दी है—

न नूपुरै र्हंसरुतं भजद्भिः पादाम्बुजान्यम्बुदकान्ति-भाञ्जि।

वही ४-४

पार्वती के चरणों का वर्णन करते हुए कवि ने कहा कि ऐसा लगता है कि लीला और विलासों से भरी चाल चलने में हंसों ने उसे प्रशिक्षण दिया था। क्योंकि बदले में उन्हें उसके नूपुरों का मंजीर-सिंजित और मञ्जु कूजित उससे सीखना था—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सा राजहंसैरिव संनताङ्गी गतेषु लीलाञ्चित-विक्रमेषु।

व्यतीयत प्रत्युपदेशलुब्धै रादित्सुभिर्नूपुर-सिञ्जितानि।

कुमार. १-३४

वह चलती थी तो उसके कुछ ऊपर उठी उँगलियों और पादतलों की रक्त प्रभा जहाँ जहाँ भूमि पर पड़ती थी वहाँ वहाँ ऐसा लगता था जैसे स्थलकमल खिल गये हैं। पैरों के अग्रभाग का कुछ ऊँचा और पाद तल का तलस्पर्शी होना सौभाग्य का सूचक होता है—यस्या: रक्ततलौ पादावुन्नताग्रौतल- स्पृशौ—निगूढ- गुल्फौ निहितौ सा स्यान्नृपति- संमता। कालिदास का कथन है कि पार्वती में ये लक्षण विद्यमान थे—

अभ्युन्नताङ्गुष्ठ-नख-प्रभाभि र्निक्षेपणाद् रागमिवोद्गिरन्तौ।

आजह्रतुस्तच्चरणौ पृथिव्यां स्थलारविन्द-श्रियमव्यवस्थाम्॥

कुमार. १-३३

सीता भी हरण के समय नूपुर पहने थी जिसे उसने अभिज्ञान के लिये विमान से नीचे गिरा दिया गया था—

सैषा स्थली यत्र विचिन्वता त्वां भ्रष्टं मया नूपुरमेक मुर्व्याम्।

अदृश्यत त्वच्चरणारविन्द-विश्लेष-दु:खादिव वद्धमौनम्।

रघु. १३-२३

लाक्षाराग

मंगलावसरों पर पैरों में लाक्षाराग (महावर) लगाने की प्रथा अभी तक चली आती है। विवाह के अवसर पर प्रसाधिका पार्वती के पैरों में महावर लगाकर उपहास पूर्वक कहती है—लो अब इसे शिव के सिर पर चढ़ी अपनी सौत चन्द्रकला के सिर पर रखना—

पत्यु: शिरश्चन्द्रकलामनेन स्पृशेति सख्या परिहासपूर्वम्।

सा रञ्जयित्वा चरणौकृताशी र्माल्येन तां निर्वचनं जाघान।

कुमार. ७-१९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पार्वती के विवाह के समय बारात की शोभा के देखने के लिए पैरों को अधूरा रँगे ही जो स्त्रियाँ दौड़ पड़ी उन्होंने तो गीले लगे महावर से सारा मार्ग ही रंग डाला—

प्रसाधिकालम्बितमग्र-पादमाक्षिप्य काचिद् द्रवरागमेव।
उत्सृष्ट-लीलागतिरागवाक्षादलक्तकाङ्कां पदवीं ततान।

वही ७-५८

रति भी पति की मृत्यु के पश्चात् विलाप करती हुई कहती है कि तुम मेरे चरणों में महावर लगाते लगाते चल दिये। यह बायाँ पांव तो सूना ही रह गया। आओ और इसे लाक्षाराग से भूषित कर जाओ—

तमिमं कुरु दक्षिणेतरं चरणं निर्मित-रागमेहि मे। कुमार. ४-१९

आभरण प्रसाधन

अभिजात वर्ग की स्त्रियों के रहन सहन का स्तर काफी उँचा था। वे ऋतु के अनुकूल श्वेत, रक्त या झीने और भारी वस्त्र पहनती थीं। कभी कौशेयक, कभी सितदुकूल, कभी रक्त-सूक्ष्म। शरद में "वासोवसाना तरूणार्करागम्।" विवाह के समय कौशेय वस्त्रधारण करती थीं। प्रत्येक ऋतु में अलग अलग रंगों के और अनुकूल परिधानों की चर्चा ऋतु संहार में मिलती है। इसी प्रकार प्रत्येक ऋतु में उसके अनुसार कालागुरु, चन्दन आदि से शरीर पर पत्र- रचना की प्रथा थी—कालागुरु-प्रचुर चन्दन-चर्चिताङ्ग्य:। ऋतु. २-२२। ग्रीष्म के उपचार के लिये पंखों को चन्दन मिश्रित जल में भिगोकर झला जाता था—सचन्दनाम्बु व्यजनोद्भवानिलैः—वही १-८। कालागुरु का प्रयोग सुगन्ध और शरीर में ऊष्मा पहुँचाने के लिये किया जाता था—गात्राणि कालीयक- चर्चितानि। वही ४-५ और—प्रकामकालागुरु- धूपितानि विशन्ति शय्यागृहमुत्सुकाः स्त्रियः—वही ५-५। हेमन्त में सोने के कक्ष कालागुरु से धूपित कर लिये जाते थे। मुक्ताहार, रशना, कंगन, अंगद, नूपुर जैसे कुछ सुवर्ण-मुक्ताभरणों को छोड़कर शेष अंग-सज्जा पुष्पों से करने की प्रथा इस युग में जान पड़ती है। रानियाँ तक शिरीष के पुष्पों से स्वयं को अलंकृत करती थीं—मेघदूत में तो संपूर्ण शृंगार के साधन पुष्प ही बतलाये गये हैं—अमी शिरीष प्रसवावतंसाः प्रभ्रंशिनो वारि विहारिणीनाम्-रघु. १६-६१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हस्ते लीला कमलमलके वालकुन्दानुविद्धम्।

नीता लोध्रप्रसवरजसा पाण्डुतामानने श्रीः।

चूडापाशे नव कुरवकं चारु कर्णे शिरीषं

सीमन्ते च त्वदुपगमजं यत्र नीपं वधूनाम्। मेघ. २-२

अभ्यङ्ग अर्थात् शरीर में तैल मर्दन और उबटन (उद्वर्तन) का वर्णन कुमार० में है। और लोघ्र के चूर्ण से अभ्यङ्ग छुड़ाने की विधि का भी उल्लेख है—तां लोध्र-कल्केन कृताङ्ग तैलामाश्यान- कालेय-कृताङ्ग रागाम्। कुमार. ७-९। आजकल लोघ्रकल्क का स्थान वेसन ने ले लिया है।

कटि में काञ्ची या रशना पहनना, जिसकी लटें नितम्बों पर लटकती हो—यह तो सामान्य प्रथा थी—नितम्ब विम्वाश्च सहेम मेखलाः। ऋतु. १-६ तथा 'स्त्रियश्च काञ्ची-मणि कुण्डलोज्वलाः। वही २-२०। स्त्रियों के तीन आकर्षक अंगों—कुच, श्रोणि वलित्रिभंग, रोमराजि, की अलंकृति के मधुर चित्र कवि ने प्रस्तुत किये हैं—

दधति वरकुचाग्रै रुन्नतै र्हार यष्टिं- प्रतनु सित दुकूलान्यायतैः श्रोणिविम्वैः। नवजल कण सेकादुद्गतां रोमराजीं-ललित वलि त्रिभङ्गै र्मध्य देशैश्च नार्यः। ऋतु. २-२६। पावस ऋतु के प्रसंग में कवि ने इन सभी अङ्गों के प्रसाधन का चित्र प्रस्तुत कर दिया है। दुकूल और मेखला नितम्बों की शोभा के संवर्धक हैं और तन्वंशुक स्तनों का सौन्दर्य बढ़ाते हैं—नितम्ब-बिम्वैः सदुकूल मेखलैः स्तनैः सहाराभरणैः सचन्दनैः। वही १-४ तथा—विमुच्य वासांसि गुरुणि साम्प्रतं स्तनेषु तन्वंशुकमुन्नतस्तनाः। वही १-७। इसी प्रकार- प्रतनुसित- दुकूलान्यायतैः श्रोणिविम्बैः। वही १-२६ तथा—श्रोणीतटं सुविपुलं रशनाकलापैः। वही ३-२० एवं— नितम्ब- बिम्बेषु नवं दुकूलम्—वही ४-३। हेमन्त में स्थिति सर्वथा भिन्न होती है। तब काञ्चन और रत्नों से चित्र- विचित रशना नितम्ब पर नहीं पहनी जाती क्योंकि वह त्वचा को शीतल लगती है—काञ्ची गुणैः काञ्चन- रत्नचित्रैर्नो भूषयन्ति प्रमदा नितम्बान्—वही ४-४। इस ऋतु में भुजाओं में कंगन और भुजबन्ध भी नहीं अच्छे लगते क्योंकि वे शीतल होकर भी भुजा में चुभते है। इसलिये कहा है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न बाहु-युग्मेषु विलासिनीनां प्रयान्ति सङ्गंवलयाङ्गदानि।

वही ४-३

वसन्त में स्थिति बदल जाती है। तब प्रमदायें कुसुम्भी रंग में रंगे हुए दुकूल कटि में धारण करती है—कुसुम्भ- रागारुणितैर्दुकूलै र्नितम्ब- बिम्वानि विलासिनीनाम्—अलंक्रियन्ते—वही ६-५। जो बलयाङ्गद और काञ्ची हेमन्त में अप्रिय लगते हैं वे बसन्त में प्रिय बन जाते हैं—

स्तनेषु हाराः सितचन्दनार्द्राः भुजेषु सङ्गंवलयाङ्गदानि।

प्रयान्त्यनङ्गातुरमानसानां नितम्बिनीनां जघनेषु काञ्च्यः।वही ६-७

तथा—

गुरुणि वासांसि विहाय तूर्णं तनूनि लाक्षारसरञ्जितानि।

सुगन्धिकालागुरुधूपितानि धत्ते जनः काममदालसाङ्ग।। ६-१३

इससे पहले हेमन्त में वे कोशे से बनी साड़ी पहनती थीं विभिन्न रंगों में रंगी हुई—सराग- कौशयक- भूषितोरवः। वही ५-८। मेखला प्रायेण सुवर्ण से बनी रहती थी। आज के समान तब चाँदी का प्रचार नहीं था सम्पन्न जनों में। इसीलिये कालिदास सदा रत्नमयी हेमकाञ्ची की बात कहते हैं—विलम्बि-तपनीय मेखला- कुमार. ८-८१। जहाँ भी अवसर मिला, कालिदास ने पयोधरों पर लगे चन्दन, मुक्ताओं से गुँथे सुवर्णाभूषणों और मणि- जटित रशना की चर्चा कर दी है। यो वे नाभि के गाम्भीर्य, भ्रूभङ्ग और स्तनों की भी शोभा को नहीं भूलते—

तं पयोधर-निषिक्त-चन्दनैर्मौक्तितक ग्रथित-चारु-भूषणैः।

ग्रीष्मवेष विधिभिः सिषेविरे श्रोणिलम्विमणि-मेखलैः-स्त्रियः।

रघु. १९-४५

तथा—

आवर्त शोभानत-नाभि-कान्ते र्भङ्गो भ्रुवां द्वन्द्वचराः स्तनानाम्।

जातानि रुपावयवोपमानान्यदूर-वर्तीनि विलासिनीनाम्।

रघु. १६-९३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा—

अमीजलापूरित-सूत्रमार्गा मौनं भजन्ते रशना-कलापाः ।

वही १६-६५

और हार ?

पयोधरोत्सर्पिषु शीर्यमाणः संलक्ष्यते न च्छिदुरोऽपि हारः ।

रघु. ६-६२

अग्निमित्र मालविका को आता देख उसके सौन्दर्य का वर्णन करता हुआ उसके निम्न अंगों पर ही दृष्टि गड़ाता है—नयन, कुच कटि और नितम्ब । नयन आयत है, कटिक्षीण, कुच उन्नत और नितम्ब विपुल (बड़े)—

विपुलं नितम्ब-देशे मध्ये क्षामं समुन्नतं कुचयोः ।
अत्यायतं नयनयो र्मम जीवितमेतदायाति । माल. ३-७

हाथ में लीला कमल, केशों में गूँथे ताजे अधखिले कुन्द पुष्प, मुख परलोध्र के पराग से बना चूर्ण (पाउडर), जूड़े में नये कुरबक, कानों में शिरीष कुसुम, और सीमन्त ।(पटियों) में नद्ध नीप सुमन—यह था बहू का शृंगार । अलका में कल्पवृक्ष की कल्पना करते समय कवि ने उसके द्वारा प्रदान की जाने वाली जिन वस्तुओं की चर्चा की है, वे हैं रंग बिरंगे वस्त्र, आँखों में मस्ती भर देने वाला मधु, किसलयों सहित खिले फूल, चरणों में लगाने योग्य लाक्षाराग- ये सारे नारी-मण्डन कल्पवृक्ष देता था। हर्म्य सदा कुसुमों से सुरभित और उनमें विचरण करने वाली लाक्षाराग-मण्डित-चरणा स्त्रियाँ- यह दृश्य था संपन्न घरो का—

हर्म्येष्वस्याः कुसुमसुरभिष्वध्वखेदं नयेथाः
लक्ष्मीं पश्यन् ललित-वनिता-पादरागाङ्कितेषु ।। मेघ. १-३३

वे घर ही क्या जिनके फर्श नववधुओं के चरणों के लाक्षाराग से अंकित न हों । ताम्बूल से भरा मुख, माला से सनाथ कण्ठ और विलेपन से भूषित भुजायें और वक्ष—गृहीत ताम्वूल विलेपनस्त्रजः । ऋतु. ५-५ । उनके मुख भी मद्य पान के कारण सुगन्ध बिखेरते थे—सुखासवामोदित- वक्त्रपङ्कजाः । वही । मद्यपान की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रथा सामान्य थी। अपनी कामिनियों के साथ बैठकर रात्रि बेला में मद्य पीना सम्पन्नता का लक्षण था।

मद्यपान

मद्य कामिनी की शोभा का अभिवर्धक है। इसलिये उसके पान में सामाजिक दृष्टि से अनौचित्य की कल्पना नहीं थी। कोई झिझक भी नहीं थी। स्त्रियाँ पतियों के साथ बैठकर मद्य पीती थीं। सुगन्धित जल से धोया हुआ पक्का संगमरमरी फर्श, ऊपरी तल की खुली छत, चन्द्रमा की शीतल चाँदनी, तन्त्री पर बजायी जाती गीत- ध्वनि और पास ही बैठी हुई प्रिया की श्वासों से कम्पित होते प्याले में मधु,- ये सब बातें काम और रति दोनों के रंग को गाढ़ा बना देती हैं। सम्पन्न गृहस्थों की यह चर्या थी—

सुवासितं हर्म्यतलं मनोहरं प्रिया-मुखोच्छ्वास-विकम्पितं मधु।

सुतन्त्रिगीतं मदनस्य दीपकं शुचौ निशीथेऽनुभवन्ति कामिनः।

ऋतु. १-३

फिर शुक्लपक्ष की निशीथ बेला का तो कहना ही क्या? मद्य को सुगन्ध प्रदान करने के लिये उसमें कमल की पंखडुयाँ डाल दी जाती रही होंगी। प्रिया के निःश्वास से पंखुड़ियाँ हिलती होंगी—

सुगन्धि-निःश्वास-विकम्पितोत्पलं

मनोहरं कामरति-प्रबोधकम्।

निशासु हृष्टाः सहकामिभिः स्त्रियः

पिबन्ति मद्यंमदनीयमुत्तमम्। वही ५-१

तथा—

वदनैः ससीधुभिः-स्त्रियो रतिं संजनयन्ति कामिनाम्।

वही २-१८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मद्य के सुगन्धित होने के कारण ही कहा है—सुखासवामोदित-वक्त्रपङ्कजा: । ऋतु. ५-५ । मद्य शरीर में ऊष्मा लाता है । जिससे शिशिर का शीत बाधित नहीं करता और लोग आनन्द से सोते हैं—स्वपन्ति शीतं परिभूय कामिनः । ऋतु. ५-९ । मद्य में वाणी लड़खड़ा जाती है । बात का क्रम बीच बीच में स्खलित होता है और नेत्र घूर्णमान हो जाते हैं । इन स्थितियों का वर्णन कालिदास ने किया है—

वाक्यानि किंचिन्मदलालसानि चकार कामः प्रमदा-जनानाम् ।

वही ६-११

जब काम यों ही वाक्यों को मद-लालस बना रहा हो तब उसके साथ मद्य के जुड़ जाने पर तो कहना ही क्या ? स्वयं शंकर ने पार्वती को अपने हाथों से साग्रह मद्यपान कराया । वह कहते हैं—

भावभक्तिरथवा सखीजनः सेव्यतामिदमनङ्ग-दीपनम् ।

इत्युदारमभिधाय शंकरस्तामपाययत पानमम्बिकाम् ।

कुमार. ८-७७

और उसकी प्रतिक्रिया इस प्रकार हुई । पार्वती की आँखें घूमने लगी । बातबीच- बीच में टूटने लगी, आनन पर स्वेद बिन्दु झलक आये और विनावात मदजन्य स्मित औठों पर खेलने लगा—

धूर्णमान-नयनं स्खलत्कथं स्वेदविन्दु मदकारणं स्मितम् ।

आननेन नतु तावदीश्वरश्चक्षुषा चिरमुमामुखं पयौ ।

कुमार. ८-८०

क्योंकि—

सावभूववशवर्तिनी द्वयोः शूलिनः सुवदना मदस्य च ।वही ७९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋतु वर्णन

बसन्त वर्णन

वसन्त ऋतु से संस्कृत कवियों को बहुत लगाव है । कालिदास ने ऋतुसंहार, कुमारसंभव, रघुवंश और तीनों नाटकों मे बसन्त का वर्णन किया है, यद्यपि नाटकों में उसकी प्रसंग-प्राप्त संक्षिप्त ही चर्चा है । ऋतु संहार में वह योद्धा के समान धनुर्वाण से सज्जित होकर आता है संभोगार्थियों के मन को विद्ध करने के लिये । मुकुलित आमों के अंकुर उसके वाण हैं और उस पर बैठी भ्रमर-पंक्ति धनुष की प्रत्यञ्चा—

> **प्रफुल्ल-चूताङ्कुर-तीक्ष्ण-सायकः**
>
> **द्विरेफमाला-विलसद्-धनुर्गुणः ।**
>
> **मनांसिभेत्तुं सुरत-प्रसंगिनां**
>
> **वसन्त-योद्धा समुपागतः प्रिये ।** ऋतु. ६-१

वृक्ष फूलों से सज गये, जल कमलों से, और वायु सुगन्ध से भर गयी । अब दिन रम्य लग रहे हैं और प्रदोष काल सुखकर । स्त्रियाँ कानों में कर्णिकार, नीले अलकों में रक्त अशोक और कण्ठ में नव मल्लिका का हार पहन रही है । लोग दिन में छाया में बैठना पसन्द करते हैं और रात को चन्द्र किरणों के नीचे । युवतियाँ प्रियङ्गु, कालीयक, कुंकुम, कस्तूरी आदि से युक्त चन्दन कालेप शरीर पर करने लगी । और पुरुष मोटे भारी वस्त्रों के स्थान पर लाक्षारस से रंगे हल्के पतले वस्त्र पहनते हैं और उन्हें पहले सुगन्धित कालागुरु से धूपित कर लेते हैं । स्त्रियाँ कुसुम्भी रंग से रंगे दुकूल का अधोवस्त्र और पतले कुंकुम रंगे अंशुक का स्तन-परिधान धारण करती हैं । (वही २, ५, ६, १४, १५) ।

अशोक, प्रतिमुक्तक लता और कुरबक पूरी बहार पर हैं । फूलों से लदे टेसू वृक्षों से पृथिवी रक्त वस्त्रों से ढँकी नयी बहू सी लग रही है—सर्वत्र किंशुकवनैः कुसुमावनम्रैः-रक्तांशुका नववधूरिव भाति भूमिः । वही २१ । पुंस्कोकिल और भृङ्ग रसोन्मत्त होकर गा रहे हैं । वसन्त में सभी कुछ रमणीयसा हो गया है—सर्व प्रिये चारुतरं वसन्ते । वही २१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋतु संहार का वसन्त वर्णन उद्दाम-काम-ग्रस्त अपरिपक्व लेखनी की प्रसूति है। इसमें वसन्त की सुषमा कम और नारी शरीर का अर्धनग्न सौन्दर्य अधिक झाँकता है। वसन्त के प्रत्येक पुष्प, पत्र, वात और उनसे प्रभावित पशु पक्षियों का उल्लेख इस दृष्टि से किया गया है कि उनका कामियों के मन पर क्या प्रभाव पड़ता है, और विलासी युवजन इस ऋतु में कैसे वस्त्रालंकरण और लेपादि धारण करते हैं और कैसे मनोरंजनों के सहारे समय बिताते हैं। उदाहरणार्थ—

कुसुम्भरागारुणितैर्दुकूलै र्नितम्ब-विम्बानि विलासिनीनाम्।
तन्वंशुकैः कुङ्कुमरागगौरैरलंक्रियन्ते स्तन-मण्डलानि। वही ६-५

नेत्रेषु लोलो मदिरालसेषु गण्डेषु पाण्डुः कठिनः स्तनेषु।
मध्येषु निम्नो जघनेषु पीनः स्त्रीणामनङ्गो वहुधा स्थितोऽद्य।

वही १२

मधुसुरभि मुखाब्जं लोचने लोध्र- ताम्रे
नवकुरवक पूर्णः केशपाशोमनोज्ञः
गुरुतर-कुचयुग्मं श्रोणि-विम्बं तथैव
न भवति किमिदानीं योषितां मन्मथाय। वही ३३

विरला ही कोई श्लोक है जिसमें वसन्त के व्याज से कामिनी की चर्चा न की गयी हो। वर्णन की समाप्ति भी किस प्रकार होती है—

आम्री-मञ्जुल-मञ्जरी-वर-शरः सत्-किंशुकं यद् धनु,
र्ज्यायस्यालिकुलं कलङ्क-रहितं छत्रं सितांशुः सितम्।
भत्तेभो मलयानिलः परभृता यद्वन्दिनो लोकजित्
सोऽयंवो वितरीतरीतु वितनुर्भद्रं वसन्तान्वितः॥ वही ३८

वसन्त नामक सहचर के साथ राजा अनंग आप सबका कल्याण प्रदान करे। आम की सुन्दर मंजरियाँ उनके श्रेष्ठ बाण हैं, किंशुक धनुष हैं भ्रमराली प्रत्यञ्चा है, चन्द्र शुभ्रछत्र है, मलयानिल मत्तगज है और प्राभृत बन्दी या भाट। ऐसा लोकजयी राजा है मन्मथ। कुल मिलाकर कामियों के जीवन पर पड़ने वाले वसन्त के प्रभाव का ही चित्रण है यहाँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राकृतिक सौन्दर्य को उपाधिरहित अर्थात् किसी अन्य के सन्दर्भ में न देख कर विशुद्ध सौन्दर्य के रूप में ग्रहण करना विशेष प्रतिभा एवं परिपक्वता की माँग करता है। कुमार संभव के कवि में एक सीमा तक इन दोनों का संयोग दिखायी देता है। यद्यपि इस वर्णन का भी उद्देश्य कामोद्दीपन ही है फिर भी इसमें कवि ने काफी संयम बरता है और कई स्थानों पर प्रकृति के सात्त्विक उल्लास और यौवन को बिना उस पर अपने को आरोपित किये, देखने की चेष्टा की है। काम शिव के हैमवत आश्रम में असमय वसन्तावतार कर देता है। फलत: दक्षिणानिल बहने लगा, अशोक में नीचे से ही पल्लवफूट पड़े, पुष्प खिल उठे, कर्णिकार कुसुमों का आकर्षक रंग दिशाओं को लुभाने लगा। उसके सुन्दर कुसुमों में गन्ध का न होना कष्टकर था। कोकिल आम्र की नयी मंजरियों का स्वाद लेकर मधुर कूजन करने लगा। लाल लाल पलाश पूरी तरह खिल न पाने से अर्ध चन्द्र के समान ऐसे दिख रहे थे जैसे वनस्थली के शरीर पर ताजे नखक्षत हो—

कुवेरगुप्तां दिशमुष्णरश्मौ गन्तुं प्रवृत्ते समयं विलङ्घ्य।
दिग्दक्षिणा गन्धवहं मुखेन व्यलीक-निःश्वासमिवोत्ससर्ज।।

कुमार. ३-२३

असूत सद्यः कुसुमान्यशोकः
स्कन्धात् प्रभृत्येव सपल्लवानि।वही २६
वर्ण-प्रकर्षे सति कर्णिकारं दुनोति निर्गन्धतया स्म चेतः।

वही २८

चूताङ्कुरास्वादकषायकण्ठः पुंस्कोकिलोयन्मुधरं चुकूज। वही ३२
वालेन्दुवक्राण्यविकास-भावाद्वभुः पलाशान्यतिलोहितानि।
सद्यो वसन्तेन समागतानां नखक्षतानीव वनस्थलीनाम्।वही २९

इन श्लोकों में वर्णन की प्रौढ़ता स्पष्ट है। क्रम और मर्यादा को तोड़कर जब सूर्य उत्तरादिक् का आलिङ्गन करने लगा तो दक्षिणादिक् गन्धवह के ब्याज से कष्टभरा निःश्वास छोड़ने लगी—ठीक वैसे ही जैसे क्रमभंग कर प्रेमी के अन्य प्रिया के पास चले जाने पर दक्षिणा (शालीन) नायिका कुछ कहती नहीं, केवल उच्छ्वास छोड़कर रह जाती है। अन्तिम श्लोक का चित्र भी कितना मनोहर है। पलाश में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फूल आ गये पर वे अभी अधखिले हैं। उनका आकार अर्ध चन्द्र जैसा है। अर्ध विकसित होने के कारण वे अभी खूब लाल हैं। लगता है कि वसन्त रूप प्रेमी ने वनस्थली रूपी प्रिया के शरीर पर संभोग काल में ताजे नखक्षत लगा दिये हैं। इन दोनों उत्प्रेक्षाओं में वसन्तानुरूप प्रणय-चित्र है। और—

मधुद्विरेफः कुसुमैकपात्रे पपौ प्रियां स्वामनुवर्तमानः।
शृङ्गेण च स्पर्श-निमीलिताक्षीं मृगीमकण्डूयत कृष्णसारः।

वही ३६

ददौ रसात् पङ्कजरेणुगन्धि गजाय गण्डूष-जलं करेणुः।
अर्धोपभुक्तेन विसेन जायां संभावयामास रथाङ्गनामा। वही ३७
पर्याप्त-पुष्पस्तवक-स्तनाभ्यः स्फुरत्-प्रवालौष्ठ-मनोहराभ्यः।
लतावधूभ्य स्तरवोऽष्यवापु र्विनम्र- शाखा-भुजबन्धनानि।

वही ३९

कहीं भ्रमर एक ही कमल-पत्र रूपी पानपात्र में अपनी प्रिया भ्रमरी के साथ बैठा मधुपान कर रहा है। वह पहले एक घूँट प्रिया को पिलाता है और तब उसके पीछे स्वयं पीता है। हथिनी है, जो अपनी सूँड में कमल के पराग से सुगन्धित जल भर भर अपने प्रेमी हाथी को दे रही है और चक्रवाक कमलनाल को तोड़कर आधा स्वयं खाता है और आधे से अपनी पत्नी का सत्कार कर रहा है। ये प्रकृतिगत दाम्पत्य- प्रणय के चित्र हैं। केवल कालिदास की अन्तर्दृष्टि इनका साक्षात्कार कर पायी है। ये चित्र किसी भी सार्वकालिक और सार्वदेशिक साहित्य की शोभा हो सकते हैं। कालिदास की काव्य दृष्टि यहाँ उत्कर्ष के शिखर पर है जो स्थावर-प्रकृति के भीतर चलने वाले प्रणय- व्यापार का अन्तर्दर्शन कर सकी है। उनकी दृष्टि में लतायें वधू हैं। फूलों के भारी भरकम गुच्छे उनके स्तन हैं जिनके भार से वे झुकी हुई हैं। ताजे लाल किसलय उनके रक्ताधरोष्ठ हैं। और वे अपनी झुकी हुई भुजाओं से वृक्षों की अवनम्र शाखाओं का प्रेमालिङ्गन कर रही हैं।

रघुवंश के नवम सर्ग में भी २५ से ४७ वें श्लोक तक कवि ने वसन्त का वर्णन किया है। इसकी पृष्ठभूमि पूर्वोक्त वर्णन से भिन्न है। कुमार० का वर्णन हिमगिरि पर प्रकट होने वाले वसन्त का है जहाँ नैसर्गिक सुषमा अक्षत रूप में केलि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करती है जब कि रघुवंश का वर्णन राजकीय प्रमद वन का है । प्रथम का लक्ष्य शान्त, समाहित मन में सोद्देश्य उत्का जागृत करना है जबकि इसका लक्ष्य सामान्य युवजन पर मधु के आगमन की प्रतिक्रिया व्यक्त करना है । इस दृष्टि से रघुवंश में कवि की दृष्टि वही है जो ऋतुसंहार में थी । अन्तर प्रौढिमा तथा दृष्टि की व्यापकता का है । देखें—

कुसुम-जन्म ततो नवपल्लवा स्तदनुषट्पद-कोकिल-कूजितम् ।
इति यथाक्रममाविरभून्मधु द्रुमवतीमवतीर्य वनस्थलीम् ।

रघु. ९-२६

पहले फूल खिले, फिर नये नये किसलय निकलने लगे, फिर कोकिल, भ्रमर और हंसादि पक्षी याचक के समान कमलिनियों पर मँडराने लगे—ऐसे ही जैसे याचक गण न्यायपूर्वक अर्जित की हुई परोपकारी राजा की सम्पत्ति के चारों ओर मँडराते है । अशोक के पुष्प ही केवल नहीं, दयिताओं के द्वारा कानों में पहने उनके किसलय भी कामोद्दीपन कर रहे हैं । वसन्त के आगमन के साथ किंशुकों में नयी कलियाँ निकल आयी हैं । संभवत: काम के आवेश में किसी कामिनी ने ये दन्तक्षत कर दिये है । वकुल भी विकसित हो उठे हैं और मधुदानी कुरवक भी । भ्रमर इनके चारों और गुनगुन करते हैं । आम की मंजरियों ने अभिनय करना सीख लिया है । उसे देखकर योगियों के मन भी मचलने लगे हैं । और ये उपवन की लतायें नर्तकी के समान शाखाओं के हाथ हिला हिला कर हाव-भाव प्रकट कर रही हैं । भ्रमरों के स्वन इनके गीत हैं और विकसित कुसुम इनके हास-दर्शित शुभ्रदाँत ।

कुसुममेव न केवलमार्तवं नवमशोकतरोः स्मरदीपनम् ।
किसलय-प्रसवोऽपि विलासिनां मदयिता दयिता श्रवणार्पितः ।

वही ९-२८

श्रुतिसुख-भ्रमर-स्वनगीतयः कुसुम-कोमल-दन्तरुचो वभुः ।
उपवनान्तलताः पवनाहतैः किसलयैः वलयैरिव पाणिभिः ।

वही ३५

और ये कल्पनायें देखिये—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपययौ तनुतां मधु-खण्डिता हिमकरोदय-पाण्डु-मुखच्छविः ।
सदृशमिष्ट-समागम-निर्वृतिं वनितयाऽनितया रजनीवधूः ।

वही ३८

हुतहुताशन-दीप्ति-वनश्रियः प्रतिनिधिः कनकाभरणस्य यत् ।
युवतयः कुसुमं दधुराहितं तदलके दल-केसर-पेशलम् ।

वही ४०

खण्डिता नायिका प्रियतम का समागम न पा सकने के कारण दुर्बल होती चली जाती है वैसे ही रात्रि मधु की खण्डिता के रूप में ऐसी पीली पड़ गयी है जैसे उदयकाल का चन्द्रमा । वनश्री के सुवर्णाभूषण के प्रतिनिधि और अग्निकुण्ड में जलती अग्नि के समान दमदमाते कुसुमार पत्रों और केसर वाले पुष्प जो प्रियतमने लाकर कानों में खोंस दिये, पत्नियाँ प्रेम के कारण उन्हें ही पहने घूम रही हैं ।

कज्जल बिन्दु से दिखने वाले, अलिकुल से मण्डित तिलक वनस्थली-वधू के ललाट में टीके के समान शोभित हैं । और यह नवमल्लिका, मकरन्द की गन्ध से भरी हुयी अपने प्रिय तरु के साथ विलास में लीन हैं । अपने किसलयाधर पर कुसुमरूप स्मित लिये दर्शकों के मन को भा रही है । सुनो, ये कोकिलायें क्या बोल रही हैं । वे वधुओं से कह रही हैं—मान छोड़ो, परस्पर झगड़ा मत करो, यह श्रेष्ठ आयु गयी कि फिर कभी नहीं लौटेगी । और वधुएँ उनके उपदेश को हृदयङ्गम कर पतियों के साथ रमण करने लगी—

अलिभिरञ्जन-बिन्दु-मनोहरैः कुसुम-पंक्ति-निपातिभिरङ्कितः ।
न खलु शोभयति स्म वनस्थलीं न तिलकस्तिलकः प्रमदामिव ।

वही ४१

अमदयन् मधुगन्ध-सनाथया किसलयाधर-संगतया मनः ।
कुसुम-सम्भृतया नवमल्लिका स्मित-रुचा तरुचारु-विलासिनी ।

वही ४२

त्यजत मानमलं वत विग्रहै र्नपुनरेति गतं चतुरं वयः ।
परभृताभिरितीव निवेदिते स्मरमते रमते स्म वधूजनः । वही ४७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस समय प्रभात-कालीन अरुणिमा से अधिक लाल वस्त्रों ने, कर्णभूषण बनाकर पहने गये यवाङ्कुरों ने और कुहकने वाले कोयलों की सेना लेकर चलने वाले कामदेव ने कुछ ऐसा जाल बिछाया है कि विलासी पुरुषों को युवतियों के प्रेम के अतिरिक्त और कुछ दिखायी ही नहीं दे रहा है।

रघुवंश के इस वसन्त वर्णन में यद्यपि कल्पना की उड़ान कम नहीं है फिर भी उसमें कुमार- संभव जैसी ताजगी नहीं है। यद्यपि दोनों वर्णनों का उद्देश्य शृङ्गारोद्दीपन ही है फिर भी कुमार० में महान् योगी शिव के चित्त को विमोहित करने का प्रयत्न है जिनके लिये कवि ने कहा है—स्वयं विधाता तपसः फलानां केनापि कामेन तपश्चचार। तथा—आत्मेश्वराणां नहि जातु विघ्नाः समाधि- भेद- प्रभवो भवन्ति। यद्यपि दशरथ भी आत्मजयी हैं जो न मृगया में रुचि रखते हैं न अक्षद्यूत में। मधुपान का भी व्यसन उन्हें नहीं है और युवतियाँ उनके चित्त को आकर्षित नहीं कर पातीं। फिर भी हिमालय वन तथा राजप्रमदवन में अवतरित वसन्त में जो अन्तर दिखना चाहिये वह इन दोनों में स्पष्ट है।

मालविका० में अग्निमित्र के प्रमदवन में उतरे वसन्त को राजा 'अभिजात' विशेषण से सम्मानित करता है और उसके आभिजात्य को प्रमाणित करने के लिये कहता है—

उन्मत्तानां श्रवण-सुभगैः कूजितैः कोकिलानां,
सानुक्रोशं मनसिजरुजः सह्यतां पृच्छतेव।
अङ्गे चूतप्रसवसुरभिर्दक्षिणो मारुतो मे
सान्द्रस्पर्शः करतल इव व्यापृतो माधवेन। ३-४

वसन्त को इस काल में वढ़े हुए काम रोग की जानकारी है। स्वभावतः वह इसके लिये स्वयं को उत्तरदायी समझता है। इसीलिये कोकिलों की कर्णप्रिय वाणी के माध्यम से वह दयापूर्वक लोगों के पास जा जाकर उनसे पूछ रहा है कि उनकी कामवेदना सह्य तो है? और फिर उनका ताप कम करने के उद्देश्य से उनकी हथेलियों में आम्रमंजरियों की सुगन्ध से सने दक्षिणी मलय मारुत की मालिश कर रहा है।

और प्रमदवन- लक्ष्मी का युवतियों को भी लजा देने वाला यह कुसुम- नेपथ्य सचमुच कैसा सुभग है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रक्ताशोकरुचा विशेषितगुणो विम्बाधरालक्तकः,
प्रत्याख्यात-विशेषकं कुरवकं श्यामावदातारुणम्।
आक्रान्ता तिलक-क्रिया च तिलकै र्लग्नद्विरेफाञ्जनैः,
सावज्ञेव मुखप्रसाधनविधौ श्री र्माधवी योषिताम्। वही ३-५

वासन्ती लक्ष्मी अपने मुख प्रसाधन के सामने अन्य स्त्रियों की श्रृंगार सज्जा को अवमानना की दृष्टि से देख रही है क्योंकि अन्य युवतियों ने अपने बिम्बा जैसे ओठों पर जो लाली लगायी है उससे उसकी रक्ताशोक की लाली कहीं बढ़कर है। उसका श्याम- श्वेत- रक्त कुरवक वधुओं के विशेषक (पत्र रचना) से कहीं अधिक प्रभाववर्धक है और द्विरेफ रुपी अञ्जनों से अञ्जित उसके तिलक-पुष्प कामिनियों की तिलक रचना की अपेक्षा अधिक आकर्षक हैं।

केवल दो श्लोकों में कवि ने माधवीश्री का जो सहज, सरल और स्वाभाविक चित्र अंकित किया है, वह सर्वथा मौलिक और विशद वर्णन से अधिक प्रभाव छोड़ता है। विक्रमोर्वशीयम् में राजा प्रमदवन में वसन्तजन्य अभिरामता को देखकर कहता है—

अग्रेस्त्रीनखपाटलं कुरवकं श्यामं द्वयोर्भागयो
र्बालाशोकमुपोढराग-सुभगं भेदोन्मुखं तिष्ठति।
ईषद्वद्धरजः कणाग्र-कपिशा चूते नवामञ्जरी
मुग्धत्वस्य च यौवनस्य च सखे मध्ये वनश्रीः स्थिता। २-७

सामने स्त्रियों के नखों के समान पाटल (श्वेतारुण) कुरवक-पुष्प हैं। दूसरी ओर बाल अशोक का सुमन दोनों पार्श्व-भागों में श्याम किन्तु लाली लिये विकासोन्मुख होने के कारण सुहावना लग रहा है। इन दोनों के बीच स्थित रसाल तरु में नयी मंजरी निकल आयी है जो थोड़े-थोड़े केसरकणों के कारण अग्रभाग में कपिश (श्याम-रक्त) वर्ण की दिखायी दे रही है। इस प्रकार श्वेतरक्त (पाटल) कुरवक मधुश्री की मुग्धावस्था को व्यक्त करता है और वालाशोक उपोढराग और विकास को सूचित करने के कारण यौवन की ओर संकेत करता है और इन दोनों के मध्य में स्थित रसाल- मञ्जरी मधुश्री के समान शोभित है जो कैशोर्य अर्थात् मुग्धावस्था और तारुण्य दोनों की मध्यवर्ती अवस्था में है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और वासन्तिक वायु को तो देखिये जो कामी जैसा प्रतीत हो रहा है । जैसे कामी प्रणयी प्यार तो करता है कनिष्ठा प्रेमिका को, किन्तु दाक्षिण्य (चातुर्य मिश्रित शालीनता) के द्वारा ज्येष्ठा के साथ प्यार का अभिनय मात्र करता हुआ उसे उँगलियों पर नचाता है वैसे ही यह वायु भी नव वयस्का वासन्तीलता को स्नेह-सिञ्चित करता है किन्तु कुन्दलता को, जो वसन्तागम से पूर्व खिलने के कारण माधवी की अपेक्षा ज्येष्ठा है, नचा रहा है । इस प्रकार यह दक्षिण (दाक्षिण्य युक्त) कामी का सा व्यवहार कर रहा है—

निषिञ्चन् माधवीं लक्ष्मीं लतां कौन्दीं च नर्तयन्।

स्नेह-दाक्षिण्ययोर्योगात् कामीव प्रतिभाति मे। वही २-४

शाकुन्तल० वसन्त में कामार्चन का उल्लेख करता है । दो सखियाँ परस्पर वार्तालाप करती हैं । प्रथम परिभृतिका मधुकरिका से कहती हैं—'मधुकरिके ! चूतकलिकां दृष्ट्वोन्मत्ता परभृतिका भवति । तव इदानीं काल एव मदविभ्रम-गीतानाम् । इस पर एक सखी अग्रपाद पर स्थित होकर कामदेव की पूजा करती है और कहती है—

आताम्र- हरित-पाण्डुर ! जीवितसर्व वसन्तमासस्य।

दृष्टोऽसि चूतकोरक ऋतुमङ्गल त्वां प्रसादयामि।। ६-२

इससे लगता है यह पूजा आम्र में प्रथम अङ्कुर दिखायी देने पर संभवतः वसन्त पंचमी के दिन होती थी । पूजा करती हुई वे कहती है—

त्वमसि मया चूताङ्कुर ! दत्तः कामाय गृहीत- धनुषे।

पथिकजन- युवति-लक्ष्यः पञ्चाभ्यधिकः शरोभव।। वही ६-३

यह कहकर एक सखी तोड़ी हुई मंजरी सहेली को देती हुई कहती है—अविकसित भी आम्र मंजरी तोड़ने पर सुगन्ध बिखेरती है । यह देखकर कञ्चुकी बोल उठता है—तुम्हें मालूम नहीं कि महाराज ने वसन्तोत्सव के लिये मनाही कर दी है । वासन्तिक वृक्ष और उन पर रहने वाले पक्षी तक महाराज के आदेश कापालन कर रहे हैं—

चूतानां चिर-निर्गताऽपि कलिका वध्नाति न स्वं रजः,

संनद्धं यदपि स्थितं कुरवकं तत् कोरकावस्थया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कण्ठेषु स्खलितं गतेऽपि शिशिरे पुंस्कोकिलानां रुतम्।

शङ्के संहरति स्मरोऽपि चकितस्तूणार्धकृष्टं शरम्॥ ६-४

आमों में कलियाँ तो काफी पहले आ गयीं थीं। किन्तु वे विकसित नहीं हो रही हैं। कुरवक की कलियाँ भी यद्यपि वृन्त से बाहर निकल आयी हैं तो भी वे स्फुटित नहीं होतीं। शिशिर बीत चुका है फिर भी पुंस्कोकिलों का गीत अभी उनके कण्ठ में ही निरुद्ध है। लगता है कि कामदेवता ने भी प्रत्यञ्चा पर चढ़े अपने अधखिंचे बाण को जहाँ का तहाँ रोक दिया है। शाकुन्तल में वसन्त के विस्तृत वर्णन के प्रभाव का भी यही कारण है।

मलय मारुत का उल्लेख वसन्त के प्रसंग में न हो, यह संभव नहीं। वह कुरवकों (जिनसे कालिदास को विशेष अनुराग है) के रज को अपने साथ उड़ा लाता है। किसलयों और कमलपुटों के सीकरों को भी उड़ा कर उनके पीछे पीछे ले चलता है। यह बात अकारण ही मन में विशेष प्रकार की उत्कण्ठा (बेचैनी) जगा देती है—

कुन्दलता माघ में पूर्ण यौवन पर होती है। इस ऋतु में उसमें फूल खिलते हैं। वसन्त में उसके पत्ते पीले पड़ कर झड़ने लगते हैं और पुष्प भी कम ही रह जाते हैं। कवि ने उसकी उपमा विरह पीड़िता शरकाण्ड-पाण्डु कपोलवती अल्पाभरणा नारी से दी है—

शरकाण्ड-पाण्डु-गण्डस्थलेयमाभाति परिमिताभरणा।

माधव-परिणतपत्रा कतिपय-कुसुमेव कुन्दलता। माल. ३-८

मलय मारुत और वसन्त का अभिन्न सम्बन्ध है। वह मन की उत्सुकता (बेचैनी) को बढ़ाता है और उस पर यदि वह सहकार वृक्षों के पीले पके पत्तों को गिराकर उनमें नये अंकुरों और मंजरियों को प्रसव दे दे तब उन दोनों का प्रभाव विरही पर कितना अधिक होगा। देखिये—

इदमसुलभ-प्रार्थना-दुर्निवारं

प्रथममपि मनो मे पञ्चवाणःक्षिणोति।

किमुत मलय वातोन्मूलिताऽऽपाण्डु-

पत्रैरुपवन-सहकारै र्दर्शितेष्वङ्कुरेषु॥ विक्रमो. २-६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरुरवा उर्वशी के विरह से पहले ही पीड़ित है । उस पर मलय वात ने पीले पत्तों को गिराकर उनमें नये किसलय और पुष्प मंजरियों को जन्म दे दिया जो काम के उद्दीपन के लिये प्रसिद्ध हैं । वसन्त के कुरवक पुष्पों के पराग को बहा लाने वाला मलयवात तो अकारण भी मन में उत्सुकता जगाता है फिर विरह की स्थिति में तो बात ही क्या—

वोढा कुरवक-रजसां किसलय-पुटभेद-सीकरानुगतः ।
अनिमित्तोत्कण्ठामपि जनयति मनसो मलयवातः ।। माल. ३-९

प्रावृट्

वर्षाकाल राजाओं के समान तड़क-भड़क लेकर आता है । पानी की फुहारों से भरे हुए बादल इसकी गज-पंक्ति, बिजली पताका तथा गर्जन दुन्दुभिध्वनि है । बादल कहीं पर नीलोत्पल की कान्तिवाले, कहीं पिसे काजल के ढेर से और कहीं गर्भवती स्त्रियों के स्तनों के समान मनोहर हैं । यह ऋतु कामियों को प्रिय है—

ससीकराम्भोधर-मत्त-कुञ्जर स्तडित्पताकोऽशनिशब्दमर्दलः ।
समागतो राजवदुद्धतद्युति र्घनागमः कामिजनप्रियः प्रिये ।
ऋतु. २-१

नितान्त नीलोत्पल पत्र कान्तिभिः
क्वचित्प्रभिन्नाञ्जन-राशि-संनिभैः ।
क्वचित् सगर्भ-प्रमदास्तन-प्रभैः
समाचितं व्योम घनैः समन्ततः । वही २

कालिदास ने वषर्तु का निकटता से निरीक्षण किया था और वह भी विन्ध्य पर्वत पर वर्षा के दृश्य का । तभी वह कहते हैं—

प्रभिन्न-वैदूर्य-निभैस्तृणाङ्कुरैः समाचिता प्रोत्थितकन्दली-दलैः ।
विभाति शुक्लेतरत्नभूषिता वराङ्गनेव क्षितिरिन्द्र-गोपकैः ।। वही५ ।
सदा मनोज्ञं स्वनदुत्सुकोत्सुकं विकीर्ण-विस्तीर्ण कलाप शोभितम् ।
ससंभ्रालिङ्गन-चुम्बनाकुलैः प्रवृत्त-नृत्यं कुलमद्य वर्हिणाम् ।। वही ६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निपातयन्तः परितस्तटद्रुमान् प्रवृद्धवेगैः सलिलैरनिर्मलैः ।

स्त्रियः सुदुष्टा इव जात विभ्रमाः प्रयान्ति नद्यस्त्वरितं पयोनिधिम् ।

वही ७

तृणोत्करै रुद्गत कोमलाङ्कुरै विंचित्रनीलैर्हरिणी-मुखक्षतैः ।

वनानि वैन्ध्यानि हरन्ति मानसं विभूषितान्युद्गतपल्लवैर्द्रुमैः । वही ८

पृथिवी छितरायी हुई वैदूर्य मणियों जैसी घास के नीले अंकुरों से और ऊपर निकले हुए कदली के हरे हरे पत्तों से लद गयी है । सर्वत्र वीर वहूटियाँ बिखरी पड़ी हैं जिनसे वह रंग बिरंगे आभूषणों से सजी नायिका सी लग रही हैं । मोरों के समूह उमड़ते मेघों को देख कर आनन्दित होते और मीठी-मीठी बोली बोलते हैं । परस्पर चुम्बनालिङ्गन में रत रहते हैं । अब उन्होंने नाचना प्रारम्भ कर दिया है । नदियों का जल-वेग बढ़ गया है । वे अपने गँदले पानी की धार से किनारे खड़े वृक्षों को गिरा रही है । वे कुल- मर्यादा को तोड़ उच्छृंखल स्त्रियों के समान जल्दी जल्दी अपने प्रेमी पयोनिधि के पास चली जा रही है । विन्ध्याचल पर मृगियों के द्वारा कुतरी हुई घास में नये कोमल अंकुर निकल आये हैं जिससे वह खूब नीली नीली दिख रही है । वृक्षों में नये पल्लव फूट पड़े हैं । अब ये वैन्ध्य वन मन को आकर्षित करने लगे हैं । पवन जलकणों के स्पर्श से शीतल हो गया है और फूलों के बोझ से झुके वृक्षों को नचा रहा है । जंगली हाथी बादल का गर्जन सुनकर बार बार चिंखाड़ते हैं । इधर वायु कदम्ब, सर्ज, अर्जुन और केतकी की सुगन्ध को अपने में वसाये इनके वनों को झकझोरता हुआ चलता है । स्त्रियाँ कदम्ब, केसर और केतकी के ताजे फूलों की मालायें गूँथ-गूँथकर अपने सिर में बाँधती हैं और कानों में कुंकुम की मंजरियों के मनचाहे आभूषण बनाकर पहनती हैं । वे कटि के ऊपर अपने केश छितराकर सुरभित पुष्पों के आभूषण पहन और स्तनों पर हार लटकाकर, मुख को सुवासित करने वाला मद्य पिये प्रेमियों का अनुराग बढ़ा रही है । वे काले अगर से मिला चन्दन-लेप शरीर पर करती हैं और वालों को पुष्पों से सजाती हैं ।वक्ष पर पुष्पों के हार और नितम्बों पर झीनी साड़ी पहने इन स्त्रियों की त्रिवली और उदर पर वर्षा के छीटें पड़ जाते हैं तो उन पर रोमाञ्च की रेखा उभर आती है—

कदम्बसर्जार्जुन-केतकी-वनं विकम्पयंस्तत्कुसुमाधिवासितः ।

ससीकराम्भोधरसंगशीतलः समीरणः कं न करोति सोत्सुकम् ।

वही १७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मालाः कदम्ब नवकेसर केतकीभि
रायोजिताः शिरसि बिभ्रति योषितोऽद्य।
कर्णान्तरेषु ककुभद्रुम-मञ्जरीभि
रिच्छानुकूल रचितानवतंसकाँश्च। वही २०

कालागुरु-प्रचुर-चन्दन-चर्चिताङ्ग्यः
पुष्पावतंस-सुरभी-कृतकेशपाशाः।
श्रुत्वाध्वनिं जलमुचां त्वरितं प्रदोषे
शय्यागृहं-गुरुगृहात् प्रविशन्ति नार्यः। वही २१

ऋतु संहार का यह प्रावृट् वर्णन उनके अन्य ऋतुओं के वर्णन की अपेक्षा कहीं अधिक यथार्थ और प्रभावोत्पादक है। कवि ने आँख खोलकर वैन्ध्य वर्षा का निरीक्षण किया है। वर्षा यों भी अपना सुखद प्रभाव जड़- जङ्गम जगत् पर छोड़ती है। और यह चित्र तो अत्यन्त मौलिक और वैदग्ध्यपूर्ण है—संभवतः समस्त संस्कृत साहित्य में श्रेष्ठतम। इसमें कवि की सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति और सौन्दर्य ग्राहिणी रुचि परिलक्षित होती है—

विपाण्डुरं कीट-रजस्तृणान्वितं भुजङ्गवद् वक्रगति प्रसर्पितम्।
ससाध्वसैर्भेक कुलैर्निरीक्षितं प्रयाति निम्नाभिमुखं नवोदकम्।
वही १३

ग्रीष्म के बाद बादल पहली बार बरसे हैं। पानी की धारायें बह निकली हैं। वे अपने साथ धूल-मिट्टी को बहाये ले जा रही है, इसलिये मटमैली है। साथ मे कूड़े करकट को भी बहा रही है इसलिए ऊपर से काली दिख रही है। उनका अगला छोर पतला और पीछे का मोटा है। गति टेढ़ी-मेढ़ी है क्योंकि अभी तक पानी अपना रास्ता नहीं बना पाया है। मेढ़क इन निम्नगा धाराओं को अपनी ओर बढ़ते लपकते देख उनको सर्प समझकर डरे-डरे और दुबके हुए देख रहे हैं। प्रथम वर्षा का यह वर्णन भारतीय साहित्य में अद्वितीय है। जिन लोगों ने गाँवों में पुराने छप्परों के काले शर-काँसों के साथ पानी की पतली धारा को मार्ग बनाते देखा है, वे इस चित्र का वास्तविक रस ले सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेघदूत में कवि ने दौत्य-व्याज से इस ऋतु के प्रकृति पर पड़ने वाले प्रभाव की ओर संकेत किये हैं। कुटज आषाढ़ में फूलता है। यक्ष मेघ को इन्हीं फूलों से अर्ध्य अर्पित करता है—स प्रत्यग्रैः कुटज- कुसुमैः कलितार्घाय तस्मै. . . स्वागतं व्यजहार।" पूर्व मेघ ४। मन्द-मन्द वायु चला करती है। चातक आनन्द में बोलता है। बलाका (वक पंक्ति) की वकियाँ इस समय गर्भ धारण करती हैं। वे बहुत उच्च आकाश में मेघों के पास पास उड़ा करती हैं—

मन्दं मन्दं नुदति पवन श्चानुकूलो यथात्वां,

वामश्चायं नदति मधुरं चातकस्ते सगन्धः।

गर्भाधान-क्षण-परिचयान्नून मावद्धमालाः

प्रेक्षिष्यन्ते नयनसुभगं खे भवन्तं बलाकाः। मेघ. १-९

कर्णोदय में कहा भी है—गर्भ वलाका दधतेऽ भ्रयोगान्नाके निवद्धावलयः समन्तात्। मेघ के गर्जन से कन्दलियाँ फूट पड़ती हैं और भावी श्रेष्ठ उपज की सूचना देती हैं। निमित्त निदान में कहा है—कालाभ्रयोगादुदिताः शिलीन्ध्राः सम्पन्न सस्यां कथयन्ति धात्रीम्। इस ऋतु में राजहंस कमल नालों को पाथेय के रूप में चोंच में दवा मानस सरोवर को उड़ जाते हैं। यह बात कालिदास ने कही है—

कर्तुं यच्च प्रभवति मही मुच्छिलीन्ध्रा मवन्ध्याम,

तच्छुत्वाते श्रवणसुभगं गर्जितं मानसोत्काः

आकैलासाद् विसकिसलयच्छेद-पाथेयवन्तः,

संपत्स्यन्ते नभसिभवतो राजहंसाः सहायाः। वही १-११

वर्षा के प्रारम्भ होते ही किसान खरीफ की फसल के लिये खेत जोतने लगते हैं और खेतों से भीनी भीनी सुगन्ध उठती है (वही १-१६) वर्षा के साथ वनों में फैली हुई दवाग्नि शान्त हो जाती है (वही १७) जामुन पक जाते हैं। अधनिकले केसरों के कारण हरित पीत और कृष्ण वर्णों को एक साथ लिये स्थल -कदम्बों या नीपों और प्रथम वार मुकुलित कन्दलियों की शोभा दर्शनीय होती है। अरण्यों में पृथिवी से अधिक सुरभि गन्ध उठती है।(वही २१) वर्षतु के प्रारम्भ से ही केतकी के मुकुलाग्र विकसित होने लगते हैं और उपवनों में हरी हरी वाड़ दिखायी देने लगता है। जामुनों की डालें पके काले फलों से भर जाती हैं।(वही २३)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्षा आयी कि आतप की पीड़ा कम हुई । दिन निरातप होने के कारण रम्य प्रतीत होते हैं—नव वारिधरोदयादहोभिर्भवितव्यं च निरातपत्वरम्यैः (विक्रमो. ४-३) । विद्युल्लेखा के स्वर्णावरण से मण्डित अभ्र किसी राजा के सुवर्णच्छत्र सा लगता है और निचुल वृक्षों की मञ्जरियाँ उसके चमर के समान, आतप की पीड़ा से मुक्त हो जाने के कारण और अधिक मधुर बोलने वाले मयूर स्तुतिगायक और धारा- सार बरसने वाले अम्बुवाह सम्पत्ति बटोरकर लाने वाले व्यापारी—

विद्युल्लेखा-कनकरुचिरं श्रीवितानं ममाभ्रं,
व्याधूयन्ते निचुलतरुभिर्मञ्जरी-चामराणि ।

धर्मच्छेदात् पटुतरगिरो वन्दिनो नीलकण्ठाः
धारासारोपनयनपरा नैगमाश्चाम्बुवाहाः । विक्रमो. ४-४

इस समय मयूर कण्ठ में केका समेटे, गर्दन को खूब ऊँची उठाये पयोदों को देखा करता है और उसके पंख सामने से आते वात से फड़फड़ाया करते हैं । वह धारासार से उच्छ्वसित पर्वत स्थल के पाषाण पर बैठा वर्षा का सुख भोगता है—अयमासारोच्छ्वसित शैलेय- स्थली- पाषाण मारुढः—

आलोकयति पयोदान् प्रवलपुरोवात-ताडित शिखण्डः,
केकागर्भेण शिखी दूरोन्नमितेन कण्ठेन ॥ वही ८

ग्रीष्म

ऋतु संहार में कालिदास ने निदाघ काल को लक्ष्य कर कहा कि इसमें सूर्य प्रचण्ड हो जाता है—असह्य । चन्द्रमा स्पृहणीय लगता है । लोग दिन भर पानी में स्नान करते हैं जिससे जल चुक जाता है, सान्ध्यकाल अच्छा लगता है-प्रचण्ड- सूर्यः स्पृहणीय चन्द्रमाः, सदावगाह- क्षत- वारिसंचयः-दिनान्तरम्यः । १-१ शाकुन्तल में भी यही बात कही है—

सलिल-सुभगावगाहाः पाटल-संसर्गि-सुरभि-वनवाताः ।
प्रच्छाय-सुलभनिद्रा दिवसाः परिणाम रमणीयाः ॥ १-३

जल में नहाना अच्छा लगता है । पाटल पुष्पों की सुगन्ध लेकर वन का वात चलता है । बिना घनी छाया के निद्रा नहीं आती और घनी छाया में तुरन्त आ जाती है । दिन केवल सान्ध्य वेला में अच्छे लगते हैं । इस समय लोग चन्द्रमा की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाँदनी से धुली अन्धकार रहित रात्रियों, विचित्र फुहारों से युक्त स्थानों, शीतल मणियों (संगमरमर आदि) से जटित घरों में औरचन्दन के लेप के सहारे समय बिताते हैं और स्त्रियाँ भ्रमरों के द्वारा थोड़े-थोड़े चुम्बित सुकुमार केसर वाले शिरीष-पुरुषों को बड़ी सावधानी से कोमल स्पर्श के द्वारा कानों में पहनती है। शिरीष अत्यन्त कोमल होता है अत: उसे बड़ी कोमलता से पहनना होता है अन्यथा उसके केसर कुम्हलाकर गिर जाते हैं—

ईषच्चुम्बितानि भ्रमरैः सुकुमार-केसर-शिखानि।
अवतंसयन्ति दयमानाः प्रमदाः शिरीष कुसुमानि। शाकु. १-४

और—

असह्यवातोद्धतरेणुमण्डला प्रचण्ड-सूर्यातपतापिता मही।

ऋतु. १-१०

मृगाः प्रचण्डातप-तापिता भृशं तृषा महत्या परिशुष्क-तालवः।
वनान्तरे तोयमिति प्रधाविता निरीक्ष्यभिन्नाञ्जन-सन्निभं नभः।

वही ११

पृथिवी सूर्य की प्रचण्ड धूप से तप रही है और उस पर वायु के प्रचण्ड झोंकों के कारण धूल के बबूले (बवण्डर) उठ रहे हैं। धूप में झुलकते हुए हरिणों के तालुजब भयंकर प्यास के मारे बिल्कुल सूख जाते हैं तो वे दूसरे वन के ऊपर बिखरे हुए सुरमे जैसे नीले आकाश को देखकर उसे मेघ समझकर उसकी ओर भागने लगते हैं। ग्रीष्म का प्रभाव वन्य पशुओं पर कैसा होता है, इसके भी बड़े स्वाभाविक और प्रभावी चित्र कवि ने अंकित किये हैं जिनका अनुकरण अन्य अनेक भाषा कवियों ने किया है—

रवेर्मयूखैरभितापितोभृशं विदह्यमानः पथि तप्त-पांसुभिः।
अवाङ्-मुखो जिह्मगतिः श्वसन् मुहुः फणीमयूरस्यतलेनिषीदति।

वही १३

न हन्त्यदूरेऽपि गजान् मृगेश्वरो विलोल-जिह्वश्चलिताग्र-केसरः।

वही १४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रवृद्धतृष्णोपहता जलार्थिनो न दन्तिनः केसरिणोऽपि विभ्यति।

वही १५

हुताग्निकल्पैः सवितुर्गभस्तिभिः कलापिनः क्लान्त-शरीरचेतसः।
न भोगिनं घ्नन्ति समीपवर्तिनं कलापचक्रेषु निवेशिताननम्।

वही १६

फणधर साँप जब ऊपर जलती हुई सूर्य की किरणों से सन्तापित होता है और नीचे मार्ग से तपती हुई धूल से झुलसने लगता है तो मुँह नीचा किये, लम्बी लम्बी साँसे खींचता हुआ टेढ़ी-मेढ़ी चाल से मोर के नीचे बैठ जाता है। मृगराज सिंह मुँह फाड़े जोर जोर से हाँफता है और व्याकुल होकर जिह्वा को इधर उधर फिराता है किन्तु पास ही बैठे हुए हाथियों को नहीं मारता। प्यास के मारे हाथियों के मुख से झाग निकल रहे हैं। पानी की खोज में घूमते हुए वे सिंहों से भी नहीं डरते। सूर्य की किरणें यज्ञ कुण्ड की अग्नि के समान उद्दीप्त हैं। इससे मयूरों के तन और मन दोनों शिथिल पड़ गये हैं। वे अपने पाँवों के घेर में मुँह घुसेड़कर बैठे समीपस्थ सर्प तक को नहीं मारते।

कवि ने ग्रीष्म से सन्तप्त ऐसे अन्य अनेक पशुओं का बड़ा द्रावक चित्र खींचा है। ऐसे चित्र अन्यत्र दुर्लभ है। इधर वृक्ष- वनस्पतियों का भी बुरा हाल है। जंगल की आग की प्रबल लपटों से घास के अंकुर खड़े-खड़े सूख गये हैं। और अन्धड़ के वेगसे सूखे पत्ते इधर उधर उड़ते फिर रहे हैं। जल सर्वत्र चुक गया है। ऊपर खड़े होकर देखने से वन प्रदेश डरावने मालूम होते हैं। जिन वृक्षों के पत्ते सूखकर गिर गये हैं उन पर बैठे हुए पक्षी प्यास के मारे हाँफ रहे हैं। मुरझाया वानर समूह पर्वत के लताकुंज की ओर चला जा रहा है। प्यास से बेचैन भैसे मुँह ऊपर उठाये लाल लाल जीभ बाहर निकाले तथा अपने लम्बे हिलते मुख की संपुटी में फेन और लार भरे हुए पर्वत की कन्दराओं से निकलकर पानी की चिन्ता से इधर उधर घूम रहे है—

पटुतर दवदाहोच्छुष्क-शष्पप्ररोहाः
परुष-पवन-वेगोत्क्षिप्त संशुष्कपर्णाः।

दिनकर-परिताप-क्षीणतोयाः समन्ताद्
विदधति भयमुच्चै र्वीक्षमाणा वनान्ताः। २२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्वसिति विहगवर्गः शीर्णपर्ण-द्रुमस्थः
कपिकुलमुपयाति क्लान्तमद्रे र्निकुञ्जम्। २३
सफेन-लोलायत-वक्त्रसंपुटं
विनिःसृतालोहित-जिह्वन्मुखम्।
तृषाकुलं निःसृतमद्रिगह्वराद
वेक्षमाणं महिषीकुलं जलम्। वही २१

वन से जब दवाग्नि फैलती है तब हाहाकारी दृश्य उपस्थित होता है। वृक्ष वनस्पति तो जलते ही हैं वन्य पशु भी जीवित जल जाते हैं—

ज्वलति पवनवृद्धः पर्वतानां दरीषु
स्फुटति पटु- निनादैः शुष्कवंशस्थलीषु।
प्रसरति तृणमध्ये लब्ध-वृद्धिः क्षणेन
ग्लपयति मृगवर्गं प्रान्त-लग्नोदवाग्निः। २५
वहुतर इव जातः शाल्मलीनां वनेषु
स्फुरति कनक-गौरः कोटरेषु द्रुमाणाम्।
परिणत-दलशाखानुत्पतन् प्रांशु वृक्षान्
भ्रमति पवनधूतः सर्वतोऽग्निर्वनान्ते।वही २६

पर्वतों में लगी हुई आग वायु का सहारा पाकर और तेजी पकड़ रही है। सूखे बांसों के झुरमुटों में चटचट करती आगे बढ़ रही है और क्षण में ही आगे फैल कर घास को पकड़े ले रही है। वन प्रान्त में धधकी दावाग्नि जीव जन्तुओं का सफाया किये डाल रही है। सेमल के वनों में लगने पर आग का विस्तार और बढ़ जाता है। वृक्षों के खोखले खड्डों में लगी हुई अग्नि सुनहरा-पीला प्रकाश बिखेरती जलती है और पके पत्तों से भरी डालों वाले ऊँचे-ऊँचे वृक्षों पर उछलती चढ़ती अग्नि वायु के वेग से और भड़क कर वन में चारों ओर घूम रही है—

ग्रीष्म का वर्णन (असह्य निदाघ का नहीं) रघुवंश के १६वें सर्ग में भी आया है। कुश अपनी राजधानी कुशावती को छोड़कर अयोध्या लौट आये हैं। अयोध्या पूरी तरह जीवन्त हो उठी है। इतने में ग्रीष्म का आगमन होता है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अगस्त्य-चिह्नादयनात्समीपे दिगुत्तरा भास्वति सन्निवृत्ते।
आनन्दशीतामिव वाष्पवृष्टिं हिमस्रुतिं हैमवतीं ससर्ज॥

रघु. १६-४४

प्रवृद्ध तापो दिवसोऽ तिमात्रमत्यर्थमेव क्षणदा च तन्वी।
उभौ विरोधक्रियया विभिन्नौ जायापती सानुशयाविवास्ताम्।

वही ४५

ग्रीष्म ऋतु में हिमालय का हिम पिघलने लगता है और उसका शीतल जल बहकर सरयू आदि नदियों में आता है। तब ऐसा लगता है कि जैसे सूर्य के दक्षिणी दिशा को छोड़कर उत्तर की ओर आने से उत्तर दिशा के नेत्रों से आनन्दाश्रुओं की शीतल धारा बह निकली है। दिन का ताप अत्यधिक बढ़ गया है और रात्रि अत्यन्त कृश हो गयी है। लगता है दिवस और रात्रि परस्पर झगड़ा करके, एक दूसरे से रूठकर अलग अलग हो गये हैं और फिर अब पश्चात्ताप कर रहे हैं। दिवस के तप्त और रात्रि के क्षीण होने का यही हेतु है और—

दिने दिने शैवलवन्त्यधस्तात् सोपान-पर्वाणि विमुञ्चदम्भः।
उद्दण्ड-पद्मं गृह-दीर्घिकाणां नारी-नितम्बद्वयसं वभूव॥ वही ४६

वनेषु सायन्तन-मल्लिकानां विजृम्भणोद्गन्धिषुकुड्मलेषु।
प्रत्येक-निक्षिप्तपदः सशब्दं संख्यामिवैषां भ्रमरश्चकार॥ वही ४७

यन्त्रप्रवाहैः शिशिरैः परीतान् रसेन धौतान् मलयोद्भवस्य।
शिलाविशेषानधिशय्य निन्युर्धारागृहेष्वातपमृद्धिमन्तः॥ वही ४९

घरों की बावड़ियों (वापियों) का पानी गर्मी से घटने लगा। वह सेवार (शैवाल) लगी सीढ़ियों को छोड़कर नीचे पहुंच गया और यहाँ तक कि उसमें कमल की दण्डियाँ दिखने लगी। उसकी गहरायी कम होते- होते स्त्रियों की कमर तक रह गयी। सन्ध्या समय खिलने वाली चमेली खिलने लगी और उसकी सुगन्ध चारों और फैलने लगी। गुनगुनाते हुए भ्रमर उनकी एक एक कली पर इस प्रकार बैठने लगे मानो वे कलियों की गिनती कर रहे हों। धनी लोग धारा गृहों (उन घरों को ठण्ढा रखा जाता है) की उन संगमरमरी शिलाओं पर लेटकर गर्मी बिताते हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो चारों ओर से यन्त्र- प्रवाहित जल से घिरी, तथा चन्दन के रस से धोयी हुई रहती है। और—

स्नानार्द्रमुक्तेष्वनुधूपवासं विन्यस्त-सायन्तन-मल्लिकेषु।
कामो वसन्तात्यय-मन्दवीर्यः केशेषुलेभे वलमङ्गनानाम्। वही ५०
आपिञ्जरावद्धरजःकणत्वान्मञ्जर्युदारा शुशुभेऽर्जुनस्य।
दग्ध्वाऽपिदेहं गिरिशेन रोषात् खण्डीकृता ज्येव मनोभवस्य।

वही ५१

मनोज्ञगन्धं सहकारभङ्गं पुराणशीधुं नवपाटलं च।
सम्बध्नता कामिजनेषु दोषाः सर्वे निदाघावधिना प्रमृष्टाः।

वही ५५

वसन्त वीत जाने के कारण जो मदन कुछ क्षीणबल हो गया था वह अब स्त्रियों के केशों में आकर बस गया। इसीलिये ये केश जो स्नान करने के बाद गीले खोल दिये जाते हैं और फिर सुगन्धित द्रव्यों में बसाये जाते हैं और फिर जिनमें सन्ध्या समय फूलने वाली मल्लिका (चमेली) के पुष्प खोंस लिये जाते हैं, आजकल अधिक कामोद्दीपक बन गये हैं। पराग से परिपूर्ण सर्वतः पिञ्जर (पीली पीली) दिखने वाली अर्जुन वृक्ष की मञ्जरियाँ ऐसी लगती हैं जैसे वे काम को भस्म करने के उपरान्त शिवजी के द्वारा तोड़ डाली हुई काम के धनुष की प्रत्यञ्चा हों। इस ऋतु ने उद्दीपक गन्ध वाले आम के पल्लव, पुरानी शीघु (गन्ने के रस से बनायी हुई सुरा) और पाटल के ताजे पुष्प तीनों को एक साथ जुटा कर कामियों के ग्रीष्मजन्य कष्टों को दूर कर दिया है।

दिन का मध्यकाल तो यों भी तापक होता है और फिर ग्रीष्म का। कवि ने इस ताप के पशु-पक्षियों पर पड़ने वाले प्रभाव को सुन्दर ढंग से चित्रित किया है। गर्मी से पीड़ित मयूर वृक्ष के मूल में स्थित शीतल आलवाल में जा बैठा है। भ्रमर कर्णिकार के मुकुलों को फोड़कर उनके भीतर जाकर सो रहे हैं। कारण्डव पक्षी किरणों से तप्त जल छोड़कर सर के किनारे कमलिनी के पास जा बैठे हैं। और प्रासाद के क्रीडागृह का पालतू तोता प्यास से पीड़ित होकर जल माँग रहा है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उष्णालुः शिशिरेनिषीदति तरो मूंलालवालेशिखी,
निर्भिद्योपरि कर्णिकार-मुकुलान्याशेरते षट्पदाः।
तप्तं वारि विहाय तीर-नलिनीं कारण्डवः सेवते।
क्रीडा वेश्मनि चैव पञ्जरशुकः क्लान्तो जलं याचते।

विक्रमो. २-२२

मध्याह्न का एक यथार्थ चित्र मालविकाग्निमित्र में भी मिलता है—

पत्रच्छायासु हंसा मुकुलितनयना दीर्घिकापद्मिनीनां,
सौधान्यत्यर्थतापाद् वलभि-परिचय-द्वेषि पारावतानि।
विन्दुक्षेपान् पिपासुः परिसरति शिखी भ्रान्तिमद् वारियन्त्रं,
सर्वैरुस्रैः समग्रैस्त्वमिव नृपगुणै र्दीप्यते सप्तसप्तिः ।।माल. २-१२

सूर्य अपनी सम्पूर्ण प्रचण्ड किरणों के साथ तप रहा है। बावड़ियों की कमलिनियों पर विहार करने वाले हंस इस समय उसकी ज्वाला से पीडित होकर आंखें बन्द किये उन्हीं पद्मिनियों के पत्तों की छाया में दुवक गये हैं। बड़े भवन, जिनकी वलभियों (छज्जों) के नीचे कबूतर वसाढा लेते थे इतने अधिक तप गये हैं कि अब बैठना कबूतरों के लिये बड़ा कष्ट प्रद हो रहा है। और मयूर पानी के छींटों (बूँदों) को पीने की इच्छा लिये पानी के घूमते हुए फव्वारे के चारों ओर घूम रहा है। चित्र कितना स्वाभाविक है। और यह चित्र भी आश्रम के परिसर का और इसी वेला का है—

गाहन्तां महिषा निपान- सलिलं शृङ्गै र्मुहुस्ताडितं,
छायावद्ध कदम्बकं मृगकुलं रोमन्थमभ्यस्यतु।
विस्रब्धं क्रियतां वराह-पतिभि र्मुस्ताक्षतिः पल्वले,
विश्रामं लभतामिदं च शिथिल-ज्यावन्धमस्मद्-धनुः। शाकु. २-६

दुष्यन्त प्रातः काल से आखेट करते करते मध्याह्न के समय आश्रम के परिसर में पहुँच गया जहाँ मृगया वर्जित थी। वह अपना धनुष् उतार कर उसकी प्रत्यंचा को ढीला कर उसे विश्राम के लिये रख लेता है और कहता है—महिषनिपान (छोटे उथले जलाशय या वावड़ियों के पास बने पशुजलपान कुण्डो) में सीगों से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जल को उछाल उछाल कर उनमें लोटें पोटें। मृग घास चरने के बाद छायादार वृक्ष के नीचे घेरा बनाकर बैठें और जुगाली करें और बड़े बड़े वराह पोखरे में लोट लगाते हुए नागर मोथा की जड़ें उखाड़कर खायें।

वह दृश्य कवि का आंखों देखा लगता है। भैंसें सीगों से पानी उछालते हैं या यों ही उसमें सींग मारते हैं। हरिण घेरा बनाकर छाया में बैठकर जुगाली करते हैं और सूअर भरे पोखरे में लोटते हैं। कालिदास ने रघुवंश के एक सायं कालीन दृश्य में इन्हीं का स्मरण किया है। मिलाइये—

स पल्वलोत्तीर्ण-वराहयूथान्यावास- वृक्षोन्मुख- वर्हिणानि।

ययौ मृगाध्यासित- शाद्वलानि श्यामायमानानि वनानि पश्यन्।

रघु. २-१७

कालिदास का ग्रीष्म वर्णन सर्वथा मौलिक और हृद्य है। ऋतु संहार में विन्ध्य पर्वत-वनों के सन्दर्भ में निदाघ का भीषण किन्तु यथार्थ वर्णन है तो रघुवंश में राजधानी की पृष्ठभूमि में। इसमें ग्रीष्म के ताप के प्रभाव के साथ उसके उपचार तथा नागरिकों पर पड़ने वाले प्रभाव की चर्चा है। दोनों ही वर्णन भोगे हुए यथार्थ की काव्यात्मक अभिव्यक्ति है और साहित्य का महत्त्वपूर्ण अंग।

शरद्

कालिदास ने रघुवंश (४-१४) में शरत् को पंकज- लक्षणा कहा है। इस काल में मेघ बरस चुकने के कारण हलके हो चुकते हैं। सूर्य के प्रताप को रोकने में अशक्त हो जाते हैं। इन्द्र अपना वर्षाकालीन धनुष उतारकर रख देता है। राजा के समान यह ऋतु भी पुण्डरीकों का छत्र और खिले श्वेत काशों का चमर धारण करता है। चन्द्र विशद् प्रभा के साथ शोभित होता है। हंस आनन्द से विहार करते हैं। तारे चमकते हैं और जल कुमुदों से उज्वल दिखायी देते हैं। अगस्त्य के उदित हो जाने से जलों का कर्दम दूर हो जाता है। खेत रखाने वाली लड़कियाँ ईख की छाया में गोफन लेकर बैठी बैठी गीत गाती हैं। रघु की विजय यात्रा की भूमिका के रूप में कवि ने शरद् की हलकी सी झलक रघु. (४-१४ से २१) में प्रस्तुत की है। ऋतुसंहार में कालिदास ने उसे नववधू के रूप में देखा है जिसका दुपट्टा फूले काँस है, मनोरम मुख खिले कमल हैं। आनन्दमग्न हंसों का नाद इसके बिछुओं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की रुनझुन है और सम्यक् पके हुए शालि इसका झुका झुका गोरा, सुन्दर छड़ी जैसा शरीर है—

काशांशुका विकचपद्म-मनोज्ञवक्त्रा
सोन्माद-हंसरव-नुपूरनादरम्या।
आपक्वशालिरुचिरानतगात्रयष्टिः
प्राप्ता शरन्नववधूरिव रूप-रम्या। ऋतु. ३-१

चारों ओर शुभ्रता का राज है। पृथिवी काँसों से, रात्रियाँ शीतल किरणों वाले शरीर से, नदियों का जल हंसों से, सर कुमुदों से, वनान्त कुसुमों के बोझ के कारण झुके सप्तच्छद वृक्षों से और उपवन मालती लताओं से शुक्ल हो रहे हैं। नदियाँ मदभरी प्रमदाओं के समान मन्द मन्द गति से चल रही हैं। उछलतीं-खेलती सुन्दर मछलियाँ इसकी हिलती करधनी हैं और किनारों पर पंक्तिबद्ध होकर बैठी हुई शुभ्रचिड़ियाँ मोतियों के हार की लड़ी। धारा के बीच-बीच उभरे विशाल पुलिन इसके नितम्ब हैं—

काशैर्मही शिशिर-दीधितिना रजन्यो
हंसै र्जलानि सरितां कुमुदैः सरांसि।
सप्तच्छदैः कुसुमभारनतैर्वनान्ताः
शुक्लीकृतान्युपवनानि च मालतीभिः,।
चञ्चन्मनोज्ञशफरी-रशनाकलापाः
पर्यन्त-संस्थित-सिताण्डज पङ्क्तिहाराः।
नद्यो विशालपुलिनान्त-नितम्बविम्वा
मन्दं प्रयान्ति समदाः प्रमदा इवाद्य। ऋतु. ३-२, ३

दूसरे ढंग से देखें तो मेघ-मुक्त निर्मल चन्द्र इसका मुख, तारा गण आभूषण और चाँदनी रेशमी परिधान। सुरमें के ढेर जैसा नील आकाश, दुपहरिया के फूलों के कारण अरुण दिखायी देती भूमि, पके हुए धानों के खेतों से आवृत नगरों के परकोटे किसके मन को प्रसन्न नहीं बनाते ? और यह रहा कचनार का वृक्ष। मन्द मन्द पवन इसकी डालों की फुनगियों को हिलाता वह रहा है। अनन्त फूलों के फूट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पड़ने से इसके पल्लव भी कैसे सुन्दर लग रहे हैं। भ्रमर इनसे टपकने वाले मधु को पी पीकर मस्त हैं। नदियों का जल कमलों के पराग से लाल हैं। उनकी लहरें विहार करते कारण्डवों की चोंच से टकराती हैं। नदियों के दोनों तट हंसों और सारसों से भरे रहते हैं। ये नदियाँ हंसों के मधुर राग से लोगों के मन को प्रसन्न करती हैं—

भिन्नाञ्जन-प्रचयकान्ति नभो मनोज्ञं
वन्धूकपुष्प-रचितारुणिता च भूमिः।
वप्राश्च पक्वकलमावृत-भूमिभागाः
प्रोत्कण्ठयन्ति न मनोभुवि कस्ययूनः। ५

मन्दानिलाकुलितचारुतराग्रशाखः
पुष्पोद्गम-प्रचयकोमल-पल्लवाग्रः।
मत्तद्विरेफ परिपीत-मधु प्रसेक
श्चित्तंविदारयति कस्य न कोविदारः। वही ६

तारागण-प्रकर-भूषणमुद्वहन्ती
मेघावरोध-परिमुक्तशशाङ्क वक्त्रा।
ज्योत्स्ना-दुकूलममलं रजनी दधाना
वृद्धिं प्रयात्यनुदिनं प्रमदेव वाला। वही ७

शरत् के आने से सारा वातावरण ही बदल जाता है। अव न तो बादलों के बीच इन्द्रधनुष फूलता है और न आकाश में पताका जैसी बिजली ही चमकती है। अब बगुलों का समूह भी अपने पंखों से आकाश पर पंखा नहीं झलता और न मोर ही ऊपर मुँह उठा कर आकाश की ओर निहारते हैं। मयूरों ने नाचना बन्द कर दिया है इसलिये कामदेव उन्हें छोड़कर मधुर मधुर गाने वाले हंसों के पास चला जा रहा है? दूसरी ओर पुष्प- विकास की शोभा भी कदम्ब, कुटज, अर्जुन, सर्ज और नीप वृक्षों को छोड़कर सप्तच्छदों के पास पहुँच गयी है। उपवनों में शेफाली की मनोहर गन्ध बिखरी रहती है। स्वस्थ ढंग से बैठे पक्षियों की कलरव ध्वनि गूँजती रहती है और नीले कमलों सी आँखों वाली मृगियाँ जहाँ तहाँ बैठी रहती हैं। प्रभात वेला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में पत्तों की नोंकों पर लगी ओस की बूँदों को गिराता, कह्लारों, कमलों और कुमुदों को बार बार हिलाता और उनके संस्पर्श से शीतल पवन बहा करता है । भूमि पके धानों से आच्छादित है । आराम से बैठे गायों और बैलों के झुण्ड इन स्थानों की शोभा बढ़ाते हैं—

नृत्य-प्रयोग-रहिताञ्छिखिनो विहाय
हंसानुपैति मदनो मधुर-प्रगीतान्।
मुक्त्वा कदम्ब-कुटजार्जुन-सर्जनीपान्
सप्तच्छदानुपगता कुसुमोद्गमश्रीः । वही १३

नष्टं धनुर्जलभिदो जलदोदरेषु
सौदामिनी स्फुरति नाद्य वियत्पताका
धुन्वन्ति पक्ष-पवनैर्न वियद् वलाकाः
पश्यन्ति नोन्नतमुखा गगनं मयूराः । वही १२

संपन्नशालिनिचयावृत भूतलानि
स्वस्थ-स्थित-प्रचुर-गोकुल-सेवितानि ।
हंसैः ससारसकुलैः प्रतिनादितानि
सीमान्तराणि जनयन्ति नृणां प्रमोदम्। वही १६

और धीरे धीरे शरद् विदा लेती है । जाते जाते वह चन्द्रमा की चाँदनी को नारियों के मुख मण्डल में निवेशित कर जाती है और हंसों के मनोरम रुत को उनके नूपुरों में भर देती है । वन्धूक के फूलों की लाली वह प्यार से सुन्दरियों के ओठों में न्यस्त कर देती है—

स्त्रीणां विहाय वदनेषु शशाङ्क-लक्ष्मीं
काम्यं च हंस-वचनं मणि-नूपुरेषु ।
वन्धूक कान्तिमधरेषु मनोहरेषु
क्वापि प्रयाति मधुरा शरदागम-श्रीः । ऋतु. ३-२५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कालिदास का यह शरद् वर्णन सुनी सुनायी पारम्परिक बातों पर नहीं, प्रत्युत अनुभूत तथ्यों पर निर्भर होने के कारण यथार्थ और स्वाभाविक है । यह न अलंकृति अथवा वाग्वैदग्ध्य के बोझ से दबा हुआ है और न काल्पनिक उड़ानों के भार से ।

हेमन्त

जौ, गेहूँ, आदि अन्नों में पौधों के नये कोमल पत्र निकल आये हैं । लोध्र के वृक्ष फूल गये है । धान पूरी तरह पक चुके हैं । कमल कहीं खो-से गये हैं । तुषार पड़ने लगा है । निश्चय ही हेमन्त काल आ गया है—

नवप्रवालोद्गमसस्य-रम्यः प्रफुल्ल-लोध्रः परिपक्व-शालिः ।
विलीनपद्मः प्रपतत्तुषारो हेमन्तकालः समुपागतोऽयम् ।। ऋतु.४-१

बस्ती से बाहर किन्तु ग्राम-सीमा के भीतर के वे प्रदेश जिनमें काट मींज कर निकाले हुए धानों के ढेर लगे हैं, हिरणियों के झुण्ड स्वच्छन्द विहार कर रहे हैं । कौञ्च पक्षी मीठे-मीठे स्वर में बोल रहे हैं । सीमान्तर लोगों के मन में गुदगुदी पैदा कर रहे हैं । और यह प्रियङ्गुलता । इसके पत्ते पककर पीले पड़ गये हैं उस पर पाले की शीतलता लिये वायु के झोंके इसे लगातार कँपाते रहते हैं । इस समय यह प्रियतम के विरह में पीली पड़ी हुई कामिनी-सी दिखायी देती है ।

प्रभूतशालि-प्रसवैश्चितानि मृगाङ्गना-यूथ-विभूषितानि
मनोहर-क्रौञ्च-निनादितानि सीमान्तराण्युत्सुकयन्ति चेतः । वही ८

पाकं व्रजन्ती हिमजात-शीतैराधूयमाना सततं मरुद्भिः ।
प्रिये प्रियङ्गुः प्रिय-विप्रयुक्ता विपाण्डुतां याति विलासिनीव ।

वही १०

कालिदास के पास इस ऋतु में विशेष कुछ कहने को नहीं था क्योंकि वृक्षों और वनस्पतियों पर निखार या यौवन-विकास का तो यह काल है नहीं । जो कुछ होता है, उसके जरत्व की ही यह ऋतु है । शीत के कारण प्रकृति में जड़ता आती है । किन्तु दूसरी ओर मानव जगत् पर इसका भिन्न प्रभाव परिलक्षित होता है—

मनोरमैः कुङ्कुम-रागरक्तैस्तुषार-कुन्देन्दुनिभैश्चहारैः ।
विलासिनीनां स्तनशालिनीनां नालंक्रियन्ते स्तन-मण्डलानि ।

वही २

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गात्राणि कालीयक-चर्चितानि सपत्रलेखानि मुखाम्बुजानि।
शिरांसि कालागुरु-धूपितानि कुर्वन्तिनार्यः सुरतोत्सवाय।

वही ५

पुष्पासवामोदि-सुगन्धि-वक्त्रो निःश्वास वातैः सुरभीकृताङ्गः।
परस्पराङ्ग-व्यतिरिक्तशायी शेते जनः कामरसानुविद्धः। वही ११
निर्माल्यदाम परिमुक्त-मनोज्ञ-गन्धं
मूर्ध्नोऽपनीय घननील-शिरोरुहान्ताः।
पीनोन्नतस्तन-भरानत-गात्रयष्ट्यः
कुर्वन्ति केश-रचना मपरास्तरुण्यः। वही १५

अब स्त्रियाँ अपने गोल गोल स्तनों को केसर के रंग में रँगे हुए सफेद मोतियों के हारों से नहीं सजातीं। वे अपनी भुजाओं में कंगन और बाजूवन्द नहीं पहनती, न गोल नितम्बों पर सफेद परिधान धारण करती हैं। अब मोटे-मोटे स्तनों पर झीना रेशमी वस्त्र भी नहीं पहनतीं। अब वे रुनझुन करने वाले बिछुए भी सुकुमार पैरों में नहीं पहनतीं। अब वे पतियों के साथ भोग विलास की तैयारी में शरीर पर चन्दन-कालीयक का अनुलेप करतीं, कमल मुख पर पत्र-रचना करती हैं और बालों को कालागरु से धूपित कर सुगन्धित बनाती हैं। काम-क्रीडा के आनन्द में डूबे स्त्री पुरुष पुष्पों से बनायी हुई मदिरा पीकर मुख को सुगन्धित बनाते हैं और अपने निःश्वास के वायु से एक दूसरे के शरीर को सुरभित करते परस्पर लिपटकर सो जाते हैं। कालिदास के शब्दों में हेमन्त का सार यह है—

वहुगुण-रमणीयो योषितां चित्तहारी
परिणत-बहुशालि-व्यापृत-ग्रामसीमा।
विनिपतित तुषारः कौञ्चनादोपगीतः
प्रदिशतु हिमयुक्त स्त्वेष कालः सुखं वः। वही १८

शिशिर

लगता है, हेमन्त के समान कवि के पास शिशिर के विषय में भी कहने के लिये कुछ अधिक नहीं है। इसीलिये उसने दोनों को क्रमशः १८ और १६ श्लोकों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में ही पूर्ण कर दिया है। उसकी अन्य कृतियों में भी इन ऋतुओं की चर्चा नहीं है। बात यह है कि इन मासों में प्रकृति के पास कवि के लिये कुछ नया नहीं होता। वह ओस, शीत और तुषार के अतिरिक्त कुछ देतीं नहीं। सब कुछ शान्त, निःस्पन्द और जड़ सा दिखायी देता है। किन्तु लोगों के जीवन पर उनका प्रभाव अवश्य परिलक्षित होता है। अतः कवि ने उसी को अपनी लेखनी का विषय बनाया है। देखिये—

निरुद्ध-वातायन-मन्दिरोदरं हुताशनो भानुमतो गभस्तयः।
गुरुणि वासांस्यवलाः सयौवनाः प्रयान्तिकालेऽत्र जनस्य सेव्यताम्।

ऋतु. ५-२

न चन्दनं चन्द्रमरीचि-शीतलं न हर्म्यपृष्ठं शरदिन्दुनिर्मलम्।
न वायवः सान्द्रतुषारशीतलाः जनस्य चित्तं रमयन्ति साम्प्रतम्। वही ३
मनोज्ञ-कूर्पासक-पीडित-स्तनाः सराग-कौशेयक-पीडितोरवः।
निवेशितान्तःकुसुमैः शिरोरुहै र्विभूषयन्तीव हिमागमं स्त्रियः। वही ८

लोग खिड़कियाँ बन्द करके घर के भीतर बैठे रहते हैं। आग तापते हैं और सूर्य की किरणों का सेवन करते हैं। मोटे वस्त्र पहनते हैं और यौवनवती स्त्रियों का सेवन करते हैं। आजकल चन्द्रमा की किरणों तले रखकर ठण्ढा किया हुआ चन्दन किसी को नहीं भाता और न शरच्चन्द्र जैसी धवल छत ही अच्छी लगती है। घनी ओस के कारण शीतल वायु भी मन को नहीं सुहाती। अपने स्तनों को सुन्दर चोलियों में कसे हुए, उरुओं को रेशम की साड़ी से सजाये हुए और सिर के वालों में फूल खोसे हुए स्त्रियाँ आकर्षक साज-सज्जा द्वारा शिशिर का अभिनन्दन करती सी जान पड़ रही हैं॥

लोगों की सारी चर्या ही इन दिनों बदल जाती है—

गृहीतताम्बूल-विलेपनस्रजः सुखासवामोदित-वक्त्रपङ्कजाः।
प्रकाम-कालागुरु-धूपवासितं विशन्ति शय्यागृहमुत्सुकाः स्त्रियः।

वही ५

सुगन्धिनिःश्वास-विकम्पितोत्पलं
मनोहरं काम-रतिप्रबोधकम्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निशासु हृष्टाः सह कामिभिः प्रियाः
पिबन्ति मद्यं मदनीयमुत्तमम्। वही १०

कनक-कनक-कान्तैश्चारु ताम्राधरोष्ठैः
श्रवणतलनिषक्तैः पाटलोपान्तनेत्रैः।
उषसि वदनविम्वैरंस-संसक्त केशैः
श्रिय इव गृहमध्ये संस्थिता योषितोद्य। वही १३

स्त्रियाँ अपने कमल मुखों को पुष्पासव पीकर सुगन्धित बनाती है। वे पान खाकर अगर, केसर आदि से बने लेप अंगों पर लगाकर और पुष्प मालायें पहनकर बड़े उत्सुक भाव से उन शयन गृहों में घुस जाती हैं जो पहले से ही कालागुरु के धूप से सुगन्धित बना लिये गये होते हैं। वे रात्रि के समय अपने पतियों के साथ अनुरागवर्धक, रति-प्रबोधक उत्तम मद्य पीती हैं जिसमें पड़ा कमल उनके निःश्वास से हिलता रहता है। उषःकाल में कमल जैसे गोरे मुखों, लाल मनोरम अधरों, कानों तक फैले गुलाबी कोरों वाले नेत्रों, और कन्धों पर बिखरे केशों वाली सुहागिन स्त्रियों को देखकर ऐसा लगता है जैसे घरों के भीतर साक्षात् लक्ष्मियाँ आ बैठी हों।

इस ऋतु में गुड़ से बनी खाने की वस्तुएँ बहुतायत से मिलती है। स्वादिष्ट शालि और ईख के कारण भी यह ऋतु सुहावनी लगती है। काम का वेग बढ़ जाता है। कष्ट दायक उनके लिये है जिनके प्रिय उनके समीप नहीं होते—

प्रचुर-गुड-विकारः स्वादु-शालीक्षु-रम्यः
प्रवल सुरतकेलिर्जात कन्दर्पदर्पः।
प्रियजनरहितानां चित्तसन्तापहेतुः
शिशिर समय एष श्रेयसे वोऽस्तुनित्यम्। वही १६

हिमालय वर्णन

कालिदास ने कुमारसंभव का प्रारम्भ हिमालय के वर्णन से किया है। इसके अधिष्ठाता शिव हैं। अर्थात् यह देवताओं का अधिष्ठान है। इसका एक छोर पश्चिम समुद्र में तो दूसरा पूर्व सागर में समाया हुआ है। इसमें श्रेष्ठ रत्न और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वोत्तम ओषधि वनस्पति विद्यमान है। रत्न-प्रभव होते हुए भी इस का हिम अवश्याय कष्टकारी है। इसमें शृंगार के साधनभूत अनेक धातु भी विद्यमान है (कुमार० १-१से ४)। यह पर्वत इतना ऊँचा है कि इनकी ऊँचाई के मध्य भाग में मेघ विचरण करते हैं। उनके नीचे रहने वाले सिद्धादिगण उन बादलों की छाया में विश्राम करते हैं किन्तु कभी मेघ अचानक बरस पड़ते हैं और उनकी छाया में विश्राम करते लोग भीग जाते हैं। तब वे अपने वस्त्र सुखाने ऊपर के धूप वाले शृंगों पर चढ़ जाते हैं—

आमेखलं संचरतां घनानां छायामधः सानुगतां निषेव्य,

उद्वेजिता वृष्टिभिराश्रयन्ते शृङ्गाणि यस्यातपवन्ति सिद्धाः।

कुमार. १-५

हिमालय वासियों को रातों को सिंहों से भय रहता है क्योंकि वे हिमालयवर्ती वनों में प्रायः पाये जाते हैं। वे उस स्थान को बचाकर निकलना चाहते हैं जहाँ सिंह का बसेरा हो। इस बात का पता चल सकता यदि उन्हें रात को सिंह के द्वारा मारे गये हाथियों के रक्त के चिह्न दिख जाते किन्तु वे तो ऊपर से गिरने वाले तुषार से ढँक जाते हैं। फिर भी सिंह के नखों के बीच से छूट कर यत्र तत्र गिरे हुए मुक्ताओं को देखकर वे समझ लेते हैं कि यहाँ पर सिंह ने हाथी का शिकार किया है। यहाँ हाथियों के शरीर पर पड़े हुये चित्तों (इन्हें पद्मक कहते हैं) के समान लाल भोजपत्र मिलते हैं जिन पर विधाधरों की सुन्दरियाँ प्रेमपत्र लिखा करती हैं। इस पर वे छिद्र युक्त बाँस जिन्हें कीचक कहते हैं, बड़ी संख्या में हैं। जब इसकी गुफाओं से वायु का झोंका आता है तो ये कीचक बाँसुरी की तरह बज उठते हैं और लगता है जैसे वे अभी गाने वाले किन्नरों के गान्धार ग्राम युक्त गीत पर तान भरेंगे।

न्यस्ताक्षरा धातुरसेन यत्र भूर्जत्वचः कुञ्जर विन्दु-शोणाः।

व्रजन्ति विद्याधर-सुन्दरीणामनङ्गलेख-क्रिययोपयोगम्। वही ७

यः पूरयन् कीचक-रन्ध्रभागान् दरीमुखोत्थेन समीरणेन

उद्गास्यतामिच्छति किन्नराणां तानप्रदायित्वमिवोपगन्तुम्। वही ८

यहाँ सरल (देवदारु) वृक्ष हैं। जब हाथी अपनी कलपटी की खुजली मिटाने के लिये मस्तक से उन्हें रगड़ते हैं तो उनकी छाल छिल जाती है और दुग्ध बाहर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निकल आता है। तब उस दुग्ध की गन्ध इसके शिखरों को सुगन्धित बना देती है। इसकी गुफाओं के भीतर रहने वाले वनेचरों के शयन स्थान को रात्रि के समय इसकी ओषधियाँ (वनस्पति) बिना तेल के दीपों के समान प्रकाशित करती है और इसकी अश्वमुख नामक जाति की भारी भारी नितम्बों वाली स्त्रियाँ जब इसके जमी हुई कठोर बर्फ वाले मार्गों पर चलती हैं तो उनके पाँव के पंजे शीत से अकड़ से जाते हैं फिर भी पिछले भाग के भारी होने के कारण वे जल्दी जल्दी नहीं चल पातीं—

कपोल-कण्डूः करिभिर्विनेतुं विघट्टितानां सरल-द्रुमाणाम्।

यत्र स्रुत-क्षीरतया प्रसूतः सानूनि गन्धः सुरभीकरोति॥ वही ९

भवन्ति यत्रौषधयोरजन्यामतैलपूराः सुरत-प्रदीपाः। वही १०

न दुर्वह-श्रोणि-पयोधरार्ता भिन्दन्ति मन्दां गतिमश्वमुख्यः। ११

सूर्य कितना ही क्यों न चमके हिमालय की गुफाओं में अन्धकार छाया रहता है। चमरी जाति की मृगियाँ चन्द्रकिरणों के समान श्वेत पूँछ डुलाती हुई हिमालय पर विचरण करती रहती है। बादल इसके गुहा मुखों को ढँकलेते हैं। कभी कभी वे गुहा के भीतर रहने वाली अङ्गनाओं को ढँकने तक के काम आते हैं।

दिवाकराद्रक्षति यो गुहासु लीनं दिवाभीतमिवान्धकारम्।

वही १२

यस्यार्थ युक्तं गिरि-राजशब्दं कुर्वन्ति वाल-व्यजनैश्चमर्यः। १३

दरी गृहद्वार विलम्बि बिम्बास्तिरस्करिण्यो जलदा भवन्ति॥

वही १४

इसकी कुछ चोटियाँ तो इतनी ऊँची हैं कि उनके ऊपर स्थित सरोवरों के कमलों को सूर्य अपनी ऊर्ध्वमुखी किरणों के द्वारा खिला पाता है। सूर्य नीचे और सर ऊपर स्थित है—सम्पूर्ण धरित्री को धारण करने की क्षमता तथा यज्ञ में काम आने वाली वस्तुओं के उत्पादन की शक्ति को ध्यान में रखते हुए स्वयं प्रजापति ने इसे शैलाधिपति बताया है—

पद्मानि यस्याग्रसरोरुहानि प्रबोधयत्यूर्ध्वमुखै र्मयूखैः। वही १६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यज्ञाङ्ग योनित्वमेवक्ष्य यस्य सारं धरित्रीधरण-क्षमं च।

प्रजापतिः कल्पित-यज्ञभागं शैलाधिपत्यं स्वयमन्वतिष्ठत्॥

वही १७

कालिदास का यह हिमालय वर्णन उनकी दृष्टि की विशालता, और भारत के गर्वोन्नतभाल के प्रति उनकी गहन श्रद्धा के निदर्शन के रूप में प्रायः उद्धृत किया जाता है। निश्चय ही इस वर्णन से पाठक के मन में पर्वत राज का विराट रूप उभर कर आता है। रात्रि के समय प्रकाशित होने वाले वनस्पति, विविधधातु और रत्न, देवदारु और भूर्ज जैसे स्वास्थ्यकर वृक्ष, बाल व्यजन डुलाती चमरियाँ, दहाड़ते सिंह और झूमते गजराज, पतित पावनी भागीरथी, लम्बी गहरी गुफायें, कीचकों के वन, दूरदूर तक फैली हिमराशि और इन सब के ऊपर हिमालय की अपरिमेय तुंगता और विस्तार- ये सब मिल कर पाठक के मन में इस देवतात्मा नगाधिराज के प्रति आदर और आश्चर्य मिश्रित श्रद्धा का भाव जगाते हैं। सिद्ध, साध्य, विद्याधर, किंनर, वनेचर, किरात, अश्वमुख आदि जातियों की निवास भूमि हिमालय के अनेक शृंगों की चर्चा कालिदास ने की है। इसके एक भाग में शिव का निवास है—

स कृत्तिवासास्तपसे यतात्मा गङ्गा-प्रवाहोक्षित-देवदारु।

प्रस्थं हिमाद्रेर्मृगनाभिगन्धि किचित्क्वणत्किन्नरमध्युवास।

कुमार १-५४

यह प्रस्थ ऐसा था कि इसके एक ओर गंगा बहती थी। उसके तटों पर देवदारु के वृक्ष थे। कस्तूरी मृग विहार करते थे और किन्नर लोग आनन्द से गाते हुए घूमा करते थे। नमेरु के वृक्ष पुष्पों से मण्डित थे। भूर्ज भी थे। शिव के गण नमेरु पुष्पों को शिर पर धारण करते और भूर्ज के वल्कल पहनते थे। मनःशिला (मैनसिल) और शिलाजतु का अधिक्य था वहाँ।

गणा नमेरु-प्रसवावतसा भूर्जत्वचः स्पर्शवतीर्दधानाः

मनः शिला विच्छुरिता निषेदुः शैलेय नद्धेषु शिलातलेषु।

वही ५५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसका एक प्रस्थ वह है जहाँ पार्वती ने शिव की प्राप्ति के लिये तप किया था और जो कालान्तर में गौरी शिखर के नाम से प्रसिद्ध हो गया—प्रजासु पश्चाद्विदितं तदाख्यया जगाम गौरी शिखरं शिखण्डिमत् । वही ५-७

औषधि प्रस्थ और उसमें स्थित हिमवन्तगर, महाकेशी प्रपात (कुमार. ६-३३), गौरी- गुरोर्गह्वर (गंगा प्रपातान्तिक) रघु. २-२६, की भी संक्षेप में चर्चा कालिदास ने की है । इनमें हिमवत्पुर का वर्णन कुछ अधिक विस्तार पा गया है ।

हिमवत्पुर

यह ओषधि प्रस्थ में स्थित हिमालय नरेश का दुर्ग था जिसके एक ओर परिखा बन कर गंगा बहती थी । बड़ी बड़ी मणियों से बने प्राकार थे और उनके भीतर सतत ज्वलित दिखने वाले वनस्पति (ओषधि पादप) थे । इस नगर में गजों या सिंहों का भय नहीं था । वेश्मों के शिखरों पर मेघ मँडराते थे । उनके गर्जन और पवन में होने वाले मुरज के नाद का अन्तर केवल करणों से ही मालूम होता था । राजकन्दर्प में करण की परिभाषा इस प्रकार दी है—

नृत्य-वादित्र-गीतानां प्रयोगवशमेदिनाम् ।

संस्थानं ताडनं रोधः करणानि प्रचक्षते ।

उस पुर की पानभूमियों वाले स्फटिक के हर्म्यों में रात्रि के समय नक्षत्रों के पड़ने वाले प्रतिबिम्ब पुष्पोपहार सदृश लगते थे—

गङ्गा-स्रोतः-परिक्षिप्तं वप्रान्तर्ज्वलितौषधि ।

वृहन्मणिशिला-सालं गुप्तावपि मनोहरम् ।। कुमार. ६-३८

जितसिंह-भया नागा यत्राश्व-विलयोनयः ।

यक्षाः किंपुरुषाः पौरा योषितो वनदेवताः । वही ३९

शिखरासक्त-मेघानां व्यज्यन्ते यत्रवेश्मनाम् ।

अनुगर्जित-सन्दिग्धाः करणैर्मुरजस्वनाः ।। वही ४०

बादल, वर्षा आदि से सम्बन्धित दुर्दिनों में भी रात्रि के समय चमकने वाली औषधियों के कारण वहाँ के लोगों को मार्ग में अन्धकार से परिचय नहीं होता था । यहाँ यौवन में ही आयु बीतती थी, काम को छोड़कर और कोई प्राणलेवा रोग नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। रति की थकावट से आ जाने वाली निद्रा ही यहाँ चेतना की विच्छेदक थी। अर्थात् यहाँ सदा यौवन, प्रणय और रति ही विलसित रहते थे—

यौवनान्तं वयो यस्मिन्नान्तकः कुसुमायुधात्।

रतिखेद-समुत्पन्ना निद्रा संज्ञा-विपर्ययः॥ वही ४४

इस नगर के बाह्य प्रान्त में अत्यन्त सुगन्धित पुष्पों और लता- वल्लियों वाला गन्धमादन नामक उपवन है जिसके सन्तानक नामक कल्पतरुओं की छाया में विद्याधर सोया करते हैं—

सन्तानतरुच्छायासुप्तविद्याधराध्वगम्।

यस्य चोपवनं बाह्य-गन्धवद् गन्धमादनम्। कुमार. ६-४६

कैलास और अलका

हिमवान् और मेना के घर से विदा लेकर शिव और पार्वती मेरु पर्वत शिखर पर गये। पद्मनाभ प्रस्थ अर्थात् विष्णु के चरणों से अंकित मन्दर के नितम्ब (मध्य) पर भी उन्होंने निवास किया—वह मन्दर जिसमें समुन्द्र मन्थन काल के अमृत बिन्दु लगे थे। कुमार. ८- २२, २३। फिर उन्होंने एकपिङ्गल अर्थात् कुवेर के गिरि कैलास पर चन्द्र- धवल रात्रियाँ व्यतीत कीं—

एकपिङ्गलगिरौ जगद्गुरु र्निर्विवेश विशदाः शशिप्रभाः।

वही २४

इसी कैलास पर हेमकूट नामक शिखर है जिसका उल्लेख विक्रमोर्वशीय मे हुआ है। कैलास के स्वामी कुबेर के घर से लौटते हुए इसी के पास केशी दानव ने उर्वशी को दबोच लिया था। इसी हेमकूट पर, जिसे किंपुरुषपर्वत भी कहते थे, महर्षि मारीच और अदिति तप करते थे और यहीं दुष्यन्त की शकुन्तला और पुत्र भरत से भेंट हुई थी।

स्वायंभुवान्मरीचेर्यः प्रबभूव प्रजापतिः।

सुरासुरगुरुः सोऽत्र सपत्नीकस्तपस्यति। शाकु. ७-९

इसे दुष्यन्त ने पूर्वापर समुद्र में प्रविष्ट द्रवसुवर्ण- स्रावी सान्ध्य मेघ के समान छवि वालों के रूप में देखा है और मातलि इसे किंपुरुष वर्ष का मर्यादा पर्वत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा तप: सिद्धि का क्षेत्र बतलाता है । लगता है कालिदास हेमकूट, मेरु और कैलास में अन्तर नहीं करते ।

कैलास की राजधानी अलका पुरी है जिसके शासक हैं कुवेर । यह यक्षों की पुरी है । यहीं का वासी यक्ष प्रिया से वियुक्त होकर राम गिरि पर शाप का समय व्यतीत करता था । यह धवल तुङ्ग प्रासादों की नगरी है और कैलास की शोभा । कैलास के कुमुद-से शुभ्र विशद शृङ्ग आकाश में ऊँचे फैले, त्र्यम्बक के पूंजीभूत दैनन्दिन हास के समान लगते हैं—

शृङ्गोच्छ्रायैः कुमुदविशदैर्यो वितत्यस्थितः खं ।

राशीभूतः प्रतिदिनमिव त्र्यम्बकस्यादृहासः । मेघ. १-५८

इस पर्वत के मानस सर के जल में स्वर्ण कमल उत्पन्न होते हैं । कल्पवृक्ष इसकी शोभा बढ़ाते हैं । इसकी राजधानी अलका के समीप गंगा उसकी सरकी हुई साड़ी के समान पड़ी है—

तस्योत्सङ्गे प्रणयिन इव स्रस्तगङ्गा-दुकूलां

न त्वं दृष्ट्वा न पुनरलकां ज्ञास्यसे कामचारिन् । वही ६३

इस नगरी में वधुएँ शरत् में हाथ में लीला कमल लिये, हेमन्त में बालों में कुन्द गूँथे, शिशिर में लोध्र पुष्पों का पराग मुँह पर लगाये, वसन्त में ताजे कुरवकजूड़े में लगाये, ग्रीष्म में सुन्दर शिरीष कानों में पहने और मेघागम काल में नीपों से सीमन्त (माँग) सजाये मिलती है ।

हस्ते लीलाकमल मलके वाल-कुन्दानुविद्धं

नीता लोध्र-प्रसव-रजसा पाण्डुतामाननेश्रीः

चूडापाशे नवकुरबकं चारु कर्णेशिरीषं

सीमन्ते च त्वदुपगमजं यत्र नीपं वधूनाम् ।। मेघ. २-२

यहाँ कोई पीडा नहीं, कोई दुःख नहीं, केवल आनन्द के आँसू और काम जन्य पीडा केवल वियोग या प्रणय कलह में । इतना ही नहीं, यक्षों की यौवन को छोड़कर अन्य आयु भी नहीं होती ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आनन्दोत्थं नयन-सलिलं यत्र नान्यैर्निमित्तै:
र्नान्यस्तापः कुसुमशरजादिष्ट-संयोग-साध्यात्।
नाप्यन्यस्मात् प्रणयकलहाद्विप्रयोगोपपत्तिः,
वित्तेशानां न च खलु वयो यौवनादन्यदस्ति॥ वही २३

अलका की देव प्रार्थित यक्षकन्यायें गंगा की शीतल वायु में मन्दार वृक्षों की छाया में बैठी कनक धूलि में मणियों को छिपाने और ढूँढने का खेल खेला करती हैं—

अन्वेष्टव्यैः कनकसिकता-मुष्टि-निक्षेपगूढैः,
संक्रीडन्ते मणिभिरमरप्रार्थिता यत्रकान्ताः। वही २४

अलका के बाहर वैभ्राज या चैत्ररथ नाम का उपवन है। अनन्त सम्पत्ति के स्वामी विलासी यक्ष लोग किन्नरों के मधुर कण्ठ से कुवेर का यश गाते हुए अप्सराओं के साथ वार्तालाप में सब कुछ भूले हुए उस वैभ्राज उपवन का आनन्द उठाते हैं।

वैभ्राजाख्यां विवुध-वनिता-वारमुख्या-सहायाः
वद्धालापा वहिरुपवनं कामिनो निर्विशन्ति॥ वही २८

यहाँ एक अकेला कल्प वृक्ष ही आवश्यक अलंकरण और प्रसाधन की वस्तुएँ प्रदान कर देता है। नाना प्रकार के वस्त्र, नेत्रों में लाली और मस्ती लाने वाला मधु. किसलय युक्त नाना प्रकार के पुष्प, लाक्षाराग आदि सारे अवला- सौन्दर्य साधन एक कल्पवृक्ष से प्राप्त हो जाते हैं—

वासश्चित्रं, मधु नयनयो र्विभ्रमादेशदक्षं,
पुष्पोद्भेदं सहकिसलयैर्भूषणानां विकल्पान्।
लाक्षारागं चरण-कमलन्यास-योग्यं च यस्या—
मेकः सूते सकलमवलामण्डनं कल्प वृक्षः। वही ११

कालिदास के सारे वर्णन केवल उनके अभिलाष की काल्पनिक उड़ान हैं। मैं नहीं समझता कि कालिदास कभी कनखल और श्रीनगर के आगे गये थे। उनका कोई भी वर्णन, चाहे वह कुमार संभव के प्रथम सर्ग का ही क्यों न हो, यथार्थ और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वास्तविकता पर नहीं, केवल सुनी सुनायी बातों और पुराणों में प्राप्त उल्लेखों पर आधारित हैं। उन्होंने उसे सौन्दर्य-मण्डित काव्य का रूप अवश्य दे दिया है।

वन वर्णन

हिमालय का वर्णन करते हुए उन्होंने यत्र तत्र उसके वनों का भी प्रासंगिक चित्र प्रस्तुत किया है। उदाहरणार्थ दिलीप जब वसिष्ठ के आश्रम को जाते हैं तो उन्हें वनों के बीच से ही अपना मार्ग पार करना होता है। वह उस मार्ग से निकलते हैं जिसके दोनों ओर साल के ऊँचे ऊँचे वृक्ष खड़े हैं जिनकी त्वचा से निकलने वाले स्राव (गोंद का रस) की गन्ध पथिकों के मन को मोहती है। वायु वन-वृक्षों को हिलाती, पुष्परेणु अपने साथ उड़ा लाती और साल-रस की गन्ध से पान्थों को आप्यायित करती तथा अपने स्पर्श से मन को आह्लादित करती बह रही है। मार्ग के दायें बायें बैठे मयूर रथ की नेमि के शब्द को मेघ का गर्जन समझ कर उसी की ओर मुँह किये षड्ज से मिलता जुलता केकारव कर रहे हैं। उनका केका-रव षड्ज के समान शुद्ध और विकृत या च्युत और अच्युत दो भागों में स्पष्ट विभक्त और मनोमोहक लगता है—

सेवमानौ सुख-स्पर्शैः साल-निर्यासगन्धिभिः।

पुष्परेणूत्करैर्वातै राधूत- वनराजिभिः। रघु. १-३८

मनोभिरामाः शृण्वन्तौ रथनेमिस्वनोन्मुखैः।

षड्ज- संवादिनीः केका द्विधा भिन्नाः शिखण्डिभिः।

रघु. १-३९

वन हों और बीच बीच में सर-सरसी न हों, भला यह कैसे हो सकता है और सर अरविन्दों सारसों और पास में विचरण करते मृगों से विरहित कैसे हो सकते हैं—

सरसीष्वरविन्दानां वीचिविक्षोम-शालिनाम्।

आमोदमुपजिघ्रन्तौ स्वनिःश्वासानुकारिणम्। रघु. १-४३

श्रेणीवन्धाद्वितन्वद्भिरस्तम्भां तोरणस्रजम्।

सारसैः कलनिर्ह्रादैः क्वचिदुन्नमिताननौ॥ वही ४१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परस्पराक्षि-सादृश्यमदूरोज्झित-वर्त्मसु

मृगद्वन्द्वेषु पश्यन्तौ स्यन्दनावद्ध-दृष्टिषु ॥ वही ४०

सरसियों में खिले कमल लहरों के स्पर्श से हिलते हैं तो उनसे होकर बहने वाली शीतल और सुगन्धित वायु मन को प्रसन्न करती है । सारस पंक्ति- बद्ध होकर मधुर शब्द करते हुए उड़ते हैं तो लगता है जैसा आकाश में बिना स्तम्भो के ही वन्दन वार टाँग दी गयी हैं । मार्ग के समीप मृग टकटकी लगा कर रथ को देखते हैं । विश्वास के कारण वे दूर नहीं भागते । रथ जब बिलकुल पास आ जाता है, तभी वे मार्ग से हटते है । दिलीप- दम्पत्ती मृगमृगियों में अपने नेत्रों का सादृश्य देखते हैं । मार्ग में घोषवृद्ध मिलते हैं जो ताजा मक्खन लेकर उनके स्वागत को आये हैं । वे उनसे नाम ग्राम आदि पूछते हैं । वनों के भीतर छोटी छोटी गाँवटी होती है जो घोष कहलाती हैं । इनमें रहने वाले प्राय: आभीर होते हैं जो पशु पालन का काम करते हैं ।

वनों का वर्णन आश्रमों के प्रसंग में आया है और वहीं उसकी चर्चा भी की गयी है । यहाँ तो बस वन मार्ग के एक दो चित्र हैं—

स कीचकैः मारुत-पूर्णरन्ध्रैः कूजद्भिरापादितवंशकृत्यम् ।

वही २-१२

पृक्त स्तुषारैर्गिरिनिर्झराणामनोकहाकम्पित-पुष्पगन्धी (पवनः सिषेवे)

स पल्वलोत्तीर्ण-वराहयूथान्यावास-वृक्षोन्मुख-वर्हिणानि ।

ययौ मृगाध्यासित-शाद्वलानि श्यामायमानानि वनानि पश्यन् ।

वही १७

कीचकों के छिद्रों में जब वायु भरती है तो वे बंसी के समान बज उठते हैं । वृक्षों को हिला कर उनकी गन्ध को साथ लिये, पर्वतीय झरनों के जलकणों से शीतल वायु प्रवाहित होती है । वराहों के यूथ छोटे छोटे पोखरों से बाहर निकलते हैं । पक्षी अपने अपने आवास वृक्षों की ओर उड़ कर जा रहे हैं । मृग हरी हरी घास से मण्डित स्थली पर बैठे हैं और वन दिन के ढल जाने से और भी अधिक श्याम दिखायी देने लगे हैं ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समुद्र वर्णन

रघुवंश के तेरहवें सर्ग ने कालिदास में समुद्र की विराटता का भव्य चित्र खींचा है । लंका से अयोध्या लौटते हुए राम सीता को मार्ग में प्राप्त समुद्र आकाश से दिखलाते हैं । कहते हैं—वैदेहि ! फेन से भरे समुद्र को देखो । इसे मेरे द्वारा बनवाये हुए सेतु ने दो भागों में बाँट दिया है जैसे तारों से खिले शरत्कालीन निर्मल आकाश को छाया पथ (आकाश गंगा) दो भागों में बाँट देता है । बड़ा उपयोगी है यह, समुद्र । सूर्य की किरणें इसी से जल खींचती और फिर उसे पृथिवी पर गिराती है । इसमें रत्न भी पलते और बढ़ते है । यह अपना जल सोखने वाले वड़वानल तक को अपने उदर में धारण करता है । इसने संसार को शीतलता प्रदान करने वाले चन्द्रमा को जन्म दिया है । चन्द्रमा समुद्र मन्थन से निकला था, ऐसा पौराणिक विश्वास है । यह सदा अपना रूप बदलता रहता है । भगवान् विष्णु के समान दसों दिशाओं में सब ओर फैला हुआ है और उन्हीं के समान इसके विषय में भी यह नहीं कहा जा सकता कि यह ऐसा है और इतना बड़ा है—

वैदेहि पश्यामलयाद् विभक्तं सत्सेतुना फेनिलमम्वु-राशिम् ।

छायापथेनेव शरत्प्रसन्नमाकाशमाविष्कृत-चारुतारम् ।

रघु. १३-२

गर्भं दधत्यर्क-मरीचयोऽस्माद् विवृद्धिमत्राश्नुवते वसूनि ।

अविन्धनं वह्निमसौविभर्ति प्रह्लादनं ज्योतिरजन्यनेन । वही ४

तां तामवस्थां प्रतिपद्यमानं स्थितं दश व्याप्यदिशोमहिम्ना ।।

विष्णोरिवास्यानवधारणीयमीदृक्तया रूपमियत्तया वा । वही ५

समुद्र के साथ अनेक सामाजिक विश्वास और मिथक जुड़े हुए हैं। यथा-जब महाराज सगर अश्वमेघ कर रहे थे तो इन्द्र ने उनके यज्ञ का अश्व चुरा कर पाताल में तप करते ध्यान- मग्न कपिल मुनि के पार्श्व में बाँध दिया तब अश्व को ढूँढते हुए सगर के साठ हजार पुत्रों ने पृथ्वी को खोद मारा । इसी यह समुद्र इतना अधिक विस्तार पा गया (वही ३) । प्रलय काल में समस्त संसार का संहार करने के उपरान्त विष्णु यहीं योग निद्रा में सो जाते हैं और उनके नाभि कमल से निकले हुए ब्रह्मा सदा उनकी स्तुति किया करते हैं । इसका अर्थ यह कि समुद्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रलय काल में भी नष्ट नहीं होता (वही ६)। इन्द्र ने जब पर्वतों के पंख काटना प्रारम्भ किया तो भय भीत होकर अनेक पर्वतों ने इसी की शरण ली थी। ये पर्वत आज भी समुद्र में बिखरे मिलते हैं (वही ७)। सृष्टि के प्रारम्भ में जब आदि पुरुष वराह पाताल से पृथिवी का उद्धार कर उसे ले जा रहे थे उस समय प्रलय से बढ़ा हुआ इसका जल क्षण भर के लिये पृथिवी का अवगुण्ठन बन गया था (वही ८)। और

मुखार्पणेषु प्रकृति-प्रगल्भः स्वयं तरङ्गाधर-दान-दक्षः।
अनन्य-सामान्य-कलत्र-वृत्तिः पिबत्यसौ पाययते च सिन्धूः।

रघु. १३-९

सत्त्वमादाय नदीमुखाम्भः संमीलयन्तो विवृताननत्वात्।
अमी शिरोभिस्तिमयः सरन्ध्रै रुर्ध्व वितन्वन्ति जल-प्रवाहान्।

वही १०

मातङ्ग- नक्रैः सहसोत्पतद्भि र्भिन्नान् द्विधा पश्य समुद्रफेनान्।
कपोल-संसर्पितया य एषां व्रजन्ति कर्णक्षण-चामरत्वम्॥

वही ११

अन्य लोग केवल अपनी पत्नियों के अधर का पान करते हैं किन्तु अपना अधर उन्हें नहीं पिलाते किन्तु जब इसकी पत्नी नदियाँ चुम्बन के लिये अपना मुख इसके आगे बढ़ाती हैं तब यह समुद्र अपना तरंग रूप अधर उन्हें पिलाता है और स्वयं भी उनका अधर पीता है। फिर इसकी बड़ी बड़ी मछलियों को देखो। वे पहले अपना अपना मुँह खोले अन्य जन्तुओं के साथ समुद्र का जल पी जाती हैं और फिर अपना मुँह बन्द करके फुहारे के समान मस्तक के छिद्रों से पानी की धारायें छोड़ने लगती हैं। इस समुद्र-फेन को तो देखो। गजाकार मगरों के अचानक ऊपर उठने से यह दो भागों में विभक्त हो रहा है। ये फेन इन नक्रादि के कपोलों से लिपटकर इनके कानों पर टँगे चँवर लग रहे है। और ये दृश्य कैसे मनोरम है।

वेलानिलाय प्रसृता भुजङ्गा महोर्मि-विस्फूर्जथु-निर्विशेषाः।
सूर्यांशु-सम्पर्क-समृद्धरागै र्व्यज्यन्तएते मणिभिः फणस्थैः।

वही १२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तवाधरस्पर्धिषु विद्रुमेषु पर्यस्तमेतत् सहसोर्मि-वेगात्।
ऊर्ध्वाङ्कुर- प्रोतमुखं कथंचित् क्लेशादपक्रामति शङ्ख-यूथम्।

वही १३

ऊपर कवि ने तिमियों के मस्तक छिद्रों से फूट निकलते फुहारों, नक्रों के ऊपर आ जाने पर समुद्र की शोभा, वड़वानल और समुद्र के भीतर डूबे पर्वतों का वर्णन कर सूक्ष्म निरीक्षण और गम्भीर सौन्दर्यग्राही दृष्टि का परिचय दिया है। उपर्युक्त दो श्लोकों में वह अपने समुद्रीय ज्ञान के साथ सौन्दर्य दृष्टि का प्रमाण प्रस्तुत करते हुए कहता है कि तट की वायु का पान करने के लिये बाहर निकलते हुए ये सर्प समुद्र की लहरों के समान दिखायी देते हैं। उनसे लहरों का भ्रम होता है किन्तु जब सूर्य की किरणें ऊपर पड़ने से इनके फनों की मणियां चमक उठती हैं तो पता चल जाता है कि ये सर्प है। बड़े समुद्री साँपों और तरंग का सादृश्य कितना रमणीय है।

काले मेघ समुद्र का जल पीने आते हैं और आवर्तों के साथ तीव्र गति से चक्कर काटते हैं तो ऐसा लगता है जैसे मन्दराचल के द्वारा पुनः इसका मन्थन किया जा रहा है और यह समुद्र का तट दूर होने के कारण अयश्चक्र (लोहे के हाल) के समान तनु (पतला) तथा ताल-तमालादि वृक्षों के कारण गहरा नीला (काला) दिखता है जैसे चक्र की धार पर जंग लग गया हो।

प्रवृत्तमात्रेण पयांसि पातुमावर्तवेगाद् भ्रमता घनेन
आभाति भूयिष्ठमयं समुद्रः प्रमथ्यमानो गिरिणेव भूयः।

रघु. १३-१४

दूरादयश्चक्रनिभेव तन्वी तमाल-ताली-वनराजि-नीला।
आभाति वेला लवणाम्बुराशेर्धारा निवद्धेव कलङ्करेखा।

वही १५

अन्य वर्णनों के समान यह समुद्र वर्णन भी कवि की सतर्क निरीक्षण शक्ति का बोधक है। यद्यपि इसके भी कई श्लोक लोकमान्यताओं और पौराणिक विश्वासों की आधार भूमि पर टिके हैं। तो भी वर्णन का अधिकांश ऐसा है जिसे कोई कवि बिना समुद्रतट पर कुछ समय बिताये और उसमें होने वाले परिवर्तन,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पड़ने वाली आकाश की छायाओं आदि को बिना हृदयंगम किये केवल सुनी सुनायी बातों के बल पर काव्यबद्ध नहीं कर सकता। ये वर्णन सशक्त और प्रभावोत्पादक है।

जल-क्रीडा वर्णन

इतनी झुलसाने वाली गर्मी हो और साधन सम्पन्न राज-परिवार के लिये जलकेलि की व्यवस्था न की जाय, यह कैसे संभव है। फिर युवा कुश का तरुण उत्साह। सरयू पास थी जिसमें हिम से पिघला शीतल जल प्रवाहित था। लोललहरें लहराकर हंसों को उन्मत्त बना रही थी। तटवर्ती लताओं के पुष्प भी बहकर आ रहे थे। यह सब ग्रीष्म में सुखद था ही। सो सरयू के किनारे तम्बू शामियाने लगाये गये। सरयू में नक्र भी रहते हैं सो जाल डालने वालों को बुला कर जल को नक्रादि हिंसक जीवों से मुक्त किया गया और कुश की समृद्धि और प्रभाव के अनुरूप सारी अन्य व्यवस्थायें की गयी जैसे दशरथ के मृगयार्थ प्रस्थान करते समय की गयी थी। (रघु. १०-५३)। वनिताओं की भीड़ स्वाभाविक थी। वे जल के छींटें उछाल उछाल कर एक दूसरी को भिगोने लगीं। नदी में उतरते समय भी उनके भुजबन्ध एक दूसरे से रगड़ खा रहे थे। पैरों के नूपुर खनखना रहे थे और हंस उनका गुंजन सुनकर मचल रहे थे। सैकड़ों अन्तः पुर की स्त्रियाँ जब नहा रहीं थीं तो उन के शरीर से छूटे हुए अंगराग के मिल जाने से सरयू की धारा बादलों से घिरी सन्ध्या के समान रंग बिरंगी लग रही थी—

सा तीरसोपान-पथावतारादन्योन्य-केयूर-विघट्टिनीभिः।
सनूपुरक्षोभपदाभि-रंसादुद्विग्न-हंसा सरिदङ्गनाभिः।

रघु. १६-५६

परस्पराभ्युक्षण तत्पराणां तासां नृपो मज्जन-रागदर्शी।
नौ- संश्रयः पार्श्वगतां किराती मुपात वाल-व्यजनां वभाषे।

वही ५७

पश्यावरोधैः शतशो मदीयै र्विगाह्यमानो गलिताङ्गरागैः।
सन्ध्योदयः साभ्र इवैष वर्णं पुष्यत्यनेकं सरयू प्रवाहः।

वही ५८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नावों के चलने से नदी में लहरें उठती हैं। उन्होंने सुन्दरियों की आँखों में पानी भर दिया है। जिससे उनका काजल धुल कर नेत्रों में मदपान से उत्पन्न होने वाली-सी लाली उत्पन्न हो गयी है। भारी भारी नितम्बों और स्तनों के कारण रानियाँ अच्छी तरह तैर नहीं पातीं। फिर भुजाओं में बँधे अंगद अलग कष्ट पहुँचाते हैं। फिर भी वे जल केलि में अनुराग रखने के कारण तैरने का प्रयत्न करती हैं। उनके कानों से छूट कर पानी में गिरे शिरीष के कर्णफूलों से मीनों को शैवाल का भ्रम होता है और वे उन्हें खाने के लिये दौड़ती है—

विलुप्तमन्तःपुर-सुन्दरीणां यदञ्जनं नौलुलिताभिरद्भिः।
तद् वध्नतीभिर्मदरागशोभां विलोचनेषु प्रतिमुक्तमासाम्॥ वही ५९
एता गुरु- श्रोणि- पयोधरत्वादात्मानमुद्वोढुमशक्नुवत्यः।
गाढाङ्गदै र्वाहुभि रप्सुवालाः क्लेशोत्तरं रागवशात् प्लवन्ते॥ वही ६०
अमी शिरीष- प्रसवावतंसाः प्रभ्रंशिनो वारि-विहारिणीनाम्।
पारिप्लवाः स्रोतसि निम्नगायाः शैवाल लोलांश्छलयन्ति मीनान्॥
वही ६१

जलकेलि में निमग्न प्रमदाओं का एक और दृश्य देखिये—

आसां जलास्फालनतत्पराणां मुक्ताफल-स्पर्धिषु सीकरेषु।
पयोधरोत्सर्पिषु शीर्यमाणः संलक्ष्यते नच्छिदुरोऽपिहारः। वही ६२
तीरस्थली-वर्हिभिरुत्कलापैः प्रस्निग्धकेकै रभिनन्द्यमानम्।
श्रोत्रेषु संमूर्च्छति रक्तमासां गीतानुगं वारिमृदङ्ग-वाद्यम्। वही ६४
संदष्ट- वस्त्रेष्वला- नितम्बेष्विन्दु प्रकाशान्तरितोडुतुल्याः।
अमी जलापूरित-सूत्रमार्गा मौनं भजन्ते रशना-कलापाः। वही ६५

जलक्रीड़ा में मग्न स्त्रियों को यह तक पता नहीं कि उनके हार टूट गये हैं और उनके मोती बिखर गये हैं। वे मोतियों के समान बूँदों को ही मोती समझ कर यह मान बैठी हैं कि उनका हार टूटा नहीं है। वे पानी पर मृदङ्ग के समान थाप मारती हैं। उसकी ध्वनि उनके गीतों पर सम देती हैं। अर्थात् स्त्रियाँ गा भी रही हैं और पानी को पीट पीटकर गीतानुरुप ताल भी दे रही हैं। तीर पर बैठे मयूर उसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वारिमृदङ्ग-ध्वनि समझ कर प्रसन्न हो रहे हैं और पंख उठाकर उसका अभिनन्दन कर रहे हैं। उनके नितम्बों पर श्वेत वस्त्र लिपटा हुआ है। गीला होने के कारण वह शरीर से चिपट गया है। उसके नीचे करधनी के घुँघरु ऐसे दिखायी देते हैं जैसे चाँदनी से ढँके तारे। करधनी के सूत्रों में जल भर जाने से स्त्रियों के इधर उधर दौड़ने पर भी उनके घुँघरु बज नहीं रहे हैं।

जब इनकी सखियाँ इनके मुँह पर पानी डालती और बदले में शान के साथ ये उनके मुँह पर पानी उछालती हैं तो इनके लटकते हुए सीधे अलकों से लाल रंग की बूँदे टपकने लगती है। स्नान के कारण इनके बँधे केश बिखर गये हैं, मुख एवं स्तनों पर बनी हुई चित्ररेखाएँ धुल गयी हैं और मोतियों के कर्णफूल कानों से निकल गये हैं तथा सारा नेपथ्य अस्त व्यस्त हो गया है फिर भी ये कितनी सुन्दर और आकर्षक लग रही है। विशालाक्षी प्रमदायें हाथ में सोने की पिचकारी लेकर और उससे कुङ्कुमादि रंग छोड़ रही थीं तो उनके बीच कुश ऐसे लग रहे थे जैसे हिमालय पर से गेरु आदि धातुओं का झरना झर रहा हो—

एताः करोत्पीडित-वारिधारा दर्पात् सखीभिर्वदनेषु सक्ताः।
वक्रेतराग्रैरलकैस्तरूण्यश्चूर्णारुणान् वारिलवान् वमन्ति। वही ६६
उद्बन्धकेशच्युत-पत्रलेखो विश्लेषि-मुक्ताफल-पत्रवेष्टः।
मनोज्ञ एव प्रमदामुखानामम्भो-विहारा-कुलितोऽपिवेषः॥ ६७
वर्णोदकैः काञ्चन-शृङ्गमुक्तै स्तमायताक्ष्यः प्रणयादसिञ्चन्।
तथागतः सोऽतितरां वभासे सधातु-निष्यष्यन्द इवाद्रिराजः। ७०

और इस प्रकार यह वर्णन भी अनावश्यक शब्दच्छटा, अलंकारातिशय तथा कृत्रिमता से दूर इतना सहज और वास्तविक है कि पढ़ कर ऐसा लगता है जैसे हम स्वयं सरयू के तट पर खड़े होकर जलक्रीडा देख रहे है। कवि की यह बड़ी उपलब्धि है।

काल-स्थान-वर्णन

प्रभात वर्णन

कालिदास की कृतियों में स्वतन्त्र रूप से प्रभात का वर्णन उपलब्ध नहीं होता। शाकुन्तल में कण्व का शिष्य "प्रकाशं निर्गतस्तावदवलोकयामि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कियदवशिष्टं रजन्या इति" यह कहकर प्रभात वेला का वर्णन करता है और उसे दार्शनिकता दे देता है—

यांत्येकतोऽस्तशिखरं पति रोषधीनामाविष्कृतोऽरुण पुरस्सर एकतोऽर्कः।
तजो द्वयस्य युगपद् व्यसनोदयाभ्यां लोको नियम्यत इवात्म दशान्तरेषु।

शाकु. ४-२

एक ओर ओषधियों (वृक्ष वनस्पतियों) का स्वामी चन्द्र अस्ताचल को जा रहा है और दूसर ओर अरुण (लालिमा या सारथि) को आगे किये हुए सूर्य प्रकट हो रहा है। ये दोनों तेजोऽधिपति एक साथ व्यसन और उदय की स्थिति से गुजर रहे हैं। इन्हें देखकर सामान्य जन विपत्ति और सम्पत्ति काल में स्वयं पर नियन्त्रण रखते हैं। वे सोचते हैं कि कष्ट और सुख तो आते जाते ही हैं। देखिये न ! चन्द्र अन्तर्हित हुआ कि कुमुदिनी की शोभा गयी। अब उसकी श्री केवल स्मरण की वस्तु बनकर रह गयी। अव वह दृष्टि को विलोमित महीं करती। सचमुच इष्ट जन प्रवास को चले जाने पर अवला जनों को जो पीडा होती है वह अत्यन्त दुःखद होती है—

अन्तर्हिते शशिनि सैव कुमुद्वती मे
द्रुष्टिं न नन्दयति संस्मरणीय-शोभा।
इष्टप्रवास-जनितान्यवलाजनस्य
दुःखानि नूनमतिमात्र सुदुःसहानि। शाकु. ४-३

रघुवंश में वैतालिक प्रातःकाल के समय अज की स्तुति करते हुए प्रसंग-वश प्रभात का चित्र प्रस्तुत करते हैं। वे कहते हैं—वे भ्रमर जो रात्रि को कमल के उदर में बन्द हो गये थे, प्रभात वेला में कमल के भीतर ऐसे स्पन्दित हो जाते हैं जैसे नेत्रों के भीतर स्निग्ध पुतली।

प्रस्पन्दमान-परुषेतर तारमन्तश्चक्षुस्तव प्रचलित-भ्रमरं च पद्मम्।

रघु० ५-६८।

इस समय वायु शिथिल पुष्पों को उनके वृन्तों से नीचे गिरा रही है और फिर आगे बढ़कर सूर्य की किरणों से उद्बोधित कमलों का आलिंगन करती वह रही है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वृन्ताच्छ्लथं हरति पुष्पमनोकहानां
संसृज्यते सरसिजैररुणांशुभिन्नैः।
स्वाभाविकं परगुणेन विभाति वायुः
सौरभ्यमीप्सुरिव ते मुख मारुतस्य॥ रघु० ५-६९

परगुण ग्रहण वायु का स्वभाव है। वह सौरभ प्राप्त करने के लिये सब ओर घूम रहा है। धोकर साफ की हुई मुक्तामणियों के समान निर्मल ओस के बड़े बड़े कण वृक्षों के लाल पल्लवों पर पड़े हुए ऐसे लग रहे हैं जैसे रक्त ओष्ठों के बीच हास—

ताम्रोदरेषु पतितं तरुपल्लवेषु
निर्धौत हार गुलिकाविशदं हिमाम्भः।
आभाति लब्ध-परभागतयाऽधरोष्ठे
लीलास्मितं सदशनार्चिरिव त्वदीयम्॥ वही ५-७०

सूर्योदय के पूर्व ही अरुण उसके मार्ग को, तम हटाकर साफ कर देता है। प्रभात में हाथी भी उठ जाते हैं और उदित होते सूर्य की लाली से उनके दाँत कटे हुए पर्वत के गेरू के टुकड़ों से प्रतीत होते हैं और घोड़े भी उठकर चाटने के लिये सामने रखे हुए सैन्धव नमक के बड़े बड़े डेलों (खण्डों) को अपने मुख की भाफ से मलिन बना रहे हैं। पुष्पहार मुरझाकर ढीले पड़ रहे हैं। दीपकों की किरणों का प्रकाश स्वल्प परिवेष में बन्दी हो गया है और पंजर में वद्ध शुक मीठी मीठी बोली से सबको जगा रहा है—

वक्त्रोष्मणा मलिनयन्ति पुरोगतानि
लेह्यानि सैन्धवशिला-शकलानि वाहाः।
भवति मलिन-भक्तिर्म्लानपुष्पोपहारः
स्वकिरण-परिवेषोद्भेद-शून्याः प्रदीपाः।
अयमपि च गिरं नस्त्वत्प्रबोध प्रयुक्ता
मनुवदतिशुकस्त्वां मञ्जुवाक् पञ्जरस्थः। रघु. ५-७३, ७४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्ध्या वर्णन

पार्वती-संभोग के प्रसंग में कालिदास ने हिमालय के गन्धमादन प्रस्थ में अवतरित सन्ध्या का वर्णन किया है जो यत्र तत्र काल्पनिक होकर भी बहुत कुछ स्वाभाविक है। वह कहते हैं—

सीकर-व्यतिकरं मरीचिभिर्दूरयत्यवनते विवस्वति
इन्द्रचाप-परिवेष-शून्यतां निर्झरास्तव पितुर्व्रजन्त्यमी।

कुमार ८-३१

स्थान माह्निकमपास्य दन्तिनः सल्लकी-विटपभङ्ग-वासितम्
आविभात- चरणाय गृह्णते वारि वारिरुह-वद्ध-षट्पदम्।

वही ८-३३

पश्यपश्चिम-दिगन्तलम्बिना निर्मितं मितकथे विवस्वता॥
लब्धया प्रतिमया सरोऽम्भसां तापनीयमिव सेतुबन्धनम्।

वही ८-३४

पर्वत से गिरने वाले निर्झरों के जल पर जब सूर्य की किरणें पड़ती हैं तो उनमें अनेक इन्द्र धनुष खिले दिखते हैं। धीरे-धीरे सूर्य जब नीचे चला जाता है तो उसकी तिरछी किरणें इन्द्रधनुष की परिधि बना देती है। सूर्य के अस्तमन की ओर जाने पर वह परिधि नष्ट हो गयी है। हाथी अपने दिवा-विश्रान्ति के स्थान को छोड़कर अन्यन्त्र जा रहे हैं— उस स्थान को जो गजप्रिय सल्लकी वृक्ष के खण्डों से सुवासित था और जाते समय उस पुष्कर का जल जिसमें भ्रमरों से गुंजित कमल खिले हुए हैं, अगले दिन भर के लिये पयप्ति मात्रा में पिये जा रहे हैं। (हाथियों के विषय में यह प्रसिद्धि है कि वे सायं काल में एक बार इतना जल पी लेते हैं, जो अगले दिन भर के लिये पर्याप्त होता है)। पश्चिम की ओर ढलते हुए सूर्य ने लम्बायमान प्रतिबिम्बों से सरों में सुवर्ण का सेतु बना दिया है।

कुछ अन्य पशु-पक्षियों की सायंकालीन चर्या देखिये—

उत्तरन्ति विनिकीर्य पल्वलं गाढपङ्कमतिवाहितातपाः।
दंष्ट्रिणो वन-वराह-यूथपाः दष्टभङ्गुर विसाङ्कुराइव। वही ३५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एष वृक्ष शिखरे कृतास्पदो जातरुपरस-गौरमण्डलः ।
हीयमानमहरत्ययातपं पीवरोरु पिवतीव वर्हिणः । वही ३६

वद्ध कोशमपि तिष्ठतिक्षणं सावशेष-विवरं कुशेशयम् ।
षट्पदाय वसतिं ग्रहीष्यते प्रीतिपूर्वमिव दातुमन्तरम् ।। वही ३९

बड़ी बड़ी दंष्ट्राओं वाले महावराह दिनभर पोखरों में पड़े पड़े दिन बिता कर और उनके गाढ़े कीचड़ को उथल पुथल कर पोखरों से बाहर निकलते हुए ऐसे लग रहे हैं जैसे वे मृणालों के टेढ़े उलझे विसतन्तुओं को चबाकर निकल रहे हों । उनके दाँत विसतन्तुओं से लगते हैं । वृक्ष शिखर पर बैठा मयूर, लगता है दिनान्त के आतप को बैठा बैठा पी रहा है । कालिदास ने रघुवंश में भी सायं बेला का ऐसा ही चित्र प्रस्तुत किया है—

स पल्वलोत्तीर्ण-वराहयूथान्यावास-वृक्षोन्मुख-वर्हिणानि ।
ययौमृगाध्यासित-शाद्वलानि श्यामायमानानि वनानि पश्यन् ।

रघु. २-१७

कमल का कोश बन्द हो गया है फिर भी थोड़ा सा विवर शेष है । संभवतः यह इसमें आश्रय लेने के लिये आने वाले भ्रमरों को प्रीतिपूर्वक अवकाश देने के हेतु हैं । आतप रूप जल सूख जाने से यह आकाश-सरोवर अब सूखा सा लग रहा है जिससे पूर्वी भाग में तिमिर के कारण उसका कीचड़ स्पष्ट दिखायी देने लगा है । पश्चिम दिशा दूर चली गयी और गिनी चुनी बचीं किरणों वाले सूर्य से ऐसी लग रही हैं जैसे कोई कन्या केसरों वाले वन्धुजीव कुसुमों से अलंकृत होकर लगती हैं । सूर्य बिम्ब बन्धुजीवों सा और संक्षिप्त किरणें केसरों सी । सूर्य के अस्त होते ही सारा आकाश सो गया सा लगता है । तेज का स्वभाव ही ऐसा है कि वह बढ़ने पर जितने स्थान को प्रकाशित करता है डूबने पर उतने स्थान को अन्धकार में डुबो देता है । सन्ध्या भी पर्वत के शिखर पर रखे सूर्य के वन्दनीय शरीर के पीछे पीछे चल दी । ऐसा क्यों न हो ! जिसे सूर्य ने पहले आगे किया (सम्मानित किया) वह भला संकट या मृत्यु बेला में उसका अनुसरण क्यों न करे । और—

रक्तपीत-कपिशाः पयोमुचां कोटयः कुटिल-केशि भान्त्यमूः
द्रक्ष्यसि त्वमिति सान्ध्यवेलया वर्तिकाभिरिव साधुवर्तिताः ।

कु.सं ८-४५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिंहकेसर-सटासुभूभृता पल्लव-प्रसविषुद्रुमेषु च।

पश्य धातुशिखरेषु चात्मना संविभक्तमिव सान्ध्यमातपम्।

वही ४६

इस समय आकाश में स्थित बादलों के किनारे रक्त, पीत और कपिशरंग के दिखायी दे रहे हैं। ऐसा लगता है जैसे सान्ध्य वेला ने वर्तिकाओं (व्रुश) से ये रेखायें तुम्हारे देखने के लिये बनायी हैं जैसे कोई गृहपति अपनी संपत्ति को (मरण वेला में) परिवार जनों में बाँट देता है ऐसे ही अद्रिराज हिमालय ने अपना सान्ध्य आतप सिंहों की केसर सटाओं, पल्लव वाले वृक्षों और धातु शिखरों में बाँट दिया है। सन्ध्या के समय अन्त में धूप की लालिमा इन्हीं में शेष बच जाती है।

कालिदास के इस वर्णन में कल्पना की ऊँचाई है, कथन में मनोरम वक्रता और चारुता के साथ मौलिकता से भी इनकार नहीं किया ज़ा सकता किन्तु इनमें वह सहजता और यथार्थ नहीं है जो उनके ऋतु वर्णनों में पाया जाता है। ऐसा लगता है कि उन्हें गन्धमादन या गौरीशंकर शृंगों की वास्तविक जानकारी नहीं थी। संभवत: वह हिमालय के उच्च भागों पर गये ही नहीं थे। इसीलिये उन्होंने ऐसे वर्णनों में जो बातें कही हैं, वे अन्य ऐसे स्थानों के विषय में भी कही जा सकती है और सामान्य हैं।

रात्रि वर्णन

सन्ध्या गयी और यामिनी आ गयी। तेजस् को किसी नें ढँक लिया और चारों ओर अन्धकार का साम्राज्य हो गया। न ऊपर कुछ दिखता है, न नीचे। आगे पीछे दायें-बायें सर्वत्र अँधेरा ही अँधेरा। ऐसा लगता है जैसे सारा लोक तिमिर के जरायु से आवृत्त गर्भवास में ही स्थित है। देखिये तो स्वच्छ-मलिन, शुद्ध-दूषित स्थिर-चल, वक्र और ऋजु सभी को फैले हुए नभ ने एक समान कर डाला है। धिक्कार है दुष्टों-असज्जनों की उन्नति को जो भले बुरे को एक समान कर डालती हैं। देखिये—

यामिनी-दिवस-सन्धि सम्भवे तेजसि व्यवहिते सुमेरुणा।

एतदन्धतमसं निरर्गलं दिक्षु दीर्घनयने! विजृम्भते। कुमार. ८-५५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नोर्ध्वमीक्षण-गतिर्नचाप्यधो नाभितो न पुरतो न पृष्ठतः।
लोक एष तिमिरोल्ववेष्टितो गर्भवास इव वर्तते निशि।वही ५६
शुद्धमाविलमवस्थितं चलं वक्रमार्जव गुणान्वितं च यत्।
सर्वमेव तमसा समीकृतं धिङ् महत्त्वमसतां हतान्तरम्॥ वही ५७

चन्द्रोदय

भगवान् की दया है कि ऐसी अन्धेरभरी व्यवस्था को रोकने के लिये चन्द्र का उदय हो रहा है। देखिये न पूर्व दिशा का मुख केतकी के पराग से लिप्त सा दिखायी देने लगा। तारों से भरा आकाश अब मन्दराचल के पीछे छिपा भासित हो रहा है। जैसे कोई युवती दिन भर अपने मन में छुपाये हुए प्रणय सम्बन्धी अभिलाष को सखी के आग्रह करने उसे चुपचाप बतला देती है। अथवा कोई ईर्ष्या ग्रस्त स्त्री अपनी सपत्नी की गोप्य बातों को किसी से कह डालती है ऐसी ही रात्रि रुपा स्त्री दिग्रुपा सपत्नी के अङ्ग प्रदर्शन आदि रहस्यों को बतला रही है। अब रात्रि से प्रेरित होकर पूर्व दिशा भी पहले देखे हुए चन्द्रिकारुप स्मित वाले चन्द्र-मण्डल पर सारा रहस्य खोल रही है।

नूनमुन्नमति यज्वनां पतिः शार्वरस्य तमसो निषिद्धये।
पुण्डरीक-मुखि! पूर्व-दिङ्मुखं कैतकैरिव रजोभिरावृतम्।
वही ५८

मन्दरान्तरित-मूर्तिना निशा लक्ष्यते शशभृता सतारका। वही ५९
रुद्ध-निर्गमनमादिनक्षयात् पूर्वदृष्टतनु चन्द्रिकास्मितम्।
एतदुद्गिरति चन्द्रमण्डलं दिङ्-रहस्यमिव रात्रिनोदितम्।वही ८-६०

और अब कालिदास का सूक्ष्म-कल्पना वैभव देखिये। संस्कृत साहित्य में अन्यत्र शायद ही कहीं ऐसी अद्भुत सूझ दृष्टिगोचर होगी।

शक्यमोषधिपतेर्नवोदयाः कर्णपूर-रचनाकृते तव।
अप्रगल्भयवसूचि-कोमलाश्छेत्तुमग्रनख-संपुटैस्तव॥ वही ६२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा—

अङ्गुलीभिरिव केशसंचयं संनिगृह्यतिमिरं मरीचिभिः ।
कुड्मलीकृत-सरोजलोचनं चुम्बतीव रजनी-मुखं शशी । वही ६३

कल्पवृक्ष-शिखरेषु संप्रति प्रस्फुरद्भिरिव पश्य सुन्दरि ।
हारयष्टि-रचनामिवांशुभिः कर्तुमागत-कुतूहलः शशी । वही ६८

प्रिये पार्वति ! चन्द्रमा की अभी अभी पसरती किरणें यव (जौ) की कच्ची वालों की सूई जैसी नोकों के समान दिख रही है । अपने कर्णफूल बनाने के लिये तुम इन्हें अपने तीव्रधार वाले नखों से काट सकती हो । और जैसे कोई प्रणयी पति अपनी प्रिया की केश राशि को अपनी उँगलियों में फाँसकर (पकड़कर) उसका मुख ऊपर उठाकर उसे चूमता है ऐसे ही चन्द्रमा रात्रि की तिमिररुपी केश राशि को अपनी उँगलियों जैसी किरणों से पकड़कर चूम रहा है और जैसे प्रेमिका चुम्बन रस में मग्न होकर अपने नेत्र कमल भींच लेती है ऐसे ही रात्रि ने भी आनन्द में अपने कमल रूपी नेत्र- बन्द कर लिये हैं । शशी की किरणें कल्पवृक्षों की चोटी पर फैल रही हैं और धागों सी दिख रही है । वृक्षों पर फूल खिले हैं । ऐसा लग रहा है कि शशी इन धागों में हार पिरोना चाहता है ।

प्रथम श्लोक में 'यव- सूचि' शब्द का व्यवहार हुआ है । यव की वाल की नोकें गेहूँ की अपेक्षा अधिक तीखी होती है । सूचि के लिये यही प्रयोग श्रेष्ठतर था । इधर नखक्षत जब संभोग-व्यवहार का महत्त्वपूर्ण अंग था तो कामीजन (पुरुष और स्त्रियाँ) तदर्थ अपने नखों को विशेष रूप से पैना बनाये रखते थे । इसीलिये कवि ने 'अग्रनख' पद का प्रयोग किया है । द्वितीय श्लोक में मरीचियों और उँगलियों, तिमिर तथा अलकों और सरोजों तथा लोचनों का साम्य रूप तथा प्रभाव दोनों दृष्टियों से हृदयावर्जक है ।

धीरे धीरे चन्द्रमा की लालिमा छँट जाती है और उसका शुद्ध उज्वल रूप उभर आता है । निर्मल स्वभाव के व्यक्ति में काल के दोष से अल्पकालिक विकार भले ही आ जाय, वह देर तक नहीं टिक सकता । वही ६२ । चन्द्र की किरणें उन्नत स्थानों को प्रकाशित करने लगीं किन्तु निम्न स्थानों में निशा को तिमिरं ढँक रहा है । सचमुच उच्चात्मा उच्चस्थ होती है और नीचात्मा नीचस्थ (वही ६६) इस समय कल्पतरु पर लटका हुआ तुम्हारा अंशुक चाँदनी से एकाकार हो गया है और वायु के चलने से हिलने पर ही अलग से पहचाना जा सकता है । वही ७१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और—

शक्यमङ्गुलिभिरुत्थितैरधः शाखिनां पतितपुष्पपेशलैः ।

पत्रजर्जर-शशिप्रभालवैरेभिरुत्कचयितुं तवालकान् ।। वही ७२

और देखो पार्वति ! वृक्ष से टूटकर नीचे गिरे हुए, पुष्पवत् कोमल पत्तों के बीच छनकर आती चन्द्रिका को पुष्प समझकर और उसे उठाकर कोई सखी तुम्हारे केशों में गूँथ सकती है । इस प्रकार उपत्प्रेक्षाओं के माध्यम से कवि ने गन्धमादन पर जो सन्ध्या और चन्द्रोदय का वर्णन किया है वह विशिष्ट स्थान तक परिसीमित न होकर सार्वभौम और सार्वकालिक हो गया है ।

राजवेश्म में जब सन्ध्या अवतरित होती है तो उसका दृश्य ही अलग होता है । पक्षियों के बैठने के लिये बनी बाँस यष्टियों (बांस के खम्भों) पर बैठे पक्षी रात की नींद से अलसा रहे हैं । लगता है जैसे वे जीवित नहीं, बाँस दण्डों पर उत्कीर्ण हैं । वातायनों के निकलते धुएँ से बलभियाँ **(Terraces)** ऐसी लगती हैं जैसे उस पर कबूतर बैठे हों । कर्तव्यनिष्ठ रनिवास के कर्मचारी वलिपुष्पों से युक्त स्थानों में जलते हुए सन्ध्या के मंगल दीपों को रख रहे हैं ।

उत्कीर्णा इव वासयष्टिषु निशानिद्रालसा वर्हिणो,

धूपैर्जाल-विनिःसृतैर्वलभयः सन्दिग्ध-पारावताः ।

आचारप्रयतः सपुष्पवलिषु स्थानेषु ज्योतिष्मतीः

सन्ध्या-मङ्गल-दीपिका विभजते शुद्धान्त-वृद्धो जनः ।

विक्रमो. ३-२

चन्द्रमा के उदयाचल के पीछे आ जाने पर ही अर्थात् लोक के द्वारा दृश्यमान होने के पूर्व ही प्राची दिशा का अन्धकार दूर हट गया और वह ऐसी लगने लगी जैसी कोई युवती मुख पर बिखरी केशराशि को समेट लेने पर लगती है—

उदयगूढ-शशाङ्क-मरीचिभि स्तमसि दूरतरं प्रतिसारिते ।

अलक-संयमनादिव लोचने हरति मे हरिवाहनदिङ् मुखम् ।

वही ३-६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विक्रमोर्वशीयम् में उदयोन्मुख चन्द्र की स्तुति भी मिलती है—

ऐतरेय ब्राह्मण में कहा है कि कृष्ण पक्ष में चन्द्र की एक कला प्रतिदिन क्षीण होकर आदित्य में अनुप्रविष्ट होती जाती है और अमावस्या के दिन पूर्णतया उसमें प्रविष्ट हो जाती है। तब चन्द्र किसी को दिखायी नहीं देता—"चन्द्रमा वा अमावास्यायामादित्यमनुप्रविशति। सोन्तर्धीयते तं न निर्जानन्तीति"। अमावास्या में दर्श होम का विधान है। इस प्रकार कहा जाता है कि चन्द्र सत्क्रिया के लिये सूर्य में आविष्ट होता है और अपनी सुधा से वह पितरों और देवों को तृप्त करता है। मान्यता है कि देव और पितर कृष्णपक्ष में चन्द्र की एक एक कला का पान करते हैं। वह जो रात्रि को घनीभूत तम का विनाश करता है और जिसकी आत्मा या कला शिव के जटा जूट पर स्थित है ऐसे चन्द्र को सब प्रणाम करते हैं—

रविमाविशते सतां क्रियायै सुधया तर्पयते सुरान् पितॄंश्च।

तमसां निशि मूर्च्छतां निहन्त्रे हरचूडा-निहितात्मने नमस्ते।

वही ३-७

सन्ध्या और चन्द्र का प्रसंग आया तो चन्द्रग्रहण की स्मृति हो आना स्वाभाविक था। कवि की दृष्टि इस ओर गयी और उसने दुष्यन्त की विस्मृति के नष्ट हो जाने और फलतः उसके द्वारा शकुन्तला के संयोग के लिये उसे उपमान बना डाला—

स्मृतिभिन्न- मोहतमसो दिष्ट्या प्रमुखेस्थितासि मे सुमुखि।

उपरागान्ते शशिनः समुपगता रोहिणी योगम्॥ शाकु. ७-२२

उत्तर- लोक वर्णन

कालिदास का संसार अद्भुत है। उनके पात्र जब जहाँ चाहते हैं, चले जाते हैं। उनके लिये पर्वत, समुद्र और अरण्यानी वाधक नहीं बनते। उनके राजाओं का रथ मरुत्सख मेघ के समान यथेच्छ आ जा सकता है—

वसिष्ठ-मन्त्रोक्षणजात् प्रभावादुदन्वदाकाश-महीधरेषु।

मरुत्सखस्येव वलाहकस्य गतिर्विजघ्ने नहि तद्रथस्य। रघु. ५-२७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऊर्ध्वलोक वर्णन

रघु यदि ऐसे रथ पर बैठकर कुबेर के प्रति अभियान कर सकता है वो दुष्यन्त मातलि के साथ रथ पर आरुढ़ होकर परिवह वायु के मार्ग से द्युलोक तक की यात्रा कर सकता है । वायु के आवह, प्रवह आदि जो सप्तस्कन्ध है उनमें परिवह वायुमण्डल के मार्ग से होकर उसका रथ इन्द्र लोक से नीचे उतरता है और प्रवह नामक वायु के मार्ग से होता हुआ मेघ लोक पहुँचता है जहाँ उसके पहियों की नेमि सीकरों से आर्द्र हो जाती है । अरों के बीच से होकर चातक उड़ते हैं और अश्व विद्युत् की प्रभा से रञ्जित दिखते हैं—

अयमर-विवरेभ्यश्चातकैर्निष्पतद्भि

र्हरिभिरचिरभासां तेजसा चानुलिप्तैः ।

गतमुपरि घनानां वारिगर्भोदराणां

पिशुनयति रथस्ते सीकर-क्लिन्न-नेमिः । शाकु. ७-७

किंपुरुषवर्ष और मर्यादा पर्वत

और फिर वहाँ से नीचे आकर रथ किंपुरुष वर्ष में हेमकूट नामक मर्यादा पर्वत पर रुकता है । यह पर्वत सान्ध्य मेघ के समान द्रवित सुवर्ण मण्डित शिखरों वाला है । पूर्वापर समुद्रों के मध्य में स्थित किंपुरुषवर्ष तपः सिद्धि के बहुत अनुकूल था । भागवत में कहा है कि इलावृत के दक्षिण में निषध हेमकूट और हिमालय ये तीन पर्वत हरिवर्ष, किंपुरुष वर्ष और भारत वर्ष के मर्यादा गिरि है—"दक्षिणेनेलावृतं निषधो हेमकूटो हिमालय इति त्रयो हरिवर्ष-किंपुरुष भारतानां मर्यादा- गिरयः" विष्णुपुराण की भी यही मान्यता है—

हिमवान् हेमकूटश्च निषधस्तस्य दक्षिणे

नीलः श्वेतश्च भृङ्गीच, उत्तरे वर्ष-पर्वताः ।

भारतं प्रथमं वर्षं ततः किम्पुरुषं स्मृतम् ।

हरिवर्षं तथैवान्यन्मेरोर्दक्षितोद्विज ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हेमकूट

कालिदास के तीसरे नायक पुरुरवा का भी रथ अम्बर तल में दौड़ता है। रक्षार्थ पुकारती हुई अप्सरायें कहती हैं—है कोई जो सुर-पक्ष का हो और जो अम्बर में जो सकता हो। यह सुनकर सूर्योपस्थान से लौटता हुआ आकाशगामी पुरुरवा अप्सराओं के कहने से अपना रथ ऐशानी दिशा की ओर मोड़ देता है और अप्सराओं से हेमकूट के शिखर पर प्रतीक्षा करने को कहता है। कवि ने प्रत्यक्ष दर्शी के समान दुष्यन्त और पुरुरवा के अम्बरगामीरथ की गति का वर्णन किया है—

> **अग्रेयान्ति रथस्य रेणु-पदवीं चूर्णीभवन्तो घनाः**
>
> **चक्रभ्रान्तिररान्तरेषु वितनोत्यन्यामिवारावलीम्।**
>
> **चित्रारम्भ-विनिश्चलं हरिशिरस्यायामवच्चामरं**
>
> **यन्मध्ये समवस्थितोध्वजपटः प्रान्ते च वेगानिलात्।** विक्रमो. १-५

मेघमार्ग में रथ अत्यन्त वेग से दौड़ रहा है जिससे मेघ चूर्ण चूर्ण होकर रेणु बन गये हैं। चक्रों के अर इतनी तेजी से दौड़ने के कारण दोहरे से दिख रहे हैं। उनके बीच का रिक्त भाग काष्ठ- पूरित लग रहा है। बीच का अन्तराल दृष्टि में नहीं आता। अश्वों के सिर पर जो चामर (कलँगी) बँधा हुआ है वह चित्र सा निश्चल प्रतीत होता है। और रथ के एक किनारे बँधा हुआ ध्वज पट उड़कर रथ के मध्य में दिखायी दे रहा है।

आकाशगामी रथ

और जब हेमकूट पर अवतरित होता दुष्यन्त का (इन्द्र- प्रदत्त) रथ मेघ मार्ग से नीचे आता है तो भी दृश्य अन्त्यन्त मनोरम होता है—

> **शैलानामवरोहतीव शिखरादुन्मज्जतां मेदिनी**
> **पर्णाभ्यन्तर लीनतां विजहति स्कन्धोदयात् पादपाः।**
>
> **संधानं तनुभाग-नष्टसलिल-व्यक्त्या व्रजन्त्यापगाः**
> **केनाप्युक्षिपतेव पश्य भुवनं मत्पार्श्वमानीयते॥** शाकु. ७-८
>
> **उपोढ-शब्दा न रथाङ्गनेमयः प्रवर्तमानं न च दृश्यते रजः।**
> **अभूतलस्पर्शतया निरुन्द्धतिस्तवावतीर्णोऽपि रथो न लक्ष्यते।**
>
> शाकु० ७-१०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीव्रता के साथ रथ के मेघ मार्ग से नीचे उतरने पर शैल शिखर ऊपर उठते और पृथिवी नीचे धँसती हुई सी लगती है। जिन वृक्षों के केवल पत्रपुञ्ज मात्र दिखायी दे रहे थे अब उनके तने और शाखायें दृष्टि गोचर होने लगी हैं। दूर होने के कारण पहले जिन नदियों में जल नहीं दिखायी पड़ रहा था अब उनका विस्तार प्रत्यक्ष होने लगा है और ऐसा आभास हो रहा है जैसे किसी ने पृथ्वी को उठाकर ऊपर की ओर मेरे पास तक फेंक दिया है।

रथ के पहियों की नेमि भूमि पर नहीं चल रही है। उसमें शब्द भी नहीं होता और इसीलिये उसके चलने की प्रतीति नहीं हो पा रही। भूमि पर न चलने से धूल भी नहीं उड़ती। और इसीलिये रोक लेने पर भी यह नहीं ज्ञात हो सका कि रथ रुक गया है। रथ रुकने के लक्षण हैं नेमि- शब्द का बन्द हो जाना, धूल का पीछे टूट जाना और गति के निरोध की प्रतीति। ये तीनों यहाँ नहीं है। इसलिये पता नहीं चल पाया कि रथ रुक गया है।

ये श्लोक कालिदास की सूक्ष्म कल्यना तथा निरीक्षण शक्ति के उदाहरण है। ऐसी ही प्रतिभा का परिचय कवि ने शाकुन्तल के प्रारम्भ में दुष्यन्त के रथ की गति का वर्णन करते हुए दिया है—

मुक्तेषु रश्मिषु निरायत- पूर्वकाया,
निष्कम्पचामर-शिखा निभृतोर्ध्वकर्णाः
आत्मोद्धतैरपि रजोभिरलङ्घनीया
धावन्त्यमी मृगजवाक्षमयेव रथ्याः। शाकु. १-८

तथा—

यदालोके सूक्ष्मं व्रजति सहसा तद्विपुलतां
यदर्धे विच्छिन्नं भवति कृत-सन्धानमिव तत्।
प्रकृत्या यद्वक्रं तदपि समरेखं नयनयोः।
न मे दूरे किंचित् क्षणमपि न पार्श्वे रथजवात्। शाकु. १-९

लगाम ढीली कर देने पर रथ के अश्व मानो मृगों की गति से स्पर्धा के कारण अपने शरीर के अगले भाग को लम्बा कर भाग रहे हैं। इनके सिरों पर बँधे चामरों का अग्रभाग बिलकुल निश्चल है। कानों को अत्यन्त ऊपर की ओर निश्चल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किये ये इतनी तेजी से दौड़ रहे हैं कि इनके खुरों से उठी धूल भी उड़कर इनसे आगे नहीं निकल पाती ।

रथ का वेग इतना अधिक है कि जो वस्तु प्रथम दृष्टि में सूक्ष्म लगती है वह क्षणभर में बड़ी दिखने लगती है । जो कुछ अभी बीच में कटा या अलग प्रतीत होता है वह तुरन्त जुड़ा हुआ दृष्टि गोचर होता है और गिरितट नदी कूल आदि प्रथमक्षण जो कुछ में टेढा प्रतीत होता है वह दूसरे ही क्षण में सीधा दिखायी देने लगता है । रथ के वेग के कारण न कुछ पास रह गया है, न दूर ।

विलाप-वर्णन

कवि एवं नाटककार की दृष्टि से महाकवि कालिदास का नाम न केवल भारतीय अपितु विश्व के साहित्यकारों में श्रेष्ठ माना जाता है । शृंगार-माधुरी, प्रासादिकता एवं उपमाओं की हृदय-ग्राहकता के कारण वे शताब्दियों से साहित्य-प्रेमियों के कण्ठहार रहे हैं । उनकी काव्यत्रयी में मेघदूत के कई हिन्दी अनुवाद हुए हैं और अनेक काव्यग्रन्थ या तो पूर्णत: उसको आधार मानकर लिखे गये हैं या उससे प्रभावित हैं । कुमारसम्भव यद्यपि कालिदास के कवि-जीवन के उषःकाल की रचना है और इसलिए उसमें विवेक-जन्य सन्तुलितता पर्याप्त मात्रा में नहीं आने पायी, तथापि कुमारसम्भव में उषा की अनुरागरक्तिमा, परिमलवाही पवन-की मदिरता और ओस की अवदातता अन्य काव्यों की अपेक्षा अधिक हैं । रधुवंश कवि के प्रौढ़ जीवन क़ी कृति है । इस लिए उसमें कुमारसम्भव की मादकता और सरलता भले न मिले, अनुभव-गाम्भीर्य एवं स्थैर्य-जन्य प्रसाद-परितृप्ति की कमी नहीं ।

रधुवंश एवं कुमारसम्भव में यों तो अनेक स्वतन्त्र एवं प्रसंगोपात्त मनोरम वर्णन हैं किन्तु रघुवंश के अष्टम और कुमारसम्भव के चुतर्थ सर्ग के अन्तर्गत अज-विलाप एवं रति-विलाप को साहित्यालोचकों ने विशेष महत्त्व दिया है और इसके कारण हैं —प्रथम तो करूण रस में समवेदना जाग्रत करने की जो शक्ति है, वह अन्य किसी रस में नहीं । प्रवाद के अनुसार, काव्य की उत्पत्ति ही करूण रस से हुई है । भवभूति के राम के विलाप की सहानुभूति में (अपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम्) शिलाएँ रोती थीं और वज्र की छाती फटी जाती थी । श्रृंगार रस में विप्रलम्भ पक्ष ही कवियों ने प्रायः ग्रहण किया है और उस पर सर्वाधिक एवं सुन्दर लिखा भी गया है । विश्व के सर्वश्रेष्ठ काव्य करूण-प्रधान हैं । पीड़ा के क्षणों की लम्बाई आनन्द के क्षणों की अपेक्षा अधिक होने के कारण वेदना के चित्रण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का प्रभाव भी अधिक कालस्थायी होता है। हम सब जड़-जंगम स्तनन्धय के समान वेदना की झीनी शुभ्र चादर में लिपटे नियति देवी के अंक में विश्राम-लाभ करते हैं। इसीलिए करूण की संक्रमण शक्ति अन्य रसों की अपेक्षा अधिक है। स्वंय रति एवं अज के विलाप वर्णन इसके साक्षी हैं। रति विलाप करती है, तो स्थली समदुःखा हो जाती है :—

विललाप विकीर्ण-मूर्धजा समदुःखामिव कुर्वती स्थलीम्।

कुमार ४-४

और महाराज अज विलाप करते है, तो सरोवर-स्थित पंछी भी उनके साथ आँसू बहाने लगते हैं :—

विहगाः कमलाकरालयाः समदुःखा इव तत्र चुक्रुशुः।

रघु० ८-३९

तथा

अकरोत् पृथिवीरूहानपि सृत-शाखा-रस-बाष्प-दूषितान्।वही ७०

और इसका कारण कवि ने स्वंय ही रघुवंश में दिया है :—

अभितप्तमयोऽपि मार्दवं भजते कैव कथा शरीरिषु। वही ४३

तपने पर तो लोहा भी मुलायम हो जाता है, फिर प्राणियों के मन का तो कहना ही क्या ? काव्य या नाटक में जिन पात्रों में हमारी वृत्ति रमती है और जिनके चरित्र में हम अपने अस्पष्ट रूप की स्पष्ट प्रतिच्छवि देखने में समर्थ हो पाते हैं, उनके निधन या पीड़ा के क्षणों में तो हमारा विचलित हो उठना स्वाभाविक है ही, खल-पात्रों का अवसान भी मन में खेद भरता है। महाभारत का पाण्डवनिर्वेद इसका प्रमाण है। स्वंय रघुवंश में राम ताडका-वध करते हैं। कवि ने यहाँ करूण-श्रृंगार का संयुक्त वर्णन किया है। शास्त्रीय और मनोवैज्ञनिक दृष्टि से यह काव्य-दोष है। यही नहीं, कवि ने वर्णन में करूण के ऊपर श्रृंगार को प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न किया, फिर भी पीड़ा आवरण को फाड़कर बाहर आ गयी है। पाठक श्रृंगार को भूलकर खेद में निमग्न हो जाता है। देखिये :

राम-मन्मथ-शरेण ताडिता दुःसहेन हृदये निशाचरी।
गन्धवद्रुधिर-चन्दनोक्षिता जीवितेश-वसतिं जगाम सा॥

रघु. ११-२०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक बात और; पीड़ा के क्षणों में हम अपने उपाधि-विरहित प्रकृत रूप में होते हैं। हम वेदना माता के अंक में निरम्बर शिशु के समान राजा-रकं, मूर्ख-ज्ञानी और बाल-वृद्ध के भेद को भूलकर शयन करते हैं। भवभूति के राम और रघुवंश की सीता राजा या रानी नहीं हैं। जब सीता कहती हैं—

वाच्यस्त्वया मद्वचनात् स राजा वहनौ विशुद्धामपि यत् समक्षम्।

मां लोकवाद-श्रवणादहासीः श्रुतस्य किं तत्सदृशं कुलस्य?

रघु० १४-६१

या हनुमन्नाटक में राम कहते हैं—

हारो नारोपितः कण्ठे मया विश्लेष-भीरूणा।

इदानीमन्तरे जाताः पर्वताः सरितो द्रुमाः ॥

तो सीता एक साधारण नागरिक की भाँति न्याय-भिक्षा माँगती और राम एक नियति-वञ्चित साधारण जन के समान अश्रुपात करते हमारे सामने आते हैं। अतएव हमारी अश्रुजलाञ्जलि के अधिकारी बन पाते हैं, अन्यथा रस का साधारणीकरण ही सम्भव न होता। यही बात अज और रति के विलाप के सम्बन्ध में है। अज अपनी पत्नी इन्दुमती के साथ उपवन में विहार करते हैं कि नारद देव-सुमनों की माला से मण्डित वल्लकी लिये आकाश-मार्ग से दक्षिण-सागर-तट पर स्थित गोकर्ण महादेव को संगीत से प्रसन्न करने निकलते हैं। पवन माला को उड़ा ले जाता है और माला इन्दुमती के वक्ष पर जा गिरती है। माला के स्पर्श के साथ इन्दुमती निर्जीव होकर अज पर गिर जाती है और अज इस अप्रत्याशित शरीरपात के धक्के से स्वयं भी भूमि पर गिर जाते हैं। अज की यह विवशता, असहायावस्था हमारे मन में करूणा का आविर्भाव करती है।

वपुषा करणोज्झितेन सा निपतन्ती पतिमप्यपातयत्। रघु. ८.३२

और यही स्थिति रति की है। काम अपने स्वामी इन्द्र के संकेत पर शिव की समाधि को भंग करने जाता है। समाधि-भंग की योजना परार्थ ही है, पर शिव का शान्ति-भंग ? फिर क्या था ?

क्रोधं प्रभो संहर संहरेति यावद्गिरः खे मरूतां चरन्ति।
तावत्स वह्निर्भवनेत्रजन्मा भस्मावशेषं मदनं चकार॥ कुमार. ३.७२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवता बेचारे चिल्लाते ही रह गये 'हे प्रभो, क्रोध शान्त कीजिये—शान्त कीजिये' कि शिव के नेत्रों से निकलकर अग्नि ने काम देव को भस्मसात् कर डाला। पार्वती मारे डर के घर में जा घुसीं और इधर रति ? वह पति की दयनीय अवस्था देखकर मूर्छित हो गयी। जब प्रबोध हुआ तो—

अथ सा पुनरेव विह्वला वसुधालिङ्गन-धूसरस्तनी।
विललाप विकीर्ण-मूर्धजा समदुःखामिवकुर्वती स्थलीम्॥

कुमार. ४-४

रति पृथ्वी पर लोट-लोटकर बाल बिखराये और वक्षःस्थल को धूल से भरे विलाप करने लगी। बाद में पति के मित्र मधु के आने पर उसका भावा-वेश तीव्रतर हो उठा और वह छाती पीट-पीट कर रोने लगी।

स्तन-संवाधमुरो जघान च।

अज ठीक उसी प्रकार भूमि में गिर पड़ते हैं, जैसे माया-भ्रान्त हनुमान के मुख से इन्द्रजित् द्वारा सीता-वध का समाचार पाकर राम गिर जाते हैं। वाल्मीकि ने लिखा है:—

निपपात तदा भूमौ छिन्नमूल इव द्रुमः।

किन्तु बाद में लक्ष्मण और विभीषण द्वारा समझाये-बुझाये जाने पर फिर कर्तव्य की ओर अग्रसर होते हैं। अज भी वशिष्ठ के शिष्यों के उपदेश के पश्चात् यह जानकर कि इन्दुमती पूर्व जन्म में अप्सरा थी और इन्द्र के द्वारा तृणबिन्दु नामक ऋषि के तप भंग के लिए प्रेरित की जाने पर ऋषि के शाप से मानवी के रूप में अवतीण हुई और शाप के देवपुष्पस्पर्शावधि होने के कारण माल्य-स्पर्श के साथ पुरातन योनि को प्राप्त हुई, धैर्य धारण करते हैं और काम में लग जाते हैं। फिर भी शोक-शंकु उनके शरीर को पीड़ित करता ही रहता है और अनशनादि उपायों से थोड़े ही दिनों बाद शरीर से मुक्ति प्राप्त कर लेते हैं।

रति पति-विरह क्री वेदना को सहने में असमर्थ है और वह पतिवर्त्म का अनुसरण करने का प्रयत्न करती है। चिता सवाँरती है यद्यपि चिता पर चढ़ते समय भी एक शल्य उसके मन में चुभता ही रहता है। रति और काम आदर्श पति-पत्नी और प्रेमी। फिर भला एक के बिना दूसरा एक क्षण भी जीवित रह सका, यह क्या साधारण कलंक की बात हुई?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मदनेन बिनाकृता रतिः क्षणमात्रं किल जीवितेति मे।

वचनीयमिदं व्यवस्थितं रमण त्वामनुयामि यद्यपि। कुमार. ४-२१

इसी बीच आकाशवाणी होती है जिससे रति को अपने पति की मृत्यु का कारण ज्ञात होता है। काम को शाप था प्रजापति का। सरस्वती, (अपनी पुत्री) के प्रति अस्वाभाविक आसक्ति उत्पन्न होने से क्रुद्ध होकर प्रजापति ने काम को यह शाप दिया था जिसकी समाप्ति शिव-परिणय के पश्चात् होने वाली थी। काम का अशरीरी पुनर्जीवन पार्वती-परिणय के साथ हुआ और यहीं से उसकी अनंग संज्ञा हुई। इस प्रकार ये कथानक दैवी चमत्कार पर आधारित हैं। यद्यपि प्रथम की कथा यथातथ और द्वितीय की रूपक में वर्णित है। काम और रति इन दो मानसिक वृत्तियों को ही विग्रह दे-देकर कथानक खड़ा किया गया है।

ऐसा मालूम होता है, पति के साथ चिता पर जल जाने की प्रथा इस देश में बहुत प्राचीन है। यद्यपि सामाजिक नियम के रूप में उसका प्रचार प्राचीन काल में नहीं था। स्नेहाधिक्य ही उसमें कारण रहा होगा। वाल्मीकि-रामायण में कौशल्या कहती है--

साहमद्यैव दिष्टान्तं गमिष्यामि पतिव्रता,

इदं शरीरमालिङ्ग्य प्रवेक्ष्यामि हुताशनम्।

संस्कृत-साहित्य में पत्नी-वियोग के अनेक प्रसंग आये हैं, पर उनमें भावुकता-वश भी कहीं सहमरण की चर्चा नहीं है। रघुवंश में कहा है कि अज प्राण-लोभ से नहीं, निन्दा-भय से सहमरण से निवृत्त हुए। इससे इतना तो स्पष्ट है कि सहमरण जहाँ स्त्री के लिए गौरव की वस्तु मानी जाती थी, वहाँ पुरूष के लिए निन्दा की। रति ने कहा है—

शशिना सह याति कौमुदी सह मेघेन तडित् प्रलीयते,

प्रमदाः पतिवर्त्मगा इति प्रतिपन्नं हि बिचेतनैरपि। कुमार. ४-३३

फिर भी कालिदास ने यथाशक्ति नारी के साथ न्याय करने की चेष्टा की है। यों उनके समस्त-ग्रन्थ इसके प्रमाण है; पर अज-विलाप तो विशेषतः उल्लेखनीय है। एक तो विशुद्ध करूण रस के वर्णन में अन्य किसी कवि ने नायक से इतने आँसू नहीं बहवाये हैं। आदिकवि ने अवश्य ऐसे स्थलों को न्यायपूर्वक छुआ है। दूसरे अन्य किसी नायक के अश्रुओं में इतनी भावानुभूति और सात्त्विकता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं है । कालिदास इस प्रसंग में स्नेह की मार्मिकता को पहचान सके हैं । यों स्वयं कलिदास भी अन्य स्थलों पर प्रेम की इतनी ऊँचाई तक नहीं उठ पाये । दूसरे, उन्होंने अज को सहमरण से परावृत करके भी सहमरण से अधिक व्यथामय मनःस्थिति में चित्रित किया है और इन्दुमती-वियोग को ही उनकी असमय मृत्यु का कारण बताया है । इन्दुमती की मृत्यु के पश्चात् अज केवल आठ वर्ष जीवित रहे और वे आठ वर्ष भी उन्होंने स्वप्न-दर्शन या प्रतिकृति-दर्शन से व्यतीत किये—

सादृश्य-प्रतिकृति-दर्शनैः प्रियायाः
स्वप्नेषु क्षणिक-समागमोत्सवैश्च । रघु. ८-९२

और मृत्यु के समय इन्दुमती -मिलन की कल्पना उन्हें शीघ्रता की ओर ही प्रेरित करती रही—

लाभं प्रियानुगमने त्वरया स मेने ।

इसीलिए वे प्रायोपवेशन भी करते हैं—

रोगोपसृष्ट-तनु-दुर्वसतिं मुमुक्षुः प्रायोपवेशनमतिर्नृपतिर्बभूव ।
रघु. ८-९४

स्नेह की इस उत्कट अवस्था में जब कि आसक्ति समर्पण का रूप ले चुकती है, प्रिय का वियोग जीवन को सूनेपन से भर देता है और फिर उस व्यक्ति का वियोग जिसके लिए अज ने कहा है—

अहतस्य विलोभनान्तरैर्मम सर्वे विषयास्त्वदाश्रयाः । रघु. ८-६९

अज के यौवन का यह उषःकाल न था । प्रौढ़वस्था में वासनाएँ गौण स्थान ले लेती हैं और स्नेह रूप से हटकर भाव में केन्द्रित हो जाता है । ऐसी स्थिति में प्रियजन का वियोग क्या नहीं छीन लेता ।

गृहिणी सचिवः सखीमिथः प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ ।
करूणा-विमुखेन मृत्युना हरता त्वां वद किं न मे हृतम् ?
रघु. ८-६७

स्नेह की व्यापकता में प्रिय की सौन्दर्य-विभूति प्रकृति में यत्र-तत्र बिखरी दिखायी देती है । सीताहरण के पश्चात् वियोग-व्याकुलता के क्षणों में स्वयं राम की इस स्थिति का चित्रण गोस्वामीजी ने किय है :—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लछमन समुझाये बहुभाँती-पूछत चले लतातरू पाँती।
हे खग, मृग, हे मधुकर श्रेनी–तुम देखीं सीता मृगनैनी ?
खंजन, सुक, कपोत मृग मीना-मधुप निकर कोकिला प्रवीना।
कुँद-कली दाड़िम दामिनी-कमल सरद ससि अहि-भामिनी।
वरून पास मनोजधनु हंसा–गज केहरि निज सुनत प्रसंसा।
श्रीफल कनककदलिडनाहीं–नेकु न संक सकुच मनमाहीं।

कहने की आवश्यकता नहीं कि गोस्वामीजी का यह वर्णन परम्परा-युक्त है जिसमें रूपकातिशयोक्ति के सहारे सीता के सौन्दर्य-वर्णन का प्रयत्न किया गया है। कालिदास का रूप-वर्णन भी कुछ प्रसिद्ध उपमानों के सहारे टिका हैं, पर उसमें भावना-सौकुमार्य है, अतः मनोग्राहक बन पड़ा है। अज की कल्पना है कि इन्दुमती उसके मनोरंजन के लिए ही अपना भाषित कोकिल को, मदालस गति कलहंसी को, चल चितवन मृगी को और विभ्रम पवन प्रकम्पित लताओं को दे गयी, पर वह भूल गयी कि बिना प्रिया की उपस्थिति के उसकी स्मारक वस्तुएँ उलटी पीड़ा-वर्धक होती हैं। देखिये :—

कलमन्यभृतासु भाषितं कलहंसीषु मदालसं गतम्।
पृषतीषुविलोलमीक्षितं पवनाधूत-लतासु विभ्रमाः ॥
त्रिदिवोत्सुकयाप्यवेक्ष्य मां निहिताः सत्यममी गुणास्त्वया।
विरहे तव मे गुरूव्यथं हृदयं नत्ववलम्बितुं क्षमाः ॥

रघु. ८-५९, ६७

रति भी अपने पति की स्मारक वस्तु-चेष्टाओं पर दृष्टि डालती है और कह उठती है:—

हरितारूण-चारू बन्धनः कलपुंस्कोकिल-शब्द-सूचितः।
वद सम्प्रति कस्य बाणतां नव-चूत-प्रसवो गमिष्यति ?
अलि-पङ्क्तिरनेकशस्त्वया गुण-कृत्ये धनुषो नियोजिता।
विरूतैः करूणस्वनैरियं गुरू-शोकामनुरोदितीव माम्।
प्रतिपद्य मनोहरं वपुः पुनरप्यादिश तावदुत्थितः
रति-दूतिपदेषु कोकिलां मधुरालापनिसर्ग-पण्डिताम्।

कुमार. ४-१४ से १६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरे और लालवृन्त पर विकसित, कोयल के मधुर गीत का प्रेरक यह आम का नया बौर अब किसके काम आयेगा ? कौन इसका प्रयोग बाण के स्थान पर करेगा ? तुमने इन भ्रमरों से अनेक बार अपने धनुष की प्रत्यंचा का काम लिया है। आज मेरे साथ-साथ यह भ्रमरावली भी तुम्हें यादकर रो रही है। देखो, यह कोयल मीठे-मीठे बोल बोलने में कितनी चतुर है ! तुम इससे स्नेह-सन्देश के वहन का काम लेते थे। आज यह बेकार बैठी है। उठो, फिर सुन्दर शरीर धारण करो और इसे रति-सन्देश पहुँचाने का आदेश दो। इस प्रकार, न जाने कितनी वस्तुएँ, कितने व्यापार मन पर बोझ रखते आते हैं।

मिथुनं परिकल्पितं त्वया सहकारः फलिनीच नन्विमौ।

अविधाय विवाह-सत्क्रियामनयोर्गम्यत इत्यसाम्प्रतम् ॥

रघु. ८-६१

भला यह भी उचित है कि माता सन्तान को पालपोसकर बड़ा करे और उनकी सप्तपदी देखे बिना परलोक को प्रयाण कर दे। कैसी दयनीय स्थिति होती है ऐसे बच्चों की ! फिर तुमने भी तो इस आम्र और प्रियंगु लता को अपने हाथों लगाया, वर्धित किया, सन्तान के सामान इनकी चिन्ता की। क्या इनका परिणय किये बिना चल देना उचित है ? ऐसा लगता है कि आम्र और लता का संयोग प्राचीन काल में बड़ा उत्सव- कृत्य माना जाता था। देखिये अभिज्ञान शाकुन्तल में आश्रम से विदा होते समय शकुन्तला की उक्ति :—

ताद लतावहिणिअं वणजोसिणिं दाव आमन्तइस्सम्

और उसके प्रत्युत्तर में महर्षि कण्व का कथन—

चूतेन संश्रितवती नवमालिकेय

मस्यामहं त्वयिच सम्प्रति वीतचिन्तः।

मानव और प्रकृति की एकात्मकता का कैसा मनोरम था वह युग, जब मानव वृक्ष, लता, वीरूध खग, मृग, मेघ, झरनों से साक्षात् सम्पर्क स्थापित कर समसुखदुःखिता का अनुभव करता था। जब लताएँ उसके वियोग में अश्रुपात करतीं और आनन्दोत्सव के क्षणों में पुष्पों के उपहार से उसका अभिनन्दन करती थीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्दुमती के आकस्मिक निधन ने अज को और भी किंकर्तव्य-विमूढ़ बना दिया है । अप्रत्याशित वज्रपात से मूर्छित होकर जब वह चेतनता प्राप्त करता है, तो उसे प्रति-निवृत्त चेतना पर क्षोभ ही होता है :—

दयितां यदि तावदन्वगाद्विनिवृत्तं किमिदं तया विना । रघु. ८-५०

कभी उसे आश्चर्य होता है :—

मनसापि न विप्रियं मया कृतपूर्वं तव किं जहासि माम् ?
रघु. ८-५२

मैंने आज तक कभी मन से भी कोई काम तुम्हारी इच्छा के विरूद्ध नहीं किया, फिर मुझे छोड़ कर क्यों जा रही हो ? इतना ही नहीं :—

कृतवत्यसि नावधीरणामपराद्धेऽपि यदा चिरं मयि ।
कथमेक पदे निरागसं जनमाभाष्यमिमं न मन्यसे ! रघु. ८-४८

तुमने तो कभी मेरे अपराध करने पर भी बुरा नहीं माना, फिर आज सहसा बिना अपराध ही रूष्ट होकर मुझे बात करने योग्य भी क्यों नहीं समझतीं ?

रति की उक्ति-धारा भी भावना के उद्रेक में अज के समान ही बहती चलती है:—

कृतवानसि विप्रियं न मे प्रतिकूलं न च ते मया कृतम्,
किमकारणमेव दर्शनं विलपन्त्यै रतये न दीयते । रघु. ८-५२

तुमने आज तक कभी मेरी इच्छा के विरूद्ध कोई कार्य नहीं किया और न मैंने ही कभी कोई कार्य तुम्हारी रूचि के प्रतिकूल किया है, फिर आज विलखती हुई रति को अकारण ही दर्शनों से वंचित क्यों करते हो ?

इसलिए दोनों के मन में सन्देह होता है कि कहीं उनके प्रेम पात्रों का अब तक स्नेह प्रदर्शन कैतव तो नहीं था ? अज कहते हैं :—

ध्रुवमस्मि शठः शुचिस्मिते विदितः कैतववत्सलस्तव,
परलोकमसन्निवृत्तये यदनापृच्छ्य गतासि मामितः । वही ४९

निश्चय ही मैं शठ हूँ । तुम्हारा और मेरा अति स्नेह छल था, यह अब प्रकट हो गया । अन्यथा सर्वदा के लिए परलोक जाते समय क्या तुम मुझसे मंत्रणा किये बिना ही चली जातीं और रति कहती है:—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हृदये वससीति मत्प्रियं यदवोचस्तदवैमि कैतवम्।
उपचार-पदं न चेदिदं त्वमनङ्गःकथमक्षता रतिः ।। कुमार. ४-९

तुम मुझे कहा करते थे कि मैं तुम्हारे हृदय में रहती हूँ। यह कथन यदि केवल छल न होता, तो भला तुम निःशरीर हो जाते और तुम्हारी मनोधिवासिनी होकर मैं अक्षत रह जाती।

तव निःश्वसितानुकारिभिर्वकुलैरर्ध-चितां समं त्वया।
असमाप्य विलासमेखलां किमिंद किन्नरकण्ठि सुप्यते ?

रघु. ८-६४

हे मधुर-भाषिणि, अपने श्वासों के समान ही सुरभित मौलसिरी के फूलों से हम-तुम विलास-मेखला बना रहे थे। इसे अधबना छोड़कर ही तुम कैसे सो गयीं ? और रति उपालम्भ देती है:

रचितं रतिपण्डित त्वया स्वयमङ्गेषु ममेदमार्तवम्।
ध्रियते कुसम-प्रसाधनं तव तच्चारू वपुर्नदृश्यते ।।
विबुधैरसि यस्यदारूणैरसमाप्तेपरिकर्मणि स्मृतः।
तमिमं कुरू दक्षिणेतरं चरणं निर्मितरागमेहि मे ।।

कुमार. ४-१८, १९

हे प्रिय प्रभो, तुमने जो ये वासन्तिक पुष्प मेरे अंगों पर सजाये थे, वे ज्यों के त्यों स्थित हैं। हाँ, तुम्हारा वह सुन्दर शरीर अवश्य नहीं दिखायी देता ! ये देवता भी कैसे कठोर हैं ! तुम्हें असमय बुला भेजा। अब तो आप आइये और मेरे इस बाँये पाँव में भी महावर लगा दीजिये।

रति-विलाप का वह अंश अति करूण बन पड़ा है, जहाँ वह काम के मित्र वसन्त को अपनी तथा अपने पति की मरणोत्तर क्रियाओं के सम्बन्ध में आवश्यक निर्देश देती है—

तदनु ज्वलनं मदर्पितं त्वरयेर्दक्षिण-वातवीजनैः।
विदितं खलु ते यथा स्मरः क्षणमप्युत्सहते न मां विना।।
इति चापि विधाय दीयतां सलिलस्याञ्जलिरेक एक नौ।
अविभज्य परत्र तं मया सहितः पास्यति ते स बान्धवः ।।

वही. ३६, ३७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परलोक-विधौच माधव स्मरमुद्दिश्य विलोलपल्लवाः ।
निवपेः सहकार-मञ्जरीः प्रिय-चूत-प्रसवो हि ते सखा। वही ३८

मेरे चिता में प्रवेश कर जाने पर तुम मेरी जलायी अग्नि को मलय वात से उद्दीप करना जिससे मेरे जलने में विलम्ब न हो । तुम तो जानते हो मेरे बिना मेरे पति क्षण-भर भी रहना पसन्द नहीं करते । अग्नि प्रदीप्त करके तुम दोनों को एक ही जलांजलि देना । वहाँ तुम्हारे बन्धु काम और मैं दोनों उसे एक साथ ही पी लेंगे । तर्पण करते समय तुम कोमल पल्लवों वाली आम की मंजरी अर्पित करना । तुम्हारे मित्र को आम्रपुष्प बहुत प्रिय हैं ।

इस प्रकार, रति चिता-वरण द्वारा समग्र विरह-वेदना का शमन करने को प्रस्तुत होती है कि आकाशवाणी उसमें निदाघ के अन्त में पुनः आकूल प्रवाहित होने वाली नदी के समान आशा का संचार कर उसे मरण से विनिवृत्त कर देती है । दूसरी ओर, अज प्राणोत्सर्ग तो नहीं करते, पर प्रतिक्षण शोकचिता में दग्ध होते और चिर वेदना का वरण करते हैं । उनके दुःख-सुख को अपना दुःख-सुख मानने वाले मित्र हैं, आज्ञाकारी पुत्र हैं, फिर भी उनके लिए गान, उत्सव, आभरण किसी में आकर्षण नहीं रहा ।

धृतिरस्तमिता रतिश्च्युता विरतं गेयमृतु र्निरूत्सवः ।
गतमाभरण-प्रयोजनम्॥ रघु. ८-६६

कालिदास के इन दोनों विलापों में रतिविलाप अधिक भावावेशमय है, यद्यपि तल्लीनता दोनों में समान है ' महाकवि वाल्मीकि ने भी ऐसे प्रसंगों पर इसी शैली का आश्रय लिया है । उदाहरणार्थ, राम-विलाप और मन्दोदरी-विलाप को लें । सीतहरण के पश्चात् वियोगाकुल राम कहते हैं:—

अपि कच्चित्वया दृष्टा सा कदम्बप्रिया प्रिया ?
कदम्ब यदि जानीषे शंस सीतां शुभाननाम्। १
अशोक शोपापनुद शोकोपहत-चेतसाम्।
त्वन्नामानं कुरू क्षिप्रं प्रिया-सन्दर्शनेन माम्। २

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथवा मृगशावाक्षीं मृग जानासि मैथिलीम,
मृगविप्रेक्षणी कान्ता मृगीभिः सहिता भवेत्। ३।
तिष्ठ तिष्ठ वरारोहे न तेऽस्ति करूणा मयि
नात्यर्थं हास्यशीलासि किमर्थं मामुपेक्षसे। ४।
हा लक्ष्मण महावाहो पश्यसि त्वं प्रियां क्वचित्।
हा प्रिये क्व गता भद्रे हा सीतेति पुनः पुनः। ५।
इत्येवं विलपन् रामः परिधावन् वनाद्वनम्।
क्वचिदुद्भ्रमते वेगात् क्वचिद्विभ्रमते बलात्। ६।

हे कदम्ब, तुम्हारे पुष्प सीता को बुहत प्रिय थे। तुमने तो उसे इधर नहीं देखा? कहीं वह तुम्हारे फूल चुनने आयी हो। हे शोकग्रस्त लोगो का शोक दूर करने वाले अशोक ! मुझे सीता का दर्शन कराकर अपना नाम सार्थक करो। हे मृग ! बाल मृगों के समान नेत्र वाली मेरी सीता को तुम जानते हो? शायद वह मृगाक्षी मृगियों के साथ खेल रही हो। ठहरो,ठहरो, सुन्दरि ! क्या तुम्हे मुझ पर दया नहीं आती? तुम्हारा स्वभाव तो विशेष परिहास करने का भी नही है। फिर क्यों मेरी उपेक्षा कर रही हो? हे लक्ष्मण ! क्या तुम्हें कहीं सीता दिखायी देती है? तुम कहाँ चली गयीं?

इस प्रकार विलाप करते हुए राम वन से वन में मारे-मारे फिरते थे। कभी दौड़ते-दौड़ते गिर पड़ते थे और कभी वायु के बवण्डर की तरह चक्कर काटने लगते थे।

वाल्मीकि के इस वर्णन में, जिसको आधार मानकर तुलसीदास ने राम-विरह-वर्णन लिखा है, कालिदास की अपेक्षा अधिक आकुलता एवं आतुरता से पूर्ण है और इसका कारण अज एवं राम की मानसिक स्थिति की भिन्नता है। राम के सम्मुख इष्ट जन-वियोग है, साथ ही कुल की प्रतिष्ठा का प्रश्न भी है। सामने आशा की एक क्षीण रेखा है अतः, यह विप्रलम्भ श्रृंगार है। रघुवंश में प्राणावसान स्पष्ट है, व़हाँ आशा की झलक नहीं। वायु से हिलती अलकावली अवश्य बार-बार विभ्रम उत्पन्न कर देती है, पर वह केवल अपने को भुलावा देना था। फिर भी वाल्मीकि के राम की विह्वलता कवि की गम्भीर अनुभूति की परिचायक है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्दोदरी के विलाप में भी करूण रस का सम्यक् परिपाक हुआ है, किन्तु यहाँ रावण का अविवेक, अन्याय, मद और दर्प उसके प्रति समर्पण और श्रद्धा के बीच भित्ति बनकर खड़ा है। युद्ध उसने मन्दोदरी के परामर्श के विरूद्ध किया। इसलिए मन्दोदरी के विलाप में पत्नी-धर्म-जनित पीड़ा एवं असहायावस्था के चित्रण को ही विशेष अवकाश है। फिर भी यह वर्णन महान् बन पड़ा है। पहले रावण की रानियों की पीड़ा का एक चित्र देखिये—

वांर्यमाणाः सुबहुशो वेष्टन्त्यः क्षिति-पांसुषु।
विमुक्त-केश्यो दुःखार्ता गावो वत्सहता इव ॥१
ता वाष्प-परिपूर्णाक्ष्यो भर्तृ-शोकपराजिताः
करेण्व इव नर्दन्त्यो विनेदुर्हतयूथपाः ॥ २ ॥
ताः पतिं सहसा दृष्ट्वा शयानं रणपांसुषु
निपेतुस्तस्य गात्रेषुच्छिन्ना वनलता इव ॥ ३ ॥

बार-बार रोकने पर भी रावण की स्त्रियाँ बाल बिखराये भूमि में धूल पर गिरती-पड़ती इस प्रकार तड़पने लगी, जैसे बछड़े के मारे जाने पर गायें तड़पती हैं। जैसे यूथपति गजराज के मारे जाने पर हथिनियाँ चिंघाड़ती हैं, उसी प्रकार वे नेत्रों में आँसू भरकर रोने-धोने लगी। पति को धूल में पड़ा देखकर वे कटी हुई वनलताओं के समान उसके शरीर पर गिर पड़ीं।

मन्दोदरी का तो कहना ही क्या था। इतने बड़े बलवान् राक्षसराज की धर्मपत्नी और आज अनाथ ! कैसी करूण स्थति है—

एवं-प्रभावं भर्तारं दृष्ट्वा रामेण पातितम्,
स्थिरास्मि यद्देहमिमं धारयामि हतप्रिया। १
शयनेषु महार्हेषु शयित्वा राक्षसेश्वर,
इह कस्मात् प्रसुप्तोऽसि धरण्यां रेणु-पाटलः। २
प्रपन्नो दीर्घमध्वानं राजन्नद्य सुदुर्गमम्,
नय मामपि दुःखार्तां न जीविष्ये त्वया बिना। ३
कस्मात त्वं मां विहायेह कृपणां गन्तुमिच्छसि,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दीनां विलपितैर्मन्दां किं वा मां नाभिभाषसे। ४।

दृष्ट्वा न खल्वसि क्रुद्धो मामिहानवगुण्ठिताम्,

निर्गतां नगर-द्वारात् पद्भ्यामेवागतां प्रभो। ५।

धिगस्तु हृदयं यस्या ममेदं न सहस्त्रधा,

त्वयि पञ्चत्वमापन्ने फलते शोकपीडितम्। ६।

मैं राम के द्वारा मारे गये तुम्हें इस स्थिति में देखकर इस देह को धारण कर रही हूँ। निश्चय ही मैं पत्थर हूँ। तुम इतने बहुमूल्य शयनों पर सोकर आज धूल से लथपथ भूमि पर क्यों सो रहे हो ? तुम आज लम्बी दुर्गम यात्रा को चल पड़े। मुझे भी तो साथ ले चलो। मैं तुम्हारे बिना जी नही सकूँगी। तुम मुझ दुखिया को अकेला छोड़कर क्यों जाना चाहते हो ? मैं दुखी हो-हो कर विलाप कर रही हूँ। तुम मुझसे बोलते क्यों नही ? देखो, मैं यहाँ बिना घूँघट सबके सामने चली आयी हूँ। मैं पैरों-पैरों नगर-द्वार के बाहर चली आयी हूँ। राजमर्यादा का यह भंग देखकर तुम्हें क्रोध नहीं आता ? धिक्कार है मुझे। मेरे हृदय के हजारों टुकडे क्यों नहीं हो जाते ?

मन्दोदरी के विलाप में महाकवि की वृत्ति रमी है और यह प्रसंग महाकाव्य की विराटता के अनुकूल ही प्रभावशाली बन पड़ा है।

गोस्वामी तुलसीदासजी ने भी इस प्रसंग पर लेखनी उठायी है, किन्तु राम के प्रति अगाध श्रद्धा ने उन्हें मन्दोदरी के मानस की ओर झाँकने का अवकाश ही न दिया। उनके मुख से जो वाक्य निकले हैं, उनमें कुछ तो वाल्मीकि के उच्छिष्ट हैं और कुछ रसोद्रेक में असमर्थ। निम्नलिखित उक्ति मन्दोदरी के मुख से कैसी अशोभन मालूम होती है :—

तव बस सव प्रपंच विधिनाथा-

सभय दिशिप सव नावहिं माथा।

अब तव सिर भुज जंबुक खाहीं-

राम-विमुख यह अनुचित नाहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्दोदरी को अतिशय धर्म-परायण चित्रित करने में कवि नारी की मानसिक स्थिति को समझ न पाया। मन्दोदरी-जैसी पतिव्रता स्त्री पति की भुजाएँ और शिर जम्बूकों को जीते जी सौंप देगी, यह कल्पना कौन कर सकता है ?

इस प्रकार, हम देखते है कि कालिदास के विलाप-वर्णनों की तुलना में वाल्मीकि को ही सरलता के साथ उपस्थित किया जा सकता है। कालिदास कलामय अधिक हैं, तो वाल्मीकि की दृष्टि विशाल है। वाल्मीकि में उद्दाम उच्छ्वास और वेग अधिक है, तो कालिदास में अश्रु और तारल्य। जहाँ तक वाग्-वैदग्ध्य का सम्बन्ध है, कालिदास आगे हैं।

अज-वर्णन-प्रसंग में कवि ने मुनिमुख से उपदेश के बहाने तप्त हृदय पर आलेप की व्यवस्था भी की है। इस प्रसंग में कुछ श्लोक तो बड़े सुन्दर हैं।

देखिये:—

मरणं प्रकृतिः शरीरिणां विकृति-र्जीवनमुच्यतेबुधैः

क्षणमप्यवतिष्ठते श्वसन् यदि जन्तुर्ननु लाभवानसौ। रघु. ८-८७

स्व-शरीर-शरीरिणावपि श्रुत-संयोग-विपर्ययौ यदा।

विरहः किमिवानुतापयेद् बद वाह्यैर्विषयैर्विपश्चितम्। वही ८९

स्थिरधीस्तु तदेव मन्यते कुशलद्वारतया समुद्धृतम्। वही ८८

मरना तो शरीर-धारियों का स्वभाव है। जीना ही विकार है। ऐसी स्थिति में क्षण-भर भी यदि कोई प्राणी साँस ले सके, तो बहुत समझना चाहिए। देखिये कबीर की ये पंक्तियाँ :—

दस द्वारे का पींजरा तामें पंछी पौन।

रहिवे को आचरजं है गये तो अचरज कौन?

जब अपने शरीर और आत्मा भी मिलते और बिछुड़ते हैं, तो बाहरी विषयों के वियोग से भला विद्वान् परितप्त क्यों हों ? प्रिय का नाश होने पर मूर्ख व्यक्तियों को ऐसा लगता है, जैसे किसी ने उनके हृदय में शूल चुभो दिया हो। किन्तु बुद्धिमान् व्यक्ति ऐसा अनुभव नहीं करता है। और फिर—स्वजनाश्रु किलातिसंततं दहति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेतमिति प्रचक्षते—विद्वानों का कथन है कि परिजनों की अश्रु-धारा प्रेत के मन को और जलाती है ।

उपर्युक्त वर्णनों से जहाँ पुरूष और स्त्री की समाजिक मर्यादा पर प्रकाश पड़ता है, वहाँ रनिवासों में होने वाले अवगुण्ठन, पितरों को दी जाने वाली जलांजलि और तर्पण, मृत्यु-काल में रोने-धोने के सम्बन्ध में शास्त्रीय धारणा, दैवी शक्तियों में विश्वास आदि बातों का भी पता लगता है । निवापाञ्जलि की अनेक बार आयी हुई चर्चा कालिदास के रचना-काल के निर्धारण में भी सहायक हो सकती है जिसका प्रचार चौथी सदी से पूर्व होना सम्भव नहीं मालूम होता ।

अज एवं रति विलाप की अनेक पंक्तियाँ कहावतों का रूप धारण कर चुकी हैं और प्राय: उद्धृत की जाती है :—

विषमप्यमृतं क्वचिद् भवेदमृतं वा विषमीश्वरेच्छया। १।

तरूर्न पातितः क्षपिता तद्विटपाश्रितालता। २।

धिगिमां देहभृतामसारताम्। ३।

मरणं प्रकृतिः शरीरिणां विकृति र्जीवन मुच्यतेवुधैः। ४।

प्रतिकारविधानमायुषः सति शेषेहिफलाय कल्पते। ५।

अथवा मृदु वस्तु हिंसितुं मृदुनैवारभते प्रजान्तकः। ६।

१—परमेश्वर की इच्छा से कभी विष भी अमृत बन जाता है, कभी अमृत भी विष हो जाता है ।

२—वृक्ष नहीं काटा, उसकी डालों पर फैली हुई लता काट दी ।

३—धिक्कार है जीवन की निःसारता को ।

४—मरण तो प्राणी का स्वभाव है, जीवन ही अस्वाभाविक स्थिति है ।

५—जीवन शेष हो, तभी उपचार भी काम देता है ।

६—भगवान कोमल वस्तुओं को कोमल निमित्त से ही मारता है ।

उपमाओं के लिए तो कालिदास प्रसिद्ध ही है । इन वर्णनों में भी उन्होंने अपनी यह विशेषता हाथ से नहीं जाने दी है । उदाहरणार्थ, देखिये 'चिताभस्म

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'कपोत-कर्वुरम्' । कपोत के समान कवरी चिताभस्म । कितनी स्वाभाविक उपमा है । इसी प्रकारः—

गत एव न ते निवर्तते स सखा दीप इवानिलाहतः
अहमस्य दशेव पश्य मामविषह्य-व्यसनेन धूमिताम् । कुमार.४-३०

इस श्लोक में काम को वायु द्वारा बुझे दीप की, जिसका गया प्रकाश लौटता नहीं, और रति को धूमिल बत्ती की उपमा दी हैं । इस प्रकार की उपमाओं से दोनों वर्णन भरे पड़े हैं ।

इतना विवेचन करने के पश्चात् एक प्रश्न अनायास मन में उठता है कि कालिदास के इन विलापों का संस्कृत-साहित्य में इतना महत्त्व किस कारण है ? करूण भावाभिव्यक्ति के कारण ? प्रसाद गुण के कारण ? विषयानुकूल छन्द के चयन के कारण ? अनुभूति की तीव्रता और गम्भीरता के कारण ? उपमाओं और वाग्विदग्धता के कारण ? निश्चय ही ये सब गुण इन वर्णनों में है । फिर भी क्या ये गुण उनके अन्य वर्णनों में नहीं हैं । स्वयं रघुवंश में उपर्युक्त गुणों से युक्त कई स्थल हैं । हाँ, करूण रस की महत्ता से इनकार नहीं किया जा सकता, किन्तु विप्रलम्भ श्रृंगार का अवलम्बन मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अपेक्षाकृत अधिक मनोरंजनक होता है और कालिदास उसमें निष्णात ही हैं ।

वास्तव में , रति और अज के विलाप वर्णनों की महत्ता का कारण है स्नेह के इस स्वरूप का चित्रण जो समाज को ग्राह्य है- विवाहित प्रेम जिसकी चर्चा करते समय हमें दायें-बायें झाँकने की आवश्यकता नहीं होती । इस प्रेम में छल-छिपाव की आवश्यकता नहीं । यह हमारी अतृप्त वासनाओं के कदर्म को बहाने वाली अन्तर्वाहिनी नाली नहीं है, यह है सात्त्विक स्नेह की वह स्रोतस्विनी जिसमें धुलकर हमारा मन निर्मल बनता है । आर्य संस्कृति की सहधर्मचारिता इसमें आश्रय पाती है । संस्कृत-साहित्य के अन्तिम खेवे के कवियों ने प्रेम के नाम पर परकीया के भेदोपभेदों का जो व्यूह निर्माण किया और वैष्णव कवियों ने आदर्श मधुरा भक्ति के लिए जिस भागवत वाक्य 'योषा जारमिव प्रियम्' को आदर्श माना, वह हमारे लिए शोभा की वस्तु नहीं है । प्रेयसी शब्द हमारे सामाजिक पतन का परिचायक है । सौभाग्य ही कहना चाहिए कि नारी पक्ष से 'प्रेयान्'शब्द का प्रयोग साहित्य में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं हुआ । उसने सदा 'प्रियतम' शब्द को ग्राह्य माना जिसका 'तमप्'प्रत्यय व्यक्ति-निर्धारण के लिए नहीं वस्तुनिर्धारण के लिए प्रयुक्त हुआ है ।

टेनीसन और उनके परवर्ती अँगरेजी कवियों को पढ़कर जो लोग यह मान बैठे हैं कि स्वकीया के स्नेह में भावनाओं एवं कल्पनाओं के विस्तार, प्रसार के लिये अवकाश नहीं है, उन्हें कालिदास और वाल्मीकि के ये विरह-वर्णन अवश्य पढ़ने चाहिए ।

रीति-गुण दोष

रीति

कालिदास वैदर्भी रीति के कवि माने जाते हैं । उनके विषय में "वैदर्भी कविता स्वयं वृतवती श्री कालिदासं वरम्" यह उक्ति सभी विचारों के आचार्यों द्वारा स्वीकृत है । वामन ने "रीतिरात्मा हि काव्यस्य" कहते हुए विशिष्टा (गुण विशेष युक्ता) पद रचना के आधार पर "सा त्रिधा-वैदर्भी, गौडीया पाञ्चाली च" अर्थात् तीन रीतियाँ मानी हैं । यह विभाजन क्षेत्र विशेष के महाकवियों द्वारा गृहीत शैली के आधार पर हैं । वामन ने स्पष्ट किया है कि शैली किसी क्षेत्र में उत्पन्न होने वाले द्रव्यों या पदार्थों के समान वहाँ की उपज नहीं है, प्रत्युत उस क्षेत्र के प्रमुख कवियों में दृष्ट है । इसका उस क्षेत्र से (वहाँ के जलवायु या वातावरण से) कोई अनिवार्य सम्बन्ध नहीं है । वामन ने स्वोक्त तीनों रीतियों में वैदर्भी को "समग्रगुणा" बतलाया है और इस सम्बन्ध में निम्न दो प्रसिद्ध श्लोकों को उद्धृत किया है ।

अस्पृष्टा दोषमात्राभिः समग्रगुणगुम्फिता ।
विपञ्चीस्वर-सौभाग्या वैदर्भी रीतिरिष्यते ॥
सति वक्तरि सत्यर्थे सति शब्दानुशासने ।
अस्ति तन्न विना येन परिस्रवति वाङ्मधु ॥

ये श्लोक अन्य समीक्षकों के हैं जिनके विषय में वामन-काल में वैमत्य नहीं था । वामन ने वैदर्भी रीति का निम्न उदाहरण दिया है—

गाहन्तां महिषा निपान-सलिलं शृङ्गैर्मुहुस्ताडितं,
छाया-वद्ध-कदम्बकं मृगकुलं रोमन्थमभ्यस्यतु ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विस्रब्धं क्रियतां वराहपतिभिर्मुस्ताक्षतिः पल्वले,

विश्रान्तिं लभतामिदं च शिथिलज्या-वन्धमस्मद् धनुः ॥

शाकु० २-६

वामन ने 'समग्र गुणा वैदर्भी' का आदर्श उदाहरण मान कर इस श्लोक को उद्धृत किया है। इसके "छाया-बद्ध-कदम्बकम्' और 'शिथिल ज्या-वन्धम्' पदों में वन्ध की गाढता होने से ओजगुण है और 'छाया-बद्ध कदम्बकं मृग कुलम्' को एक साथ देखें तो बन्ध के गाढत्व और शैथिल्य के संप्लव के कारण प्रसाद गुण दिखता है। 'महिषा निपानसलिलम्' इसमें मसृणता के कारण श्लेष गुण है। "गाहन्ताम्" से प्रारम्भ कर जिस मार्ग से उपक्रम है उसी मार्ग से उपसंहार होने से मार्गाभेद के कारण समता गुण है क्योंकि 'गाहन्ताम्' में आरोह है, 'महिषाः' में अवरोह। इसी प्रकार अन्यत्र भी आरोहावरोह का क्रम स्फुरित होने से समाधि गुण है। "शृङ्गैर्मुहुस्ताडितम्" में पृथक्पदत्व के कारण माधुर्य है। 'रोमन्थमभ्यस्यतु' आदि में बन्ध में जरठता न होने से सौकुमार्य गुण है। 'शिथिल ज्याबन्धमस्मद्धनुः' में बन्ध की विकटता से जन्य उदारता गुण है। पदों की उज्वलता से कान्ति की सृष्टि हुई है। अर्थाभिव्यक्ति के कारण अर्थ व्यक्ति भी है।

अलंकार- शेखरकार केशव मिश्र वैदर्भी में समासाल्पत्व देखते हैं। कालिदास के निम्न श्लोक को उन्होंने वैदर्भी का प्रतिनिधि मान कर उद्धृत किया है—

मनीषिताः सन्ति गृहेषु देवतास्तपः क्व वत्से क्वच तावकं वपुः।

पदं सहेत भ्रमरस्य पेलवं शिरीष-पुष्पं न पुनः पतत्रिणः ॥

कुमार. ५-४

भोजराज तो वैदर्भी के अनन्य प्रशंसक और गौड़ी के विरोधी थे। वह कहते हैं—

शस्ता विदग्ध-गोष्ठीषु वैदर्भी रीतिरुत्तमा।

मागधी मध्यमा गौडी गौडस्त्री कलहायते ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वतीकण्ठाभरण ने भी कालिदास का उक्त श्लोक ही वैदर्भी के उदाहरण के रुप में उद्धृत किया है । उसका मत है कि यह असमस्तपदा और समस्त श्लेषादि गुणवती वैदर्भी है जिसमें नवों गुण देखे जा सकते हैं ।

वामन के समय तक रीतियों की संख्या तीन के स्थान पर छै हो गयी थी और उसमें अवन्तिका, लाटीया और मागधी भी सम्मिलित हो गयी थीं । इसने वृत्ति के अतिरिक्त छाया नामक शैली को जिसमें अन्योक्तियों की अनुकृति रहती है, स्वीकार किया है । और इसके छै भेदों में लोकोक्ति को भी परिगणित करते हुए मेघदूत के निम्न श्लोक को उदाहरण के रूप में उद्धृत किया है—

शापान्तो मे भुजगशयनादुत्थिते शाङ्‌र्गपाणौ,

मासानेतान् गमय चतुरो लोचने मीलयित्वा ।। मेघ. २-४०

इसकी द्वितीय पङ्क्ति लोकोक्ति है जो आज भी इसी रूप में हिन्दी में भी व्यवहृत होती है—"चार मास आंखे मींच कर काट डालो ।" छाया योनिज पाँच प्रकार के काव्य का भी उल्लेख मिलता है । जिसका एक भेद परिमलच्छाया भी है—उदाहरण रघुवंश का यह श्लोक है—

अनेन यूना सह पार्थिवेन रम्भोरु कच्चिमनसो रुचिस्ते ।

शिप्रा-तरङ्गानिल-कम्पितासु विहर्तुमुद्यान परम्परासु ।। रघु. ६-३५

गति

काव्य शैली में द्रुता, विलम्विता, मध्या, द्रुतविलम्विता, द्रुतमध्या और मध्यविलम्विता ये छै गतियाँ लघु और गुरु वर्णों के विभिन्न मिश्रणों के द्वारा बनती है । कालिदास का निम्न पद द्रुतमध्या गति का उदाहरण है—

अपि तुरग-समीपादुत्पतन्तं मयूरं

न स रुचिरकलापं वाण-लक्ष्यीचकार ।

सपदिगतमनस्कश्चित्र-माल्यानुकीर्णे

रतिविगलितबन्धे केशपाशे प्रियायाः । रघु. ९-६७

इसके चारों चरणों में पहले द्रुता और फिर मध्या गति का अन्तरानुप्रवेश स्पष्ट है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाति

भाषा प्रयोग भी चाहे वे संस्कृत के हों या किसी प्राकृत के यदि अन्य भाषा से अमिश्रित हैं जो वे शुद्धा जाति कहलाते हैं। ये शुद्धा, साधारणी, मिश्रा आदि भेदों से छै प्रकार के हो सकते हैं। यथा निम्न श्लोक में— उत्तमपात्र- प्रयोज्या शुद्धा संस्कृत- जातिः

उन्नमितैकभ्रूलतमाननमस्याः पदानि रचयन्त्याः।

कण्टकितेन प्रथयति मय्यनुरागं कपोलेन॥ शाकु. ३-१२

और मध्यमपात्र प्रयोज्या शुद्धा प्राकृत जाति—

तुज्झ ण आणे हिअअं मम उण मअणो दिवावि रत्तिंवि

णि क्किव तवेइ वलिअं तुह जुत्त मणोरहा इं अंगाइं॥

शाकु० ३-१३•

ऐसे ही नातिमध्यम पात्र प्रयोज्या शुद्धा शौरसेनी जाति

तु सि मए चू अंकुर दिण्णो कामस्स गहिद धणु अस्स

जुवइ मण मोहण सहो पंच ब्भहिओ सरो होहि॥ शाकु. ६-३

शौरसेनी का प्रयोग मध्यम कोटि से कुछ नीचे और हीन कोटि से कुछ ऊँचे पात्रों के द्वारा किया जाता है। शुद्ध जाति से तात्पर्य है उसी भाषा के नियमों और अनुशासन से बँधी माषा।

काव्यमुद्रा

काव्य में साभिप्राय बात के निवेशन का नाम मुद्रा है जो इसके मोददायक होने के कारण रखा गया है। यह भी छै प्रकार की होती है—पद, वाक्य, विभक्ति, वचन, समुच्चय और संवृत्ति के न्यास के द्वारा। श्लोक में वक्ता के अभिप्राय विशेष का प्रतिरूप किसी एक ही स्थान पर रहता है फिर चाहे वह उपर्युक्त में किसी पर हो। वचन मुद्रा देखिये—

विश्वम्भरा भगवती भवतीमसूत राजा

प्रजापतिसमोजनकः पिता ते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तेषां वधूस्त्वमसि नन्दिनि पार्थिवानां

येषां कुलेच सविता च गुरुर्वयं च॥

इस श्लोक में वक्ता ने स्वयं के लिये वहुवचन का और सविता के लिए एक वचन का प्रयोग कर यह कहना चाहा है कि मैं सविता से भी बड़ा हूँ। यह वचन की सहायता से कहा गया है।

उक्ति

उक्ति उसे कहते हैं जिसमें विधि के द्वारा या निषेध के द्वारा विशिष्ट अर्थ की प्रतीति हो रही हो। विधि का अर्थ है 'अप्राप्तौ प्रापणवचनम्" या अप्रवृत्त प्रवर्तनतनया अत्यन्ताप्राप्ति में प्रवृत्ति। अप्राप्तौ प्रापण विधि जैसे—

शुश्रूषस्व गुरुन् कुरु प्रियसखी-वृत्तिं सपत्नीजने।

और निषेधोक्ति प्राप्त के निवारण में होती है। यथा—

भर्तुर्विप्रकृताऽपि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः।

अधिकारोक्ति भी उक्ति का ही एक भेद होता है। इसमें विधि और निषेध के ज्ञान से विधि और निषेध की योग्यता के अधिकार का कथन होता है—

भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भोगेष्वनुत्सेकिनी,

यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो वामाः कुलस्याधयः। शाकु. ४-१८

केशव मिश्र ने उक्ति के चार प्रकार माने हैं—लोक, छेक (विदग्ध) अर्भक और उन्मत्त की उक्ति। वह रीति, उक्ति, मुद्रा और वृत्ति को काव्य का जीवित मानते हैं—

रीतिरुक्तिस्तथा मुद्रा वृत्तिः काव्यस्य जीवितम्। अलं. शे. २-१

युक्ति—

अयुज्यमानस्य मिथः शब्दस्यार्थस्य वा पुनः।

योजना क्रियते याऽसौ युक्तिरित्युच्यते बुधैः॥

सर. कण्ठा० २-४४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छै प्रकार की युक्तियों में एक प्रबन्ध- विषया युक्ति भी होती है जो प्रबन्ध भर में व्याप्त वस्तु की उपपत्ति का कारण बनती है । यथा—

धूमज्योतिः-सलिल-मरुतां संनिपातः क्व मेघः,

सन्देशार्थाः क्व पटुकरणैः प्राणिभिः प्रापणीयाः ।

इत्यौत्सुक्यादपरिगणयन् गुह्यकस्तं ययाचे,

कामार्ता हि प्रकृति-कृपणाश्चेतनाचेतनेषु ॥ मेघ. १-५

भणिति

शब्दालंकृति की चौबीस जातियों में भणिति की एक है । भणिति एक उक्ति-प्रकार है । उक्ति तो सर्ववाक्य साधारणी होती है किन्तु प्रकार अर्थात् भङ्गी-रुपता जो लौकिक और शास्त्रीय सामान्य उक्ति से अतिशयी या बढ़कर होती है, भणिति को अलंकारता प्रदान करती है । कालिदास का यह श्लोक—

आभरणस्याभरणं प्रसाधनविधेः प्रसाधन-विशेषः ।

उपमानस्यापि सखे प्रत्युपमानं वपुस्तस्याः ॥ शाकु. २-३

यह संवृति भणिति का उदाहरण है । शरीर सौन्दर्य के वर्णन में उपर्युक्त कथन के द्वारा चन्द्रमुखी, विम्वोष्ठी, कमलनयना, करि कुम्भस्तनी जैसे कवि प्रसिद्ध वर्णनों का संवरण कर दिया गया है ।

शय्या

किसी एक वस्तु को वुद्धि में समाहित कर प्रबन्ध रचना करते समय उससे अधिक की बीच बीच में योजना शय्या कहलाती है । वह कहीं प्रक्रान्त अर्थात् प्रकरण- संगत होती है और कहीं अप्रकान्त । तात्पर्य यह कि प्रस्तुत और अप्रस्तुत पदार्थों की रचना करते समय उसमें जो योजनीय होता है वह शब्दार्थ भेद से दो प्रकार का होता है । महाकवियों के प्रबन्धों में वस्तु और वाक्य की योजना देखी जाती है । अर्थ तो प्राकरणिकार्थ का उपयोगी भी हो सकता है और अनुपयोगी भी । प्रक्रान्त घटना का उपयोगी निम्न श्लोक में है । इसमें शिव विवाह के प्रस्ताव के प्रसंग में जो सप्तर्षियों का वर्णन आया है वह प्राकरणिक या उपयोगी है क्योंकि कथा का भाग न होने पर भी वे विवाह तन्तु को आगे बढ़ाने में सहायक होते हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स तथेति प्रतिज्ञाय विसृज्य कथमप्युमाम्।

ऋषीन् ज्योतिर्मयान् सप्त सस्मार स्मरशासनः।। कुमार. ६-३

शय्या का एक रूप वाक्य- घटना भी है। यथा—

हंस! प्रयच्छ मे कान्तां गतिरस्यास्त्वया हृता।

विभावितैक-देशेन देयं यदभियुज्यते।। विक्रमो. ४-३३

इस श्लोक का उत्तरार्ध पूर्व शास्त्र- निबद्ध वस्तु को सूचित करता है किन्तु जो उसके अनुयायी नहीं हैं उनके लिये भी प्रस्तुतार्थ के विरुद्ध नहीं पड़ता। इस प्रकार यहाँ उत्तरार्ध पूर्वार्ध के साथ एक- वाक्यता में घटित हो जाता है। इसलिये इसे वाक्य- घटना शय्या कहा है।

इस प्रकार भोजदेव ने जाति, गति, रीति, वृत्ति, छाया, मुद्रा, उक्ति, युक्ति, भणिति, गुम्फना, पठिति, शय्या, यमक, श्लेष, अनुप्रास, चित्र, वाको वाक्य, प्रहेलिका, गूढ प्रश्नोत्तर, अध्येय, श्रव्य, प्रेक्ष्य, अभिनीति ये चौबीस शब्दालंकार जाति मानी हैं। इनमें जो कालिदास की रचनाओं में प्राप्त होती है उनको ऊपर उद्धृत किया गया है। अन्य आचार्य इनमें रीति और वृत्ति को स्वतन्त्र मानते हैं और यमक श्लेषादि को स्वतन्त्र शब्दालंकारों में परिगणित करते हैं। यहाँ मेरा कार्य इस सबकी विवेचना करना नहीं, प्रत्युत इनके अनुसार कालिदास की कृतियों पर दृष्टि डालना मात्र है। इनमें रीति और वृत्ति को अन्य आचार्यों ने भी काव्य शोभा आदि के रूप में स्वीकार किया है—केशव मिश्र ने कहा है—

रीतिरुक्ति स्तथा मुद्रा वृत्तिः काव्यस्य जीवितम्। अलं० शेखर

पीछे इन सबके उदाहरण प्रस्तुत किये जा चुके हैं।

गुण

अनेक आचार्य अलंकारों की अपेक्षा गुणों को अधिक महत्त्व देते हैं। उनका मत है कि सहस्र अलंकार हों किन्तु एक गुण न हो तो सब व्यर्थ—

अलंकृतमपिश्रव्यं न काव्यं गुण-वर्जितम्।
गुणयोगस्ततो मुख्यो गुणालंकार-योगयोः।

अलंकार-सहस्रैः किं गुणो न यदि विद्यते।
विक्रीयन्ते न घण्टाभिर्गावः क्षीर-विवर्जिताः।। अलं. शे.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संक्षेप

इसका कारण यह कि गुण काव्य की आत्मा के गुणों के समान और अलंकार शरीर के आभरणों के तुल्य । गुणों में एक संक्षेप भी है जो निम्न श्लोक में विद्यमान है—

ते हिमालयमामन्त्र्य पुनः प्रेक्ष्य च शूलिनम् ।

सिद्धं चास्मै निवेद्यार्थं तद्विसृष्टाः खमुद्ययुः ।। कुमार. ६-१४

प्रसाद

यहाँ थोड़े से अक्षरों में लम्बी बात कह दी जाती है । प्रसाद भी गुण है । इसमें झट से अर्थ का प्रत्यय हो जाता है । यथा—

स विश्वजितमाजह्रे यज्ञं सर्वस्वदक्षिणम् ।

आदानं हि विसर्गाय सतां वारिमुचामिव ।। रघु. ४-४६

यहाँ प्रसाद गुण स्पष्ट है । वस्तुतः कालिदास प्रसाद गुण के ही कवि हैं । उनकी रचनाओं में अधिकांश प्रसन्न है ।

वामन ने गाढ़बन्धत्व को ओज और शैथिल्य को प्रसाद मानते हुए केवल प्रसाद को दोष किन्तु उसके ओज के साथ संप्लव या मिश्रण को गुण माना है और कहा है कि जीवन में संप्लव का अनुभव होता है—

करुण-प्रेक्षणीयेषु संप्लवः सुखदुःखयोः ।

यथानुभवतः सिद्धस्तथैवोजः-प्रसादयोः । काव्या. सू०

इस दृष्टि से देखें तो—

अथ स विषय-व्यावृत्तात्मा यथाविधि सूनवे,

नृपति-ककुदं दत्वा यूने सितातपवारणम् । रघु. ३-७०

इसके प्रथम चरण में ओज और द्वितीय में प्रसाद है । इस प्रकार यहाँ दोनों का साम्य है । ये दोनों भिन्न स्थानों पर रहते हुए भी परस्परच्छायानुकारिता के समान संमिश्र हैं । कहीं दोनों के साथ रहते हुए भी उनमें एक का उत्कर्ष होता है । जैसे—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुसुम-शयनं न प्रत्यग्रं न चन्द्र-मरीचयो।

न मलयंजं सर्वाङ्गीणं न वा मणियष्टयः ॥ विक्रमो. ३-१०

इसमें प्रसाद गुण ओज की अपेक्षा उत्कृष्ट है। श्लेष भी गुण है जो रचना की मसृणता से उत्पन्न होता है। यह मसृणता है जिसके प्रभाव से बहुत से भी पद एक के समान प्रतीत होते हैं। जैसे—

अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः।

कुमार. १-१

ओज अर्थ-गुण भी है। इसमें अभिधेय अर्थ की प्रौढ़ता रहती है। "पदार्थे वाक्यवचनम्" भी प्रौढि के अन्तर्गत आता है। यथा प्रस्तुत चरण में—

अथनयनसमुत्थं ज्योतिरत्रेरिव द्यौः।

इसमें अभिधेय चन्द्र को एक पद से ही कहने के बदले उसके लिये पूरा वाक्य प्रयुक्त है।

113485

प्रौढि

समास और साभिप्राय कथन भी प्रौढ़ि या ओज- गुण- युक्त अर्थ अर्थात् अर्थ गुणों के अन्तर्गत है। कहा है—

पदार्थे वाक्यवचनं वाक्यार्थे च पदाभिधा।

प्रौढि व्र्यास समासौ च साभिप्रायत्वमस्य च॥

इनमें 'ते हिमालयमामन्त्र्य' आदि (कुमार. ६-९४) समास-प्रौढि का उदाहरण है। और—

अपि तुरग-समीपादुत्पतन्तं मयूरं

न स रुचिर-कलापं वाण लक्ष्यीचकार।

सपदि गत-मनस्क श्चित्र-माल्यानुकीर्णे

रतिविगलित-वन्धे केशपाशे सुकेश्याः॥ रधु. ९-६७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समता

समता अर्थ गुण भी है। प्रक्रमाभेद अथवा अवैषम्य का ही नाम समता है। अवैषम्य अर्थात् सुगमत्व जैसे निम्न पद्य में—

कास्विदवगुण्ठनवती नातिपरिस्फुट-शरीरलावण्या।

मध्ये तपोधनानां किसलयमिव पाण्डुपत्राणाम्॥ शाकु. ५-१४

भोजराज द्वारा मान्य चौबीस शब्द गुणों में प्रसाद का स्थान दूसरा है। उन्होंने कहा है—प्रसिद्धार्थ- पदत्वं यत् स प्रसादो निगद्यते। सर. कण्ठा. १-६१। उनके अनुसार कालिदास का 'गाहन्तां महिषा निपान सलिलं शृङ्गै र्मुहु स्ताडितम्", आदि श्लोक (शाकु. २-६) में वाक्यगत प्रसाद है। प्रसाद प्रतीयमान विषयक भी हो सकता है। यथा—

एवं वादिनि देवर्षौ पार्श्वे पितुरधो-मुखी।

लीला-कमल-पत्राणि गणयामास पार्वती। कुमार. ६-८४

इसमें वाक्य के सुनने और उसका अर्थ समझने के साथ ही लज्जादि स्वतः प्रकाशित हो जाते हैं। निम्नलिखित पद्य माधुर्य गुण से मण्डित है—

माधुर्य

स्थिताः क्षणं पक्ष्मसु ताडिताधराः

प्रयोधरोत्सेध-निपात-चूर्णिताः।

वलीषु तस्याः स्खलिताः प्रपेदिरे क्रमेण

नाभिं प्रथमोदविन्दवः। कुमार. ५-२४

इस श्लोक में संहित-पद न होने से पृथक् पदत्व के कारण माधुर्य है।

अर्थ व्यक्ति

वागर्थाविव संपृक्तौ वागर्थ-प्रतिपत्तये।

जगतः पितरौ वन्दे पार्वती-परमेश्वरौ॥ रघु. १-१

इस श्लोक में अर्थ- व्यक्ति गुण है। कहा है—"यत्र सम्पूर्णवाक्यत्वमर्थ व्यक्तिं वदन्ति ताम्। कण्ठा. १-६४। प्रस्तुत श्लोक में 'वन्दे' इस उत्तम पुरुष एक-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वचन से 'अहम्' स्वत: प्राप्त हो जाता है। 'किम्' इस कर्म के उत्तर रूप "जगतः पितरौ पार्वती परमेश्वरौ" को ढूँढना नहीं पड़ता। किंभूतौ तौ के उत्तर में ये पद सामने आ जाते हैं। एकशेष के कारण मातृ शब्द स्पष्ट है और 'स्त्री पुंसयो:' इस औचित्य प्रथा के कारण वागर्थौ इव का इनके साथ योग बैठ जाता है। किसलिये 'वन्दे' के उत्तर में 'वागर्थ- प्रतिपत्तये' पद उपस्थित है। इसलिये जिस प्रकार के विशेषण विशेष्य और अन्य बातें एक पूर्ण वाक्य के लिये आवश्यक होती है वे सब इस श्लोक में अनायास प्राप्त हैं। अत: यह अर्थव्यक्ति गुण से युक्त हैं। ये शब्द गुण हैं। अर्थ गुण भी ये ही होते हैं। जैसे समत्व गुण का उल्लेख पीछे हुआ है।

समता

लोक में जिस क्रम से दो या अधिक अर्थों (वस्तुओं) की प्रतीति होती है, उसी क्रम से मर्यादा का उल्लंघन किये बिना यदि कथन किया जाता है तो वहाँ समता गुण होता है—

अवैषम्यं क्रमवतां समत्वमिति कीर्तितम्।

यथा—

अग्रेस्त्रीनख-पाटलं कुरवकं श्यामं द्वयोर्भागयोः।
बालाशोकमुपोढराग-सुभगं भेदोन्मुखं तिष्ठति।
ईषद् बद्धरजःकणाग्र-कपिशा चूते नवा वल्लरी।
मुग्धत्वस्य च यौवनस्य च सखे मध्ये मधुश्रीः स्थिता।

विक्रमो. २-७

इस श्लोक में मधुश्री के मौग्ध्यभाव के त्याग और यौवनारम्भ से उत्पन्न विशिष्ट परिवर्तनों का उसी क्रम से वर्णन किया गया है—

सौकुमार्य

सौकुमार्य गुण निष्ठुरत्व का विरोधी होता है। यथा

सद्यः पुरी-परिसरेऽपि शिरीष-मृद्वी
सीता जवात् त्रिचतुराणि पदानि दत्वा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गन्तव्यमस्ति कियदित्यसकृत्
ब्रुवाणा रामाश्रुणः कृतवती प्रथमावतारम् ॥

इस श्लोक में शिरीष सी कोमला सीता के द्वारा नगर के परिसर में ही 'और कितना चलना शेष है' यह कथन सुनकर सीता के कोमल अंगों पर दृष्टि डालते हुए राम के नेत्रों से अश्रु प्रवाहित होने लगना सौकुमार्य गुण है ।

उदारता

उदारता और उदारता नामक अर्थ गुण वहाँ होता है जहाँ भूति (वैभव) का उत्कर्ष वर्णित किया जाय । यथा—

प्राणानामनिलेन वृत्तिरुचिता सत्कल्प-वृक्षे वने,
तोये काञ्चन-पद्म-रेणु-कपिशे पुण्याभिषेक-क्रिया ।
ध्यानं रत्नशिला-गृहेषु विबुध-स्त्री-सन्निधौ संयमो ।
यद् वाञ्छन्ति तपोभिरन्य मुनयस्तस्मिंस्तपस्यन्त्यमी ॥शाकु. ७-१२

यहाँ मारीच-आश्रम का सत्कल्पवृक्षादि के द्वारा वैभवोत्कर्ष बतलाया गया है । और्जित्य रुढाहङ्कार का नाम है । ऊर्जित शब्द अहंकृति के रूप में प्रसिद्ध है और रुढ़ का अर्थ है सूक्ष्म अवस्था से द्वितीय आविर्भाव दशा की प्राप्ति । निम्न श्लोक में अहंकार रुढ़ दशा को प्राप्त है—

उमावधूर्भवान् दाता याचितार इमे वयम् ।
वरः शम्भुरलं ह्येष त्वत्कुलोद्भूतये विधिः । कुमार. ६-८२

'इमेवयम्' यह कथन आत्मान्वित व्रतचर्या आदि से उत्पन्न प्रौढ़ अहंकार का प्रतिपादन करता है ।

समाधि

समाधि गुण व्याज के सहारे कार्य करने के वर्णन में होता है—"व्याजावलम्वनं यत्तु स समाधिरिति स्मृतः" यथा—

दर्भाङ्कुरेण चरणः क्षत इत्यकाण्डे
तन्वी स्थिता कतिचिदेव पदानि दत्वा ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आसीद् विवृत्त-वदना च विमोचयन्ती

शाखासु वल्कलमसक्तमपि द्रुमाणाम्। शाकु. २-१३

गमन करती हुई शकुन्तला प्रिय को देखने की अभिलाषा से दर्भ के द्वारा चरण के क्षत होने तथा वल्कल के फँस जाने के व्याज का सहारा लेती है।

काव्यदोष—

जिस प्रकार गुण काव्य- शोभा का संवर्धन करते हैं उसी प्रकार दोष उसका अपकर्ष। "रसापकर्षका दोषाः" साहि. द. ७-१ । दोष पद, पदांश, वाक्य, और अर्थ गत होते हैं। पहले पददोष को ले जो पद और वाक्य दोनों में हो सकता है। यथा—

अविमृष्टविधेयांश

सोऽहमाजन्म- शुद्धानामाफलोदय-कर्मणाम्।

आसमुद्र- क्षितीनामानाक-रथवर्त्मनाम्॥ रघु. १-५

यहाँ शुद्ध का आजन्म, कर्मों का आफलोदय, क्षितीशता का आसमुद्र और रथवर्त्म का आनाक होना विधेय है जिसे प्रधान रूप से कथित होना चाहिये। ऐसा न कर जहाँ उसे समास में डाल कर उपसर्जन या गौण बना दिया जाता है, वहाँ अविमृष्ट-विधेयांश दोष होता है। यहाँ इन पदों को बहुव्रीहि समास का अङ्ग बना दिया गया जिसमें अन्यपद प्रधान होता है। विधेय को प्रधानता देने के लिये—आफलोदयम्, आजन्म, आसुमद्रम् और आनाकम्—पदों को स्वतन्त्र होना चाहिये था। इसी प्रकार नञ् के दो अर्थ होते हैं पर्युदास और प्रसज्य। पर्युदास सदृग्ग्राही होता है जैसे अब्राह्मण से ब्राह्मणातिरिक्त किन्तु उसके समान ही क्षत्रि-यादि का बोध होता है किन्तु प्रसज्य निषेध का वाचक होता है। यथा 'रात्रौन पठेत्।' यहाँ नञ् विधेय है। अतः इसका अन्य किसी पद के साथ समास नहीं होता। यथा निषेध की प्रधानता बतलाने के लिये निम्न श्लोक में 'न' पद असमस्त है—

नवजलधरः सन्नद्धोऽयं न दृप्त-निशाचरः,

सुरधनुरिदं दूराकृष्टं न वाम-शरासनम्

अयमपि पटु र्धारासारो न वाणपरम्प्रा।

कनक-निकष-स्निग्धा विद्युत् प्रिया न ममोर्वशी॥ विक्रमो. ४-१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर्युदास नञ् में विध्यंश की प्रधानता रहती है और प्रतिषेधांश की अप्रधानता। इसमें समास होने पर भी विधेयांश अविमृष्ट नहीं होता। यथा—

जुगोपात्मानमत्रस्तो भेजे धर्ममनातुरः।
अगृध्नुराददे सोऽर्थमसक्तः सुखमन्वभूत्॥ रघु. १-२१

अविमृष्ट विधेयांश दोष से बचने के लिये यत् और तत् दोनों में का प्रयोग वाक्य में रहना चाहिये। यत् साकाङ्क्ष शब्द है जिसकी पूर्ति तत् के प्रयोग के द्वारा होती है। इस प्रकार यत् और तत् का नित्य सन्बन्ध है। यदि कहीं तत् का प्रयोग न हुआ हो और उसका अर्थ केवल अक्षेप से अर्थात् आर्थ आक्षेप से हो सकता हो, तो वहाँ यह दोष नहीं होगा क्योंकि वहाँ केवल एक का ग्रहण करने से भी आकाङ्क्षा शान्त हो जायगी। यथा—"यं सर्वशैलाः परिकल्प्य वत्सं मेरौ स्थिते दोग्धरि दोह-दक्षे" तथा- यश्चाप्सरो- विभ्रम- मण्डनानां संपादयित्रीं शिखरै र्विभर्ति" आदि। कुमार संभव के प्रारम्भिक १६ श्लोकों में 'यत्' शब्द का प्रयोग भिन्न भिन्न विभक्तियों में हुआ है किन्तु उसके साकाङ्क 'तत्' शब्द का प्रयोग 'अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा" में नहीं हुआ है फिर भी वह आर्थ होने से आक्षिप्त है। प्रकरण से प्राप्त और पूर्वानुभूत वस्तुओं के लिये तत् शब्द आर्थ रहता है। यथा—

स हत्वा वालिनं रामस्तत्पदे चिरकांक्षिते।
धातोः स्थान इवादेशं सुग्रीवं संन्यवेशयत्। रघु. १२-५८

यहाँ राम का प्रसंग चल रहा है। तत् शब्द (सः) यहाँ प्रक्रान्त वाचक है अतः यत् शब्द आर्थ है और यत् का प्रयोग न होने पर भी अविमृष्ट विधेयांश दोष नहीं है।

अक्रमता—

जहाँ पदन्यास के उचित स्थान के बदले उसका अन्यत्र निवेश किया जाता है, वहाँ अक्रमता दोष होता है। यथा निम्न श्लोक में अक्रमता दोष है—

द्वयं गतं सम्प्रति शोचनीयतां
समागम-प्रार्थनया कपालिनः।
कला च सा कान्तिमती कलावत
स्त्वमस्य लोकस्य च नेत्रकौमुदी॥ कुमार. ५-७१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहाँ द्वितीय पंक्ति मे दो बार 'च' का प्रयोग हुआ है। इसमें द्वितीय च का निवेश त्वं के साथ होना चाहिये था; लोकस्य के पश्चात् नहीं क्योंकि उसी का चन्द्रकला के साथ समुच्चय दिखाना है, लोक का नहीं।

अमत परार्थता—जहाँ कोई अनिष्ट अर्थान्तर प्रतीत होता है वहाँ यह दोष माना जाता है। यथा—

राममन्मथ-शरेण ताडिता दुःसहेनहृदये निशाचरी।
गन्धवद्-रुधिर-चन्दनोक्षिता जीवितेश-वसतिं जगाम सा।

रघु. ११-२०

यहाँ करुण का वर्णन है किन्तु उसके विरोधी शृङ्गार रस की भी प्रतीति हो रही है।

अस्थानपदता—अनुचित स्थान पर किसी पद को रखने से यह दोष उत्पन्न होता है। यथा—

तीर्थे तदीये गजसेतुबन्धात् प्रतीपगामुत्तरतोऽस्य गङ्गाम्।
अयत्न-बालव्यजनीवभूवु र्हंसा नभोलङ्घन-लोलपक्षाः॥

रघु० १६-३३

यहाँ तदीय पद में 'तत्' पद से गङ्गा का परामर्श किया गया है। अतः उस से पहले गङ्गा पद का आ जाना आवश्यक था अन्यथा तदीये से गङ्गा का यह अर्थ कैसे समझा जा सकता। और सर्वनाम से पूर्व का ही परामर्श होता है।

अनवीकृतत्व—दोष वहाँ होता है जहाँ एक ही पद बार बार दोहराया जाय या एक ही बात को उसी ढंग से कई बार कहा जाय। कथित पदत्व दोष भी इससे मिलता जुलता है किन्तु कथित पदत्व में दुबारा आये हुए पदों के स्थान पर उनका दूसरा पर्याम रख देने पर वह दोष दूर हो जाता है और अनवीकृत में केवल पर्याय रख देने से दोष का परिष्कार नहीं होता जब तक कि नबीन पद रखने से उसमें कुछ चमत्कार उत्पम्न न हो। निम्नलिखित श्लोक में बात वही है किन्तु उसके कहने में नयापन लाकर उक्त दोष से रक्षा कर ली गयी है—

भानुः सकृद् युक्त-तुरङ्ग एव रात्रिन्दिवं गन्धवहः प्रयाति।
विभर्ति शेषः सततं धरित्रीं षष्ठांशवृत्तेरपि धर्म एषः। शाकु. ५-४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुनर्दीप्ति—बार बार एक ही रस को उद्दीप्त करने से यह रस दोष उत्पन्न होता है। कुमार संभव के रति विलाप में कारुण्य का परिपाक करने के पश्चात् भी पुन: पुन: उसी रस को उद्दीपित किया है।

भग्नप्रक्रमता—यदि उपमा की प्रस्तुति में उपमान और उपमेय के बीच पुरुष, लिङ्ग, वचन या काल में भेद होतो भग्न- प्रक्रमता दोष होता है। यथा—

काप्यभिख्या तयोरासीद् व्रजतो स्तुल्यवेषयो:॥

हिमनिर्मुक्तयोर्योगे चित्राचन्द्रमसोरिव॥ रघु. १-६६

इस श्लोक में वसिष्ठाश्रम को जाते हुए दिलीप और सुदिक्षणा की शोभा की उपमा शीत ऋतु के कोहरे से मुक्त चन्द्रमा और चित्रा नक्षत्र के साथ दी है किन्तु यहाँ काल वाचक क्रिया 'आसीत्' का जो प्रयोग किया गया है, वह अनुचित है क्योंकि चित्रा चन्द्रमसो: के साथ वह उपयुक्त नहीं बैठता। अभिख्या तो आज भी 'अस्ति' है 'आसीत्' नहीं। अत: यहाँ काल भेद है।

दोष-निरास—कभी कभी दोष दोष भी नहीं रहता या गुण बन जाता है। जैसे अप्रतीतत्व। वक्ता की बात श्रोता या पाठक की समझ में बाहर हो तो वह अप्रतीतत्व दोष के भीतर आयेगी किन्तु यदि वक्ता और श्रोता दोनों उसवात के ज्ञाता हों तो अप्रतीतत्व दोष नहीं रह जाता। यथा इस श्लोक में—

त्वामामनन्ति प्रकृतिं पुरुषार्थ-प्रवर्तिनीम्।

तद्दर्शिनमुदासीनं त्वामेवप्रकृतिं विदु:। कुमार २-१३

यद्यपि प्रकृति, पुरुष, पुरुषार्थ, द्रष्टा आदि शब्द दर्शन, विशेषत: सांख्य से सम्बन्धित है फिर भी देव गण और भगवान विष्णु के वक्ता और श्रोता होने से यहाँ यह दोष नहीं माना जायगा।

न्यूनपदता—कभी कभी जो एक प्रसंग में दोष होता है वह अन्यत्र गुण बन जाता है। जैसे न्यून पदता दोष है किन्तु यदि वह आनन्दमग्न पुरुष की उक्ति हो तो गुण बन जायेगा। कहीं न्यून पदता न गुण होगा न दोष ही बनेगा। यथा—

तिष्ठेत् कोपवशात् प्रभावपिहिता दीर्घं न सा कुप्यति।

स्वर्गायोत्पतिता भवेन्मयिपुनर्भावार्द्रमस्यामन:॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तां हर्तुं विबुधद्विषोऽपि न च मे शक्ताः पुरोवर्तिनीं,

सा चात्यन्तमगोचरं नयनयो र्जातेति कोऽयं विधिः ॥

विक्रमो. ४-२

स्कन्दवन में लुप्त हो गयी उर्वशी को लक्ष्य कर पुरूरवा की यह उक्ति है। इस श्लोक में 'प्रभाव पिहिता' तथा 'भवेत्' के आगे 'नैतद्यतः ये पद न्यून है किन्तु इस वाक्य से व्यंग्य वितर्क नामक संचारी भाव को उत्कृष्ट न बनाने के कारण यह न्यून पदता यहाँ गुण नहीं है और 'दीर्घं न सा' आदि वाक्य से उत्पन्न ज्ञान के द्वारा उत्पन्न ज्ञान का बाध भी स्फुट रीति से हो जाता है। अतः यहाँ न्यून पदता को दोष भी नहीं कह सकते। यहाँ पहले वितर्क का खण्डन अगले वाक्य में मिल जाता है किन्तु निषेध सूचक पद कोई नहीं है। और दूसरा वाक्य हेतु रूप से गृहीत है यद्यपि हेतुता का सूचक भी कोई शब्द नहीं है। 'नैतद्' और 'यतः' शब्द यहाँ न्यून है। फिर न्यूनता से न कथ्य का उत्कर्ष होता है और न वाक्यार्थ समझने में कोई त्रुटि होती है। अतः यहाँ न्यूनपदत्व न दोष है, न गुण।

अश्लीलता—अश्लीलता काव्य दोष है। अश्लील अर्थ रस का अपकर्षक होता है। उससे पाठक का मन काव्य से हट जाता है। इसी कारण वह दोष है। अश्लील वह होता है जो व्रीडा, जुगुप्सा या अमङ्गल का जनक हो। यथा विक्रमोर्वशीय का प्रस्तुत श्लोक—

मृदुपवन-विभिन्नो मत्प्रियाया विनाशाद्

घनरुचिरं-कलापो निःसपत्नोऽद्य जातः।

रतिविगलित- बन्धेकेशपाशे प्रियायाः।

सति कुसुमसनाथे कं हरेदेष वर्हीं॥ विक्रमो. ४-१०

इस श्लोक में विनाश शब्द मृत्यु की प्रतीति कराता है, अतः अमङ्गल का बोधक है।

विधेयाविमर्शता—इसे अविमृष्टविधेयांश कहते हैं। पीछे इसका उदाहरण दिया जा चुका है। यह दोष कुमार संभव के निम्न श्लोक में भी दृष्ट है—

स्रस्तां नितम्बादवरोपयन्तीं पुनः

पुनः केसरदाम-काञ्चीम्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न्यासीकृतां स्थानविदा स्मरेण

द्वितीयमौर्वीमिव कार्मुकस्य। कुमार. ३-५५

यहाँ पार्वती की वकुलमेखला में कामदेव की द्वितीय प्रत्यञ्चा के धरोहर रखने की उत्प्रेक्षा की गयी है । यह हेतूत्प्रेक्षा है । न्यासीकरण का हेतु काम के पास द्वितीय मौर्वी का होना है । द्वितीय वस्तु ही न्यास के रूप में रख दी जाती है । अत: यहाँ उत्प्रेक्षा द्वितीयत्वमात्र की अभीप्सित है, द्वितीय मौर्वी की नहीं । विधेय द्वितीयत्व है किन्तु वह उत्तर-पद प्रधान कर्म-धारय समास के कारण गौण हो गया है । अत: इस श्लोक में अविमृष्ट विधेयांश दोष है ।

वपुर्विरूपाक्षमलक्ष्य-जन्मता दिगम्बरत्वेन निवेदितं वसु ।

वरेषु यद् बालमृगाक्षि मृग्यते तदस्ति किं व्यस्तमपि त्रिलोचने ॥

कुमार. ५-७२

इस श्लोक में भी अविमष्ट विधेयांश दोष है क्योंकि अन्य बातों के साथ शिव के जन्म की अलक्ष्यता भी विधेय है किन्तु वह अन्यपदार्थ प्रधान वहुव्रीहि (अलक्ष्यं जन्य यस्या स: अलक्ष्य जन्मा) समास में अङ्गीभूत हो गयी है । वह वहुव्रीहि समास स्वयं भी तद्धितार्थ का अंग हो गया है । इसलिये विधेयांश का प्रधानतया निर्देश न होने के कारण यहाँ अविमृष्ट विधेयांश दोष है ।

पीछे यत् और तत् पदों की साकाङ्क्षता का उल्लेख हुआ है और "यं सर्व शैला: परिकल्प्य वत्सम्" आदि में केवल 'यत्' के प्रयोग पर अविमृष्ट- विधेयांश दोष की शङ्का भी व्यक्त की है तथा साथ ही कहा है कि लोक प्रसिद्ध तथा स्पष्ट अनुभव की हुई वस्तु आदि के विषय में 'यत्' शब्द के ग्रहण की अपेक्षा नहीं रहती । यथा—

कातर्यं केवला नीतिः शौर्यं श्वापदचेष्टितम् ।

अतः सिद्धिं समेताभ्यामुभाभ्यामन्वियेष सः ॥ रघु. १७-४७

यहाँ 'स:' प्रकान्त (प्रकरण प्राप्त) राजा अतिथि के लिये आया है, अत् 'यत्' शब्द की आकांक्षा नहीं करता । इसी प्रकार

द्वयं गतं सम्प्रति शोचनीयतां

समागम-प्रार्थनया पिनाकिनः ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कला च सा कान्तिमती कलावत

स्त्वमस्य लोकस्य च नेत्रकौमुदी। कुमार ५-६९

यहाँ 'सा' शब्द प्रसिद्ध अर्थ का बोधक है अतः यह 'यत्' की अपेक्षा नहीं करता।

पदांशदोष—दोष पद और वाक्य के समान पदैकदेश में भी रहता है। यथा—

श्रुतिकटुत्व—

तद् गच्छ सिद्ध्यै कुरुदेवकामर्थोऽयमर्थान्तर-भाव्य एव।

अपेक्षते प्रत्ययमङ्गलब्ध्यै बीजाङ्कुरः प्रागुदयादिवाम्भः।

कुमार ३-१८

इसमें द्ध्यै और ब्ध्यै ये पदांशश्रुतिकटु है। तथा

निहतार्थता—

यश्चाप्सरो-विभ्रम-मण्डनानां संपादयित्रीं शिरसा विभर्ति।

वलाहक-च्छेदविभक्तरागामकाल-सन्ध्यामिव धातुमत्ताम्॥

कुमार १-४

इसमें 'मत्तम्' यह पदांश क्षीव अर्थ को व्यक्त करता हुआ मतुप् प्रत्यय के अर्थ को निहत (तिरोहित) कर देता है। अतः यहाँ निहतार्थ दोष है।

भग्नप्रक्रमता—भग्नप्रक्रम वह दोष है जिसमें प्रस्ताव (उपक्रम) नष्ट हो जाता है। प्रक्रम- भङ्ग प्रकृति, प्रत्यय, सर्वमान, पर्याय, वचन, कारक, क्रम आदि में से किसी में भी हो सकता है। यथा—

ते हिमालयमामन्त्र्य पुनः प्रेक्ष्य च शूलिनम्।

सिद्धं चास्मै निवेद्यार्थं तद्विसृष्टाः खमुद्ययुः॥ कुमार ६-९४

यहाँ 'इदम्' सर्वनाम का प्रक्रम-भङ्ग है। "अनेन विसृष्टाः" कहना चाहिये क्योंकि पूर्व में 'अस्मै' पद का प्रयोग हुआ है। अतः वाद में 'तत्' के प्रयोग से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्देह हो सकता है कि यह पद महादेव के लिये है या हिमालय के लिये। ऐसे ही—

महीभृतः पुत्रवतोऽपि दृष्टिस्तस्मिन्नपत्ये न जगाम तृप्तिम्।

अनन्त-पुष्पस्य मधोर्हि चूते द्विरेफमाला सविशेष-सङ्गा॥

कुमार. १-२७

यह पर्याय प्रक्रम-भङ्ग है। 'महीभृतोऽपत्यवतोऽपि' कहना अधिक उपयुक्त होता क्योंकि 'अपत्ये न जगाम तृप्तिम्' कहते हुए अपत्य के स्थान पर पुत्र शब्द का प्रयोग प्रक्रम भङ्ग का कारण है।

निर्हेतुता—निर्हेतुत्व जो ऊपर दोष के रूप में उल्लिखित किया गया है, वह दोष नहीं रह जाता यदि प्रसिद्ध अर्थ में हो। यथा—

चन्द्रं गता पद्म-गुणान् न भुङ्क्ते

पद्माश्रिता चान्द्रमसीमभिख्याम्।

उमामुखं तु प्रतिपद्य लोला

द्विसंश्रयां प्रीतिमवाप लक्ष्मीः॥ कुमार. १-४३

रात्रि में पद्म संकुचित हो जाता है और दिन में चन्द्रमा निष्प्रभ—यह बात इतनी लोक प्रसिद्ध है कि "न भुङ्क्ते" इस हेतु की अपेक्षा नहीं करती। अतः यदि यहाँ 'न' पदों का प्रयोग न भी हुआ होता तो निर्हेतुता दोष नहीं होता।

न्यूनपदता—न्यूनपदता दोष है किन्तु कहीं वह गुण वन जाती है और कहीं दोष नहीं रह जाती, भले ही गुण न बनती हो। यथा—

"तिष्ठेत् कोपवशात् प्रभावपिहिता" आदि पूर्वोल्लिखित श्लोक (विक्रमो. ४-२) में 'पिहिता' इस पद के अनन्तर 'नैतद्यतः' ये पद न्यून (अपेक्षित) हैं। इसी प्रकार द्वितीय पाद में भी। फिर भी यहाँ न्यूनपदत्व गुण नहीं क्योंकि वह वितर्क रूप भाव में उत्कर्ष नहीं उत्पन्न करता। और दोष इसलिये नहीं क्योंकि इन पदों के अभाव में भी उत्तरवर्ती वाक्य पूर्वभावी ज्ञान का बोध करा देता है।

रति, हास, क्रोध आदि मर्त्य पात्रों के समान दिव्य पात्रों में भी होते हैं किन्तु सम्भोग शृंङ्गार रूपा रति का वर्णन उत्तम देवताओं के विषय में करना दोष है। माता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के संभोग वर्णन के समान इनका संभोग-वर्णन भी अनुचित है । फिर भी कालिदास ने शिव पार्वती के उत्तान शृंगार का वर्णन कुमार संभव के अष्टम सर्ग में किया है जो अत्यन्त अनुचित है । इसी प्रकार—

क्रोधं प्रभो संहर संहरेति यावद् गिरःखे मरुतां चरन्ति।

तावत्स वह्नि र्भवनेत्रजन्मा भस्मावशेषं मदनं चकार॥

कुमार. ३-७२

आदि में भृकुटि- विकार- रहित क्रोध, सद्यः फलित शाप, स्वर्ग- पताल- गमन, समुद्र- लङ्घन आदि अविश्वसनीय बातें दिव्य पात्रों में दिखायी जायँ तो वे दोषों की श्रेणी में नहीं आयेंगी ।

भग्नच्छन्दस्कता—कालिदास जैसे कवि में भग्नच्छन्द दोष मिला तो आश्चर्य ही होगा । फिर भी

ततः परमोमित्युक्त्वा प्रतस्थे मुनि-मण्डलम्।

भगवानपि संप्राप्तः प्रथमोद्दिष्टमाश्रमम्॥ कुमार. ६-३५

इसकी प्रथम पंक्ति का पञ्चम वर्ण ह्रस्व होना चाहिए था "पञ्चमं लघु सर्वत्र" । इसी प्रकार निम्न पद्य में अरीतिमत् दोष है—

गाहन्तां महिषा निपान-सलिलं शृङ्गै र्मुहुस्ताडितं,
छायावद्ध-कदम्वकं मृगकुलं रोमन्थमभ्यस्यतु॥
विस्रब्धैः क्रियतां वराह-पतिभि र्मुस्ताक्षतिः पल्वले,
विश्रामं लभतामिदं च शिथिल-ज्यावन्ध मस्मदधनुः॥शाकु. २-६

यहाँ तृतीय पंक्ति में अनभिहित कर्ता का प्रयोग कर रीति भङ्ग किया गया है ।

व्याहतता—यह अर्थ दोषों के अन्तर्गत है । जहाँ दो परस्पर विरुद्ध-प्रकृति बातों का कथन हो, वहाँ यह दोष होता है । यथा—

विवृण्वती शैलसुतापि भावमङ्गैः स्फुरद्बाल-कदम्बकल्पैः।

साचीकृता चारुतरेण तस्थौ मुखेन पर्यस्तविलोचनेन॥

कुमार. ३-६८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपात्तविरुद्धता—यहाँ शैल (प्रस्तर) का दुहितृत्व और स्नेह के कोमल भावों का अभिव्यञ्जन दोनों उपात्त-विरुद्ध है। प्रस्तर प्रकृति के व्यक्ति में प्रणय विदग्धता ?

न्यूनपदत्व—यह दोष वहाँ होता है जहाँ अर्थ ग्रहण के लिये आवश्यक पद का अभाव हो। किन्तु यह तभी होता है जब प्रकरणादि से प्राप्त किसी पद के द्वारा अर्थ बोध की पूर्णता की संभावना न हो। यह भी नियम है कि जहाँ क्रिया पद न हो वहाँ अस् या भू धातु के प्रथम पुरुष के रूप को प्रयुक्त मान लिया जाय। इन दोनों से भी उद्देश्य की पूर्ति न हो तभी न्यूनपदत्व स्वीकार किया जाता है। यथा—

तस्य संवृतमन्त्रस्य गूढाकारेङ्गितस्य च।

फलानुमेयाः प्रारम्भाः संस्काराः प्राक्तना इव॥ रघु. १-२०

यहाँ अस् धातु के लङ् लकार के प्रथम पुरुष के 'आसन्' पद का अध्याहार कर लेने पर न्यून पदत्व दोष नहीं रहता।

व्याकीर्णता—व्यवहित (अनेक पदों के व्यवधान के अनन्तर) अन्वय होने पर दोष माना जाता है किन्तु यदि वह सापेक्ष अर्थात् किन्हीं अपेक्षित मध्यवर्ती पदों के कारण हो तो दोष नहीं रह जाता। यथा—

अथ प्रजानामधिपः प्रभाते जाया-प्रतिग्राहित-गन्धमाल्याम्।

वनाय पीत-प्रतिवद्ध-वत्सां यशोधनो धेनुमृषे र्मुमोच॥ रघु. २-१

यहाँ 'प्रजानामधिपः' (कर्ता) और 'मुमोच' (क्रिया) के बीच व्यवधान अपेक्षित पदों के कारण है। अतः यहाँ व्याकीर्ण दोष नहीं है।

समाप्तपुनरात्तता—यह दोष वहाँ माना जाता है जहाँ एक बात की समाप्ति हो जाने पर अर्थात् उसके बोधक वाक्य के पूर्ण हो जाने पर भी वही बात फिर से प्रारम्भ कर दी जाय। किन्तु यदि बात नये वाक्य से प्रारम्भ न की गयी हो तो यह दोष नहीं होता। जैसे—

तं शरैः प्रतिजग्राह कालिङ्गो गजसाधनः।

पक्षच्छेदोद्यतं शक्रं शिलावर्षीव पर्वतः॥ रघु. ४-४०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथवा—

न किलानुययु स्तस्य राजानो रक्षितुर्यशः ।

व्यावृत्ता यत् परस्वेभ्यः श्रुतौ तस्करता स्थिता ।। रघु. १-२७

इन दोनों श्लोकों के पूर्वार्ध में ही कथ्य बात की समाप्ति हो गयी है और उत्तरार्ध में वह 'पुनरात्त' ही है फिर भी नये वाक्य से उसका प्रारम्भ न होने के कारण इनमें समाप्त पुनरात्तता दोष नहीं है ।

अरुढार्थता—यह दोष वहाँ होता है जहाँ अर्थ की प्रतीति देर से हो । इसे क्लिष्टता दोष भी कहते हैं—

जैसे—

अथात्मनः शब्दगुणं गुणज्ञः पदं विमानेन विगाहमानः ।

रत्नाकरं वीक्ष्य मिथः स जायां रामाभिधानो हरिरित्युवाच ।।

रघु. १३-१

तथा—

एतावता नन्वनुमेयशोभि काञ्चीगुण-स्थानमनिन्दितायाः ।

कुमार. १-३७

तथा—पितुः पदं मध्यममुत्पतन्ती... ।

उपर्युक्त श्लोकों में "आत्मनः शब्द- गुणम् पदम्", "काञ्चीगुणस्थानम्" और "मध्यमं पितुःपदम्" पदों से क्रमशः आकाश, कटि और अन्तरिक्ष का झटिति बोध हो जाता है क्योंकि ये सव प्रसिद्ध हैं । अतः यहाँ अरुढार्थ या क्लिष्ट दोष न हो कर ये प्रयोग गुण बन गये हैं ।

सन्दिग्धता—यह दोष वहाँ होता है जहाँ किसी प्रयोग के अर्थ का ठीक ठीक ठीक निश्चय करना कठिन होता है किन्तु यदि प्रकरणादि से उसका सरलतया अवगम हो जाय तो वह गुण बन जाता है—

यदनिश्चयकृतं प्रोक्तं सन्दिग्धं तद्गुणीभवेत् ।

भवेद् विशेषावगमो यदि प्रकरणादिभिः ।। सर.कण्ठा. १-९६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उदाहरणार्थ—महीभृतः पुत्रवतोऽपि दृष्टि स्तस्मिन्नपत्ये न जगाम तृप्तिम्। कुमार. १-२७

'तस्मिन्नपत्ये' इस कथन से किसी विशेष अपत्य का बोध न होने से 'पार्वती' यह बोध सन्दिग्ध ही है किन्तु प्रकरण द्वारा इस का ज्ञान होने से कथन का यह प्रकार गुण बन गया है।

अश्लीलता—अश्लील पद भी यदि संवीत (भावना या वासना के कारण संगृहीत) हो तो वह दोष नहीं रह जाता। कहा है

संवीतस्य हि लोकेषु न दोषान्वेषणं क्षमम्।

शिवलिङ्गस्य संस्थाने कस्यासभ्यत्व-भावना॥

इसीलिये—

तस्मै हिमाद्रेः प्रयतां तनूजां यतात्मने योजयितुं यतस्व

योषित्सु तद्वीर्यनिषेकभूमिः सैव क्षमेत्यात्मभुवोपदिष्टम्।

कुमार. ३-१६

संवीत होने के कारण यहाँ 'तद्वीर्यनिषेकभूमिः' में अश्लीलदोष नहीं है।

अधिक- पदत्व—जैसा कि नाम से स्पष्ट है रचना में अनावश्यक शब्दों के निवेश से उत्पन्न होता है। यथा—

स्पृशन् करेणानतपूर्वकायं संप्रस्थितो वाचमुवाच कौत्सः।

रघु. ५-३२

यहाँ 'वाचम्' पद अनावश्यक है। हाँ यदि उस अधिक पद से कोई विशेष प्रतिपत्ति होती है तो अधिक पदविद्यमानता में दोष नहीं होता। जैसे—

कुर्यां हरस्यापि पिनाकपाणेर्धैर्यच्युतिं के मम धन्विनोऽन्ये।

कुमार. ३-१०

यहाँ पिनाकपाणेः पद के अधिक होने पर भी उससे हर की लोकातिशायिता व्यक्त होने के कारण सार्थकता है। अतः यहाँ अधिक पदत्व दोष नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अलङ्कार-विधान

अलंकार-विधान संस्कृत कवियों की रुचि का प्रमुख विषय रहा है। यदि हम संस्कृत के काव्य, नाटक, कथा, चम्पू आदि की सुप्रतिष्ठित कृतियों को देखें तो पता लगेगा कि उनके रचयिताओं का ध्यान कथ्य की अपेक्षा अलंकृति पर अधिक है। वे 'बात' की अपेक्षा बात कहने के ढंग को अधिक महत्त्व देते हैं। पहले 'अलंकार' की कल्पना करते हैं और फिर कथ्य को उसमें बाँधते हैं। इसका परिणाम हुआ, अलंकार-क्षेत्र का ही नहीं, अलंकारों की संख्या का भी निरन्तर-विस्तार। इससे काव्य में कृत्रिमता बढ़ती गयी—यहाँ तक कि उस का काफी बड़ा भाग प्राणहीन ढाँचा बन कर रह गया। इसमें यदि कोई अपवाद है तो वे है कालिदास की कृतियाँ। यह नहीं कि कालिदास में अलंकारों का प्रयोग किसी अन्य महाकवि से कम हुआ है, वैविध्य तो उनमें औरों से कहीं अधिक है। फिर भी अन्तर यह कि जहाँ अन्य अनेक कवियों ने अपनी दृष्टि वाग्-वैचित्र्य और उसके प्रमुख साधनभूत अलंकारों पर केन्द्रित की वहाँ कालिदास का ध्यान प्रेषणीयता अर्थात् प्रभाव की ओर रहा। अलंकार-विशेषत: सादृश्य मूलक अलंकार-उनके इर्द गिर्द इस प्रकार घूमते रहते थे जैसे मधु के चारों ओर मधु मक्खियाँ। कालिदास के लिये ये इतने सहज है कि जैसे कोई मालाकार सामने रखे बहुरंगी और बहुगन्धी पुष्पों के ढेर में से जब जिसे चाहता है, उठाकर माला में गूँथ देता है, वैसे ही कालिदास अपने चतुर्दिक तैरते अलंकारों में जब जिसे चाहते हैं, रचना में पिरो देते है। अलंकार उनके लिये सहज, अनाहूत और अनायास-लब्ध है। इसीलिये बात या कथ्य आगे रहता है और अलंकार उसके पीछे। परिणामस्वरूप उनकी रचनाओं में न तो कृत्रिमता आने पायी है और न बोझिलपन। फिर भी शास्त्रकारों द्वारा वर्णित प्राय: सारे अलंकारों का उनकी कृतियों में प्रयोग मिलता है। मजेदार बात यह है कि कालिदास के समय में इनमें से अनेक अलंकारों का तो न जन्म हो पाया था और न नामकरण।

कालिदास उपमाओं के लिये प्रसिद्ध माने जाते हैं, यद्यपि उनकी रचनाओं में से रघुवंश ही इस मान्यता की सर्वाधिक पुष्टि करता है। 'उपमा कालिदासस्य' जब किसी समीक्षक ने कहा होगा तो संभवत: उसका आशय उपमा के व्यापक अर्थ से रहा होगा—सादृश्य-प्रस्तुति। प्रस्तुत से हूबहूमेल खाता हुआ (सदृश) चित्र प्रस्तुत करने में वह सचमुच अप्रतिम हैं क्योंकि उनका सादृश्य- विधान केवल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपमेय + उपमान + समानगुणता + वाचक (साक्षात् या आक्षिप्त) शब्द की खानापूरी तक सीमित नही है। समान चित्र और प्रभाव की सृष्टि की दृष्टि से भी वह बेजोड़ है। इस वक्तव्य की पुष्टि यथा स्थान की जायगी। प्रारम्भ तो साहित्य शास्त्रियों द्वारा प्रदर्शित पद्धति से ही करना समीचीन होगा। पहले शब्दालंकारों को लें—

अनुप्रास—स्वर की विषमता रहने पर भी पद या पदांश के साम्य को अनुप्रास कहते हैं—अनुप्रासः शब्द- साम्यं वैषम्येऽपि स्वरस्य यत्—सा. द. १०-३। स्वरों की समानता चाहे हो या न हो किन्तु अनेक व्यञ्जन जहाँ एक से मिल जायँ वहाँ अनुप्रास होता है। इसके कई प्रकार होते हैं। यथा (१) छेक—इसमें व्यञ्जनों के समुदाय की एक ही बार उसके स्वरूप और क्रम से समानता होती है। (२) वृत्ति—इसमें अनेक व्यञ्जनों की एक ही प्रकार (केवल स्वरूप से, क्रम से नहीं), अथवा अनेक व्यञ्जनों की अनेक बार आवृत्ति अथवा एक ही वर्ण की एक ही बार आवृत्ति या एक ही वर्ण की अनेक बार आवृत्ति होती है। (३) श्रुति—इसमें तालु या कण्ठ आदि किसी एक स्थान से उच्चरित होने वाले व्यञ्जनों की आवृत्ति होती है (४) अन्त्य—इसमें पहले स्वर के साथ ही यथावस्थव्यञ्जन की आवृत्ति होती है—पद या पाद के अन्त में (५) लाट—इसमें शब्द और अर्थ दोनों की आवृत्ति होती है केवल तात्पर्य भिन्न रहता है—

छेको व्यञ्जनसंघस्य सकृत् साम्यमनेकधा॥
अनेकस्यैकधा साम्यमसकृद् वाप्यनेकधा॥
एकस्य सकृदप्येष वृत्त्यनुप्रास उच्यते॥
उच्चार्यत्वाद् यदेकत्र स्थाने तालुरदादिके।
सादृश्यं व्यञ्जनस्यैव श्रुत्यनुप्रास इष्यते।
व्यञ्जनं चेद् यथावस्थं सहाद्येन स्वेरणतु।
आवर्त्यतेऽ न्त्ययोज्यत्वादन्त्यानुप्रास इष्यते॥
शब्दार्थयोः पौनरुक्त्यं-भेदे तात्पर्यमात्रतः।
लाटानुप्रास इत्युक्तः। सा. द. १०-३ से ७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कालिदास ने कहीं भी यत्न पूर्वक अनुप्रासों की संयोजना नहीं की फिर भी उनकी कृतियों में अनायास अनुप्रास पद पद पर देखे जा सकते हैं। यथा—

वाचं न मिश्रयति यद्यपि मद्वचोभिः,
कर्णंददात्यभिमुखं मयि भाषमाणे।

कामं न तिष्ठति मदानन-संमुखीना,
भूयिष्ठमन्य-विषयानतु दृष्टिरस्याः ॥ शाकु. १-२७

इसमें छेकानुप्रास और वृत्त्यनुप्रास देखे जा सकते हैं। ऐसे ही निम्न श्लोक के पूर्वार्ध में वृत्ति और श्रुति अनुप्रास हैं और उत्तरार्ध में केवल श्रुत्यनुप्रास। पूर्वार्ध में वृत्ति और श्रुति के एक वाचक में अनुप्रविष्ट हो जाने से संकर भी हो गया है—

तीव्राघात-प्रतिहततरुः स्कन्धलग्नैकदन्तः
पादाकृष्ट-व्रततिवलयासङ्ग-संजातपाशः।

मूर्तोविघ्नस्तपस इव नो भिन्न-सारङ्ग- यूथः,
धर्मारण्यं प्रविशति गजः स्यन्दनालोकभीतः। शाकु. १-२९

इसी प्रकार शाकुन्तल १-३० में वृत्यनुप्रास, २-८ में श्रुत्यनुप्रास और वृत्यनुप्रास हैं और २-१० में भी इन्हें देख सकते हैं। लाटानुप्रास का अच्छा उदाहरण है—

इदमनन्यपरायणमन्यथा हृदयसंनिहिते हृदयं मम।

यदि समर्थयसे मदिरेक्षणे मदनवाण-हतोऽपिहतः पुनः।

वही ३-१६

यहाँ हृदय-हृदय और हतः हतः में लाटानुप्रास है। साथ ही प्रथम पंक्ति में न्य और द्वितीय मे द् और म् की आवृत्तियाँ दर्शनीय हैं। छेक, वृत्ति और श्रुति तीनों का संगम निम्न श्लोक मे हुआ है—

किं तावद् व्रतिनामुपोढ-तपसां विघ्नैस्तपो दूषितं,

धर्मारण्यचरेषु केनचिदुत प्राणिष्वसच्चेष्टितम्।

आहोस्वित् प्रसवो ममापचरितै र्विष्टम्भितो वीरुधाम्।

इत्यारूढ-बहु-प्रतर्कमपरिच्छेदाकुलं मे मनः ॥ शाकु. ५-९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

५-१३, २७, ६-२३, ७-९, ७-१५ तथा ७-२५ में छेक और वृत्ति अनुप्रास स्पष्ट हैं।

यमक—विश्वनाथ ने यमक की परिभाषा यों दी है—

सत्यर्थे पृथगर्थायाः स्वरव्यञ्जन-संहतेः।

क्रमेण तनैवावृत्तिर्यमकं विनिगद्यते॥ सा. द. १०-८

यमक में पदों की आवृत्ति होती है जिसमें कभी एक पद सार्थक रहता है और एक निरर्थक, कभी दोनों सार्थक और कभी दोनों निरर्थक होते हैं। रघुवंश के नवम सर्ग में प्रथम ५४ छन्दों में से प्रत्येक में यमक की छटा है, साथ ही अनुप्रास भी प्रायः आ गये हैं।

दशरथः प्रशशास महारथो यमवतामवतां च धुरिस्थितः। १०-१

इसमें 'मवता' की आवृत्ति है जिसमें दोनों पद निरर्थक हैं।

अभवदस्य ततो गुणवत्तरं सनगरं नगरन्ध्रकरौजसः। वही २

इस श्लोक के नगर (आवृत्त पद) में प्रथम सार्थक और द्वितीय निरर्थक है। निम्न श्लोक में प्रथम निरर्थक और द्वितीय पद सार्थक है—

किसलयप्रसवोऽपि विलासिनां मदयिता दयिता-श्रवणार्पितः।

रघु. ९-२०

प्रथम 'दयिता' पद निरर्थक किन्तु द्वितीय सार्थक है। दोनों सार्थक पदों का दर्शन इस छन्द में है—

न खलु शोभयति स्मवन-स्थलीं न तिलकस्तिलकः प्रमदामिव।

श्लेष—कवियों ने प्रायः श्लेष अलंकार का प्रयोग पण्डित्य प्रदर्शन के लिये किया है। श्री हर्ष का 'चेतोनलङ्कामयते मदीयम्' यह त्र्यर्थक पद सुप्रसिद्ध है। इसमें अर्थ व्यक्ति के लिये किसी प्रकार की खींच तान नहीं करनी पड़ती कालिदास में भी यह सहज रूप से आ गया है। श्लेष में अनेकार्थक पदों के द्वारा अनेकार्थ प्रतीति होती है—श्लिष्टैः पदैरनेकार्थाभिधाने श्लेष इष्यते। श्लेष शब्द-मूलक भी होता है और अर्थाश्रित भी। इसीलिये इसकी गणना दोनों प्रकार के अलंकारों में की जाती है। अर्थ भेद के कारण भिन्न भिन्न होते हुए भी समान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उच्चारण के कारण जहाँ शब्द एकरूप प्रतीत होते हैं, वहाँ शब्द श्लेष होता है। अर्थ श्लेष में एक वाक्य अनेकार्थता को प्रकट करता है। अर्थ श्लेष का सुन्दर प्रयोग है निम्न छन्द में—

अध्याक्रान्ता वसतिरमुनाप्याश्रमे सर्वभोग्ये,
रक्षायोगादयमपि यशः प्रत्यहं संचिनोति।

अस्यापि द्यां स्पृशति वशिनश्चारण-द्वन्द्वगीतः,
पुण्यः शब्दो मुनिरिति मुहुः केवलं राजपूर्वः। शाकु. २-१४

इसी प्रकार शाकु. ६-२० और ७-११ में अनायास ही श्लेष आ गया है। और रघुवंश ११-२० का यह श्लोक तो अति प्रसिद्ध है—

राममन्मथ-शरेण ताडिता दुःसहेन हृदये निशाचरी।
गन्धवद्-रुधिर-चन्दनोक्षिता जीवितेश-पदवीं जगाम सा।

रघु. ११-२०

उपमा—उपमा में रुपाकार, गुण और प्रभाव की दृष्टि से ऐसा अप्रस्तुत चित्र उपस्थित किया जाता है जिससे वर्ण्य या प्रस्तुत का स्वरूप और अधिक स्पष्ट तथा प्रभावकारी हो जाता है। यह सादृश्य पर आश्रित होती है। इसमें उपमान और उपमेय (वर्ण्य) में लिंग एवं वचन भी समान होने चाहिये। कालिदास उपमाओं के सम्राट् है। उनकी उपमायें हर कसौटी पर खरी उतरती हैं। कुछ नमूने—

तस्याः खुरन्यास-पवित्रपांसुमपांसुलानां धुरि कीर्तनीया।
मार्गं मनुष्येश्वर-धर्मपत्नी श्रुतेरिवार्थं स्मृतिरन्वगच्छत्। रघु. २-२

यहाँ धर्मपत्नी उपमेय और स्मृति उपमान है। अनुगमन सामान्य धर्म है। अनुगमन है पवित्रपांसु का जिसकी उपमा श्रुति के अर्थ से दी गयी है। पांसु की महत्ता का आधार है नन्दिनी के खुर और अर्थ की पवित्रता या प्रामाणिकता का आधार है उसका श्रुति (वेदों) जन्य होना। स्वयं मान्य होकर भी रानी के विशिष्ट महत्त्व का कारण है उसका नृपधर्म पत्नी होना। इसी प्रकार स्मृति के महत्त्व का कारण है उसका श्रुत्यनुगामिनी होना। यह आदर्श उपमा है। वाचक शब्द के भी उपस्थित रहने के कारण यहाँ पूर्णोपमा है। ऐसी ही एक अन्य पूर्णोपमा—

पुरस्कृता वर्त्मनि पार्थिवेन, प्रत्युद्गता पार्थिव-धर्मपत्न्या।
तदन्तरे सा विरराज धेनु र्दिनक्षपा-मध्यगतेव सन्ध्या। रघु. २-२०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहाँ धेनु की उपमा सन्ध्या से दी गयी है। सन्ध्या के साथ उसका वर्णगत साम्य भी है। धेनु पाटला है (स पाटलायां गवि तस्थिवांसम्) और सन्ध्या भी। दोनों पवित्र हैं। दोनों को अर्ध्य अर्पित किया जाता है। सन्ध्या दिन के द्वारा, तो धेनु राजा के द्वारा पुरस्कृत है। धेनु पार्थिव- धर्मपत्नी के द्वारा प्रत्युद्गत है तो सन्ध्या क्षपा के द्वारा। दिन और राजा में साम्य है तेजस्विता के कारण तो क्षपा और सुदक्षिणा में साम्य है शान्ति और शीतलता के कारण। उपमा के साथ यहाँ अनुप्रास की छटा भी मनोरम है।

और—

पयोधरीभूत- चतुःसमुद्रां जुगोप गोरुपधरामिवोर्वीम्। रघु. २-३

इसमें उपमा के साथ श्लेषोपजीवी रुपक भी है। ऐसे ही

अवाकिरन् वाललताः प्रसूनैराचारलाजैरिव पौरकन्याः। वही १०

इसमें बाललता और कन्याओं तथा प्रसूनों और आचार लाजों में कितना साम्य है। कोमलता, पवित्रता और वर्ण सारुप्य सभी कुछ गम्यमान है यहाँ—

प्रणम्य चानर्च विशालमस्याः शृङ्गान्तरं द्वारमिवार्थ-सिद्धेः।

वही २१

सक्ताङ्गुलिः सायक-पुङ्ख एव चित्रार्पितारम्भ इवावतस्थे।

वही ३१

राजा स्वतेजोभिरदह्यतान्तर्भोगीव मन्त्रौषधिरुद्ध वीर्यः। वही ३२

उपमायें कालिदास के ग्रन्थों में माधवी की डालों पर खिले असंख्य शुभ्र पुष्पों के समान हैं। उपमाओं का सौन्दर्य स्वतन्त्र ग्रन्थ की अपेक्षा करता है। कुमार संभव में १-२५, २८, २-२, ६-२१, ८-३७, ५३, ५९, ६९ मेघदूत १-५९, २-१ शाकु. में १-१६, २०, २-७, १०,१७, ३-७, १२, १८, २१, २४, ४-१, ४, ११, १८, २१, ५-११, २१, ६-६, ९, ११, २०, २७, ७-११, १५, १७, १८, २८, ३०, ३१ आदि विशेष रूप से द्रष्टव्य हैं। कितनी सहजता से उपमा ने मण्डित कर दिया इस कथन को—

निषिञ्चन् माध्वीं लक्ष्मीं लतां कौन्दीं च लासयन्।

स्नेह- दाक्षिण्ययोर्योगात् कामीव प्रतिभाति मे। विक्रमो. ३-४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य दर्पणकार ने उपमा में पूर्णा के छै और लुप्ता के इक्कीस इस प्रकार कुल मिलाकर सत्ताइस भेद मानते हैं। इनमें से जिस उपमा में साधारण धर्म का लोप नहीं होता और मिश्र अर्थात् एक होने के स्थान पर भिन्न होता है वहाँ या तो बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव रहता है या शब्द मात्र से भेद रहता है किन्तु अर्थ में भिन्नता नहीं रहती। कहा है—

एकरुपः क्वचित् क्वापि भिन्न-साधारणो गुणः।

भिन्ने बिम्बानुविम्बत्वं शब्दमात्रेण वा भिदा। सा. द. १०-२३

इनमें बिम्बानुबिम्बत्व का उदाहरण है—

भल्लापवर्जितै स्तेषां शिरोभिः श्मश्रुलैर्महीम्।

तस्तार सरघाव्याप्तैः स क्षौद्रपटलैरिव॥ रघु. ४-६३

यहाँ सिर उपमेय, क्षौद्रपटल उपमान और इव वाचक शब्द है। यहाँ साधारण धर्म भिन्न है, एक नहीं। क्षौद्र पटलों में 'सरघाव्याप्तत्व है और मुखों में 'श्मश्रुलत्व' फिर भी श्मामत्वादि साधर्म्य से सरघा और श्मश्रु आपस में विम्व-प्रतिविम्वभाव से प्रतीत होते हैं। बिम्बानुबिम्ब भाव वहाँ होता है जहाँ सादृश्य शब्दों से न कहा हो। केवल ध्यान देने से ही प्रतीत हो। बिम्ब प्रतिबिम्ब रुप सादृश्य का एक उदाहरण यह भी है—

पाण्ड्योऽ यमंसार्पितलम्बहारः क्लृप्ताङ्गरागो हरिचन्दनेन।

आभाति वालातपरक्तसानुः सनिर्झरोद्गार इवाद्रिराजः।रघु. ६-६०

यहाँ बिम्बभूत राग और हार और प्रतिबिम्ब रूप वालातप में लम्बायमानत्व और शुक्लत्व की समानता है। अतः इनमें अभेद प्रतीत होता है। इसी प्रकार अंगराग तथा वालातप में विस्तृतत्व और रक्त वर्णत्व की समानता है जिससे इनमें भी अभेद की प्रतीति हो रही है। इस प्रकार हार + निर्झर + एवं अंगराग + वालातप ये राजा और पर्वत की उपमा में विम्बानुविम्वभाव से साधारण धर्म का काम कर देते हैं। कहीं सादृश्य व्यञ्जक साधारण धर्म अनुगामी उपमेय और उपमान में निर्बाध समान रूप से लागू होने वाला होता है और उसे एक ही शब्द से प्रस्तुत किया जाता है। निम्न श्लोक इसका उदाहरण है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रभा- महत्या प्रभयेव दीप स्त्रिमार्गयेव त्रिदिवस्य मार्गः ।

संस्कारवत्येव गिरा मनीषी तया स पूतश्च विभूषितश्च ॥

कुमार. १-२८

यहाँ पूतत्व और विभूषितत्व साधारण धर्म हैं । ये एक ही बार कहे गये हैं किन्तु वे उपमानभूत दीप, त्रिदिव मार्ग और मनीषी तथा उपमेय भूत हिमालय दोनों के साथ समन्वित हो गये हैं ।

बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव रूप उपमा कालिदास में अन्यत्र भी देखी जा सकती है । यथा मेघदूत में—

विद्युद्वन्तं ललित-वनिताः सेन्द्रचापं विचित्राः

संगीताय प्रहत मुरजाः स्निग्ध-गम्भीर-घोषम् ।

अन्तस्तोयं मणिमय-भुवस्तुङ्गमभ्रंलिहाग्राः,

प्रासादास्त्वां तुलयितुमलं यत्र तैस्तैर्विशेषैः । मेघ० २-१

यहाँ विद्युत् और वनिता आदि का ग्रहण मेघ और प्रासाद में विशिष्टता लाने वाले धर्म के रूप में ही किया गया है । इसलिये कवि ने 'उन उन विशेषों' द्वारा, इस प्रकार उन्हें विशेष अर्थात् धर्म कहा है । ये अनुगामी धर्म नहीं कहे जा सकते क्योंकि इनका निर्देश एक ही शब्द द्वारा न होकर अलग अलग किया गया है । ये शुद्ध सामान्य स्वरूप भी नहीं है क्योंकि इनमें एकार्थता नहीं है । इसलिये इनमें विम्ब-प्रतिबिम्ब भाव ही हो सकता है । इन्हें जो साधारण धर्म कहा है वह इसलिये कि इनकी प्रतीति अभिन्न रूप से ही होती है । कहीं कहीं अन्य निमित्तों से भी अभेद की प्रतीति होती है । जैसे—

द्वेष्योऽपि संमतः शिष्ट स्तस्यार्तस्य यथौषधम् ।

त्याज्यः दुष्टः प्रियोऽप्यासीदङ्गुलीवोरगक्षता ॥ रघु. १-२८

यहाँ सर्पदंष्ट अङ्गुली और दुष्ट इन दोनों में एक- कार्यकारित्व के आधारपर अभेद है । द्वेषकारित्वादि गुण दोनों में समान रूप से रहते हैं ।

उपमालंकार साधारण धर्म के कारण बनता है । धर्मी चार होते हैं—जाति, गुण, क्रिया और द्रव्य क्योंकि शब्दों की प्रवृत्ति ही चतुष्टयी होती है । तो धर्मी में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहने वाले धर्म भी चार प्रकार के ही होंगे। इसलिये इन चार के अतिरिक्त अन्य किसी को साधारण धर्म नहीं माना जा सकता।

सदयं बुभुजे महाभुजः सहसोद्वेगमियं व्रजेदिति।

अचिरोपनतां स मेदिनीं नवपाणिग्रहणां वधूमिव। रघु. ८-७

इसमें 'भोगना' यह क्रियारूप साधारण धर्म है। इसी प्रकार

वैदेहि पश्यामलयाद् विभक्तं मत्सेतुना फेनिलमम्बु-राशिम्।

छायापथेनेव शरत्प्रसन्नमाकाश माविष्कृत-चारु-तारम्॥

रघु. १३-२

इस श्लोक में 'विभक्तम्' क्रियारूप है। रामसेतु और छायापथ (आकाशगंगा) द्रव्य रूप, फेन और तारे जाति रूप एवं प्रसन्नता या प्रसाद गुण रूप से उपनिबद्ध है।

उपमा ऐसे दो पदार्थों के साधर्म्य में भी होती है जिनमें दोनों ही प्रकृत होते हैं या दोनों ही अप्रकृत। निम्न श्लोक में दोनों प्रकृत हैं—

सदयं वुभुजे महाभुजः सहसोद्वेगमियं ब्रजेदिति।

अचिरोपनतां स मेदिनीं नवपाणि-ग्रहणां वधूमिव॥ रघु. ८-७

यहाँ नवपाणिग्रहणा का उपमान अचिरोपनता है। अतः दोनों ही प्रकृत हैं। फलतः सदय भोग में दोनों का ही समुच्चय है। किन्तु

स्वरेण तस्याममृतस्रुचेव प्रजल्पितायामभिजात-वाचि।

अप्यन्यपुष्टा प्रतिकूल-शब्दा श्रोतुर्वितन्त्रीरिव ताड्यमाना।

कुमार. १-४५

यहाँ पार्वती प्रकृत है और कोयल तथा वितन्त्री दोनों उनकी अपेक्षा अप्रकृत। इन दोनों का एक ही प्रतिकूल- शब्दत्व रूपी धर्म में समुच्चय कर दिया गया है। इस प्रकार उक्त दोनों श्लोकों में समुच्चित उपमा है।

उपमा का एक रूप जिसे 'कल्पितोपमा' कहा जा सकता है, कालिदास में मिलता है। यह वहाँ होती है जहाँ सादृश्य की दृढ़ता के लिये साधर्म्य कवि द्वारा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी प्रतिभा से कल्पित किया जाता है। यह साधर्म्य कहीं उपमान में और कहीं उपमेय में कल्पित होता है। उपमान में कल्पित सादृश्य का एक उदाहरण—

आवर्जिता किञ्चिदिव स्तनाभ्यां वासो वसानातरुणार्करागम्।
संजात- पुष्पस्तवकाभिनम्रा संचारिणी पल्लविनी लतेव॥

कुमार. ३-५४

यहाँ उपमान लता में संचारिणीत्व धर्म कल्पित है। अत: यह कल्पितोपमा है। भोज ने सरस्वती- कण्ठाभरण में उपमा के अनेक भेद बतलाते हुए कहा है—

वाक्योपमा तु या तत्र द्वैविध्यं साऽपिगच्छति।
एक पदार्थयोः साम्ये परा वाक्यार्थयोर्मिथः। ४-१३

और फिर वाक्यार्थ- साम्य वाली के दो भेद-एकेव शब्दिका और नैकेव शब्दिका माने हैं। उन्होंने एकेव शब्दिका का उदाहरण पूर्वोक्त 'पाण्ड्योऽयमंसार्पित लम्वहार:' आदि और अनेकेवशब्दा का उदाहरण-

दिने दिने सा परिवर्धमाना लब्धोदया चान्द्रमसीव लेखा।
पुपोष लावण्यमयान् विशेषान् ज्योत्स्नान्तराणीव कलान्तराणि॥

कुमार. १-२५

यह दिया है। शायद ही कोई लक्षणग्रन्थकार है जिसने उपमा के प्रकरण में कालिदास के किसी न किसी पद्य को उद्धृत नहीं किया। उदाहरणार्थ- केशव मिश्र ने 'अलंकार शेखर' में निन्दोपमा का (जहाँ निन्दा द्वारा उपमान का प्रतिक्षेप हो) यह उदाहरण प्रस्तुत किया है—

नागेन्द्र-हस्तास्त्वचिकर्कशत्वादेकान्त-शैत्यात् कदली-विशेषः।
लब्ध्वाऽपि लोके परिणाहिरूपं जातास्तदूर्वोरुपमानबाह्याः।

कुमार. १-३६

उत्प्रेक्षा—उपमा के समान कालिदास उत्प्रेक्षाओं में भी अप्रतिम है। उपमेय में उपमान की संभावना का नाम है उत्प्रेक्षा। संभावना का अर्थ है आहार्य ज्ञान अर्थात् किसी वस्तु के वास्तविक रूप को जानते हुए उसमें अन्य वस्तु की कल्पना करना। कभी कभी किसी वस्तु को देखकर उसके यथार्थ रूप के विषम में सन्देह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता है । उस सन्देह में जब एक कोटि उत्कृष्ट होती है तो उत्प्रेक्षालंकारहोता है किन्तु उसमें कवि की प्रतिभा का योग होना आवश्यक है । दूर से किसी खम्भे को देखकर सन्देह होता है कि यह स्तम्भ है या पुरुष । सन्देह की कई कोटियाँ होती है । जब दोनों कोटियाँ समबल होती है तो सन्देह, जब विपरीत कोटि प्रबल होती है तो भ्रान्ति अलंकार होता है । संभावना में एक कोटि उत्कृष्ट रहती है किन्तु निश्चय तक नहीं पहुँचती । उपमान कोटि ही प्रबल रहती है और उपमेय ज्ञात रहता है । संशय कल्पित मात्र रहता है । कहा है—भवेत् संभावनोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य परात्मना । सा. द. १०-४० । यथा—

ज्ञाने मौनं क्षमा शक्तौ त्यागे श्लाषाविपर्ययः ।

गुणा गुणानुबन्धित्वात्तस्य सप्रसवा इव । रघु. १-२२

यहाँ गुणों में सप्रसवत्व गुण उत्प्रेक्षित है । ऐसे ही

सैषा स्थली यत्र विचिन्वता त्वां भ्रष्टं मया नूपुरमेकमुर्व्याम् ।

अदृश्यत त्वच्चरणारविन्द-विश्लेषदुःखादिव बद्ध-मौनम् ।

रघु. १३-२३

यहाँ मौन भाव में दुःख रूप गुण उत्प्रेक्षित है हेतुरूप में । अतः यहाँ हेतूत्प्रेक्षा है ।

बालेन्दु-वक्राण्यविकासभावाद् वभुः पलाशान्यतिलोहितानि ।

सद्यो वसन्तेन समागतानां नखक्षतानीव वनस्थलीनाम् ।

कुमार. ३-२९

यहाँ वक्रत्व और लोहितत्व गुणों के कारण पलाशकुसुमों में सद्यः कृत नखक्षतों की संभावना की गयी है । यहाँ उक्त- विषया स्वरूपोत्प्रेक्षा है । इसी का अन्य उदाहरण —

कुबेर-जुष्टां दिशमुष्णरश्मौ गन्तुं प्रवृत्ते समयं विलङ्घ्य ।

दिग् दक्षिणा गन्धवहं मुखेन व्यलीक-निःश्वासमिवोत्ससर्ज ॥

कुमार. ३-२५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऊपर सारे उदाहरण वाच्योत्प्रेक्षा के हैं जिनमें मन्ये, शङ्के, नूनम् और इवादि पदों के द्वारा भी संभावना व्यक्त की जाती है । मन्ये के समान इव शब्द भी वितर्क का प्रतिपादक होकर आता है, सादृश्य का बोधक होकर नहीं । यथा—

वृत्तानुपूर्वे न च नातिदीर्घे जङ्घे शुभे सृष्टवतस्तदीये ।

शेषाङ्ग-निर्माणविधौ विधातुर्लावण्य उत्पाद्य इवास यत्नः ।

कुमार. १-३५

यहाँ इव शब्द वितर्क मात्र का प्रतिपादक बनकर रह गया है । उत्प्रेक्षा का, जिसे कण्ठाभरण ने उत्प्रेक्षावयव कहा है, एक सुन्दर उदाहरण यह है—

अङ्गुलीभिरिव केशसंचयं संनिगृह्य तिमिरं मरीचिभिः ।

कुड्मलीकृत-सरोज-लोचनं चुम्बतीव रजनी-मुखं शशी ॥

कुमार. ८-८३

यों भी कवि की यह कल्पना उसकी तीव्र प्रकृति-संवेदना का प्रमाण है । इस श्लोक को वामन ने भी काव्यालंकार सूत्र में उत्प्रेक्षावयव ही कहा है । वैसे इसमें और उत्प्रेक्षा में विशेष अन्तर नहीं है । उत्प्रेक्षावयव में अवयव का अर्थ है आरम्भक (सूत्र ३२) । यहाँ भी उपमा और रुपक से अनुप्राणित श्लेष उत्प्रेक्षा का उपपादक है । इसीलिये यहाँ उत्प्रेक्षावयव है ।

ऊपर कहा गया है कि कालिदास उपमा के समान उत्प्रेक्षा के भी चतुर शिल्पी है । कुमार संभव का तो प्रारम्भ ही उत्प्रेक्षा से हुआ है । इसके १-१, १-३९, १-३४, ३-२२, ३-२७, ३-२९, ५-१३, ७-३, ७-६७, ८-३३, ८-३४, ८-३५, ८-३६, ८-५६, ८-६०, ८-७४ छन्द, अगिज्ञानशाकुन्तल के १-९, १-२०, १-२५, २-२, २-९, ४-२, ४-१२, ५-२३, ६-४, ६-२१, ६-२५ और ७-८ मेघदूत १-३० आदि उत्प्रेक्षा के सुन्दर उदाहरण हैं । रघुवंश में तो उत्प्रेक्षाओं का आबार है ही ।

अतिशयोक्ति—अध्यवसाय के सिद्ध होने पर अतिशयोक्ति अलंकार होता है । उपमेय का निगिरण करके उपमान के साथ उसके अभेद ज्ञान को अध्यवसाय कहते हैं । उत्प्रेक्षा में अध्यवसाय साध्य रहता और अतिशयोक्ति में सिद्ध । इसके पाँच रूप होते हैं—(१) वास्तविक भेद रहने पर भी अभेद बतलाना (२) वास्तविक सम्बन्ध रहने पर भी असम्बन्ध या (३) सन्बन्ध न रहते हुए भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्बन्ध बतलाना (४) अभेद रहने पर भी भेद बतलाना और (५) कार्यकरण सम्बन्ध का व्यत्यय । सम्बन्ध होते हुए भी असम्बन्ध विक्रमोर्वशीय के निम्नश्लोक में वर्णित है—

अस्याः सर्ग-विधौ प्रजापतिरभूच्चन्द्रोनुकान्तिप्रदः,
शृङ्गारैकरसः स्वयं नु मदनो मासो नु पुष्पाकरः ।
वेदाभ्यासजडः कथन्नु विषय-व्यावृत्त-कौतूहलो,
निर्मातुं प्रभवेन्मनोहरमिदं रुपं पुराणो मुनिः । विक्रमो. १-१०

उर्वशी के निर्माण में पुराण प्रजापति का सम्बन्ध है, फिर भी यहाँ असम्बन्ध बतलाया गया है । इसी प्रकार—

पुष्पं प्रवालोपहितं यदि स्यान्मुक्ताफलं वास्फुट-विद्रुमस्थम् ।
ततोऽनुकुर्याद्विशदस्य तस्य ताम्रौष्ठ-पर्यस्तरुचः स्मितस्य ।

कुमार. १-४४

यहाँ असम्बन्ध में सम्बन्ध की कल्पना है । संभावनया सम्बन्ध है । इसे 'यद्यर्थस्य कल्पनम्' भी कहा है—अर्थात् यदि के द्वारा कल्पना करना । मल्लिनाथ ने इसे प्रतीयमाना अतिशयोक्ति कहा है । उनके मत से पुष्प और मुक्ताफल जो उपमान है उन्हें केवल प्रकृत को उत्कर्ष प्रदान करने के लिये उपमेय बना दिया गया है । कहा है—उपमानस्याक्षेप उपमेयता कल्पनं वा प्रतीपः । निम्नश्लोक में सम्बन्ध होने पर भी असम्बन्धरुपा अतिशयोक्ति है जिसका प्रयोग कुचद्वय में पीवरता के आधिक्य- प्रदर्शन के लिये किया गया है—

अन्योन्यमुत्पीडयदुत्पलाक्ष्याः स्तनद्वयं चारु तथा प्रवृद्धम् ।
मध्ये यथा श्याममुखस्य तस्य मृणालसूत्रान्तरमप्यलभ्यम् ॥

कुमार. १-४०

इसके अतिरिक्त अभिज्ञानशाकुन्तल के १-३०, २-६, ९, ६-३, १९ और ७-३० आदि में भी अतिशयोक्ति देखी जा सकती है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थान्तरन्यास—कालिदास में अर्थान्तरन्यासों की भरमार है। जहाँ समानधर्मता या विरुद्धधर्मता के विचार से सामान्य का विशेष के द्वारा या विशेष का सामान्य के द्वारा समर्थन किया जाता है वहाँ अर्थान्तरन्यास होता है।

सामान्यं वा विशेषो वा तदन्येन समर्थ्यते।

यत्तु सोऽ र्थान्तरन्यासः साधर्म्येणेतेरण वा। का. प्र. १०-१०९

विशेष का सामान्य के द्वारा समर्थन—

दिवाकराद् रक्षति यो गुहासु लीनं दिवाभीत मिवान्धकारम्।

क्षुद्रेऽपि नूनं शरणं प्रपन्ने ममत्वमुच्चैः-शिरसां सतीव।

कुमार. १-१२

ऐसा ही अन्य उदाहरण

अनन्तरत्न-प्रभवस्य यस्य हिमंन सौभाग्य-विलोपि जातम्।

एको हि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः॥

कुमार. १-३

कुमार संभव के ३-२८, ४-५, ५-५, ८-५७ और ६५ आदि में अतिशयोक्ति द्रष्टव्य है। मेघदूत के १-५, ६, ८, १० तथा २-३७, ३८ आदि में भी इसका प्रयोग है। ऐसे ही शाकुन्तल के १-१४, १६, १७, १९, २५, २-१, ४-३, १६, ५-१२, १८, २२, २४, २८, ६-१०, ३१ और ७-१३ भी इससे अलंकृत हैं। एक उदाहरण—

भवन्ति नम्रास्तरवः फलोद्गमैर्नवाम्बुभिर्दूरविलम्बिनो घनाः।

अनुद्धताः सत्पुरुषाः समृद्धिभिः स्वभाव एवैष परोपकारिणाम्॥

शाकु. ५-१२

यहाँ भी विशेष का सामान्य के द्वारा समर्थन है।

अप्रस्तुतप्रशंसा—अप्रस्तुत अर्थात् अप्राकरणिक के कथन के द्वारा प्रस्तुत की प्रतीतिकराने का नाम है अप्रस्तुतप्रशंसा—अप्रस्तुतप्रशंसा या सा सैव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रस्तुताश्रया । का. प्र. १०-९८ । यह पाँच प्रकार की होती है । कुवलायनन्द में कहा है—

कार्ये निमित्ते सामान्ये विशेषे प्रस्तुते सति।
तदन्यस्य वचस्तुल्ये तुल्यस्येति च पञ्चधा।

निम्नलिखित उदाहरण में पार्वती के केशपाश का वर्णन प्राकरणिक है किन्तु उसके सौन्दर्य की प्रतीति कराने के लिये चमरियों के बालों का कथन किया गया है—

लज्जा तिरश्चां यदि चेतसि स्यादसंशयं पर्वतराजपुत्र्याः।
तं केशपाशं प्रसमीक्ष्य कुर्युर्वालप्रियत्वं शिथिलं चमर्यः।

कुमार १-४८

रघुवंश से एक अन्य उदाहरण। इसमें कहना यह है कि कभी कभी ईश्वरेच्छा से हितकर वस्तु हानि कर और हांनिकर वस्तु हितकर बन जाती है। सामान्य यहाँ प्रस्तुत है किन्तु अभिधान किया है विशेष (विष और अमृत) का। इसमें सामान्य व्यङ्ग्य है।

स्रगियं यदि जीवितापहा हृदये किं निहिता न हन्ति माम्।
विषमप्यमृतं क्वचिद् भवेदमृतं वा विषमीश्वरेच्छया।

रघु. ८-४६

वस्तुतः यहाँ अप्रस्तुतप्रशंसामूलक अर्थान्तरन्यास है। सरस्वती कण्ठाभरण के अनुसार अस्तोतव्य की स्तुति का नाम अप्रस्तुत प्रशंसा है जो हेतुपूर्वक होने पर वाच्या अन्यथा प्रतीयमाना होती है और धर्मार्थकामों में किसी का बोध कराती है—

अप्रस्तुत-प्रशंसा स्यादस्तोतव्यस्य या स्तुतिः।
कुतोऽपि हेतोर्वाच्या च प्रत्येतव्या च सोच्यते॥ ४-५४

'अहिंसा परमोधर्मः' इस धर्म का वाध करने वाली अप्रस्तुत प्रशंसा का उदाहरण यह है। यहाँ अनेक हेतुओं के द्वारा अपने अभिप्राय का साधन करने के लिये 'ईदृग्विनोदःकुतः' कहकर मृगया का अभिनन्दन किया गया है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेदश्छेद-कृशोदरं लघु भवत्युत्थान-योग्यं वपुः ।

सत्त्वानामपि लक्ष्यते विकृतिमच्चित्तं भयक्रोधयोः ।

उत्कर्षः स च धन्विनां यदिषवः सिध्यन्ति लक्ष्ये चले,

मिथ्यैव व्यसनं वदन्ति मृगयामीदृग्विनोदः कुतः ॥ शाकु. २-५

इसी प्रकार मेघदूत २-३४, ३६, तथा शाकुन्तल १-१०, १४, १६, २०, २१, २६, ३-२, ६, ११, ४-१७, १८, ५-१, २, ३, ६, १७, २२, २४, २८, ६-१, २९, ३१ एवं ७-१७, ३० में भी अप्रस्तुत प्रशंसा है ।

अर्थापत्ति—दण्डापूपिकयान्यार्थागमोऽर्थापत्तिरिष्यते । सा. द. १०-८३ । चूहे ने डण्डा तक खा डाला । यह कहने से स्वतः यह बात सिद्ध होगी कि जब वह इतनी कड़ी वस्तु खा सकता है तो उसने उसके पास रखे अपूप तो अवश्य ही खा लिये होंगे । यह दुष्कर कार्य की सिद्धि से सुकर कार्य की सिद्धि होने के प्रसंग में होती है । यथा—

विललाप स वाष्प-गद्गदं सहजामप्यपहायधीरताम् ।
अतितप्तमयोपि मार्दवं भजते कैव कथा शरीरिणाम् ॥

रघु. ८-४३

यहाँ अयस् के मुलायम पड़ जाने पर शरीर का दुर्बलता प्राप्त करना सुगमतया अर्थापन्न है । और इस श्लोक में भी अर्थापत्ति है—

यद्दृच्छया त्वं सकृदप्यवन्ध्ययोः,

पथि स्थिता सुन्दरि ! यस्य नेत्रयोः ।

त्वया विना सोऽपि समुत्सुको भवेत्

सखीजनस्ते किमुतार्द- सौहृदः । विक्रमो. १-११

यहाँ सामान्य पथिक तक के प्रभावित हो जाने पर सखियों का समुत्सुक हो जाना अर्थापन्न है । तथा—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिताशुंका मङ्गलमात्रभूषणा पवित्रदूर्वाङ्कुरलाञ्छितालका।

व्रतापदेशोज्झितगर्ववृत्तिना मयि प्रसन्ना वपुषैव दृश्यते।

विक्रमो. ३-१२

यहाँ वपुष् से प्रसन्न दिख रही है तो मन से भी मुझ पर प्रसन्न होगी ही, यह बात अर्थापन्न होने से अर्थापत्ति अलंकार है । यों यहाँ पर पूर्वार्ध भाग उत्तरार्ध में कारण है, इसलिये काव्यलिङ्ग भी है क्योंकि 'हेतोर्वाक्य- पदार्थत्वे काव्यलिङ्गं निगद्यते' फिर केवल 'सितांशुका' मात्र से व्रत-चरण प्रतीत हो सकने पर भी दो विशेषण दिये हैं, वे समुच्चयालंकार की सृष्टि करते हैं। कहा है—समुच्चयोऽयमेकस्मिन् सति कार्यस्य साधके-खले कपोतिकान्यायात् तत्करः स्यात् परोऽपि चेत् । अर्थापत्ति का उत्तम प्रयोग शाकुन्तल के इस श्लोक में द्रष्टव्य है—

वैक्लव्यं मम तावदीदृशमहो स्नेहारण्यौकसः

पीड्यन्ते गृहिणः कथन्नुतनया-विश्लेषदुःखैर्नवैः । ४-६

इसी प्रकार यह भी—

स्त्रीणामशिक्षितपटुत्वममानुषीषु

संदृश्यते किमुत याः प्रतिबोधवत्यः

प्रागन्तरिक्ष-गमनात्स्वमपत्यजात

मन्यै र्द्विजैः परभृतः परिपालयन्ति ।। शाकु. ५-२२

सामान्य स्त्री कैतव के कथन के द्वारा शकुन्तला भी कैतवमयी है यह प्रकृत अर्थ प्रतीत होता है । अतः यहाँ अप्रस्तुतप्रशंसा भी है और अर्थान्तरन्यास तो स्पष्ट ही है । इसी प्रकार शाकुन्त्ल ६-२६ और ७-१९ में भी काव्यार्थापत्ति अलंकार है । दण्डापूपिकयार्थान्तरापतन- रूप अर्थापत्ति का अच्छा प्रयोग कुमारसंभव के इस श्लोक में हुआ है ।

पशुपतिरपि तान्यहानि कृच्छ्रादगमयदद्रि-सुतावलोकनोत्कः ।

कथमपरमवशं न विप्रकुर्यु र्विभुमपि तं यदमी स्पृशन्ति भावाः ।

६-९५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहाँ प्राकरणिक से अप्राकरणिक अर्थ आपतित हुआ है।

अनुमान—साध्य की सिद्धि के लिये साधन का निर्देश रहने पर अनुमान अलंकार होता है किन्तु उसे कवि- प्रतिभा- प्रसूत होना चाहिये। ऐसा न होने पर अनुमान नहीं माना जाता। यथा—

प्रजानां विनयाधानाद् रक्षणाद्भरणादपि।
स पिता पितरस्तासां केवला जन्म-हेतवः। रघु. १-२४

यहाँ विनयाधान आदि जो हेतु हैं, वे वास्तविक हैं, कवि- कर्म- जन्य नहीं। अतः अनुमान के लिये अवकाश नहीं। यह मत अलंकार- सर्वस्वकार का है। अनुमान निम्न श्लोक में देखा जा सकता है—

मधुकर मदिराक्ष्याः शंस तस्याः प्रवृत्तिं
वरतनुरथवाऽसौ नैव दृष्टा त्वया मे
यदि सुरभिमवाप्स्यस्तन्मुखोच्छ्वासगन्धं,
तवरतिरभविष्यत् पुण्डरीके किमस्मिन्॥ विक्रमो. ४-४२

यहाँ 'तुम पुण्डरीक में अनुरक्त हों क्योंकि तुमने मेरी प्रिया को नहीं देखा' इस प्रकार साध्य साधक दोनों के कवि- प्रतिभायुक्त होने से अनुमानालंकार है। इस श्लोक में अनुमान के साथ परिकर, उदात्त, आक्षेप और व्यङ्ग्य व्यतिरेक सभी है। ऐसे ही

तव सुचरितमङ्गुलीय नूनं प्रतनु ममेव विभाव्यते फलेन,
अरुण- नखमनोहरासुतस्या श्च्युतमसि लब्धपदं यदङ्गुलीषु॥
शाकु. ६-११

यहाँ अनुमान स्पष्ट ही है। यहाँ काव्यलिङ्ग भी है। निम्नश्लोक भी अनुमान का अच्छा निदर्शन है—

अयमर- विवरेभ्यश्चातकै र्निष्पतद्भि
र्हरिभि रचिरभासां तेजसा चानुलिप्तैः।
गतमुपरिघनानां वारिगर्भोदराणां
पिशुनयति रथस्ते शीकर-क्लिन्ननेमिः॥ शाकु. ७-७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहाँ चातकों का निष्पतन, विद्युत्- प्रभालेपन और नेमिक्लेद मेघमार्ग के अनुमापक है ।

अन्योन्य—'परस्परं क्रियाजननमन्योन्यम्' इस परिभाषा के अनुसार—

कण्ठस्य तस्याः स्तन-बन्धुरस्य मुक्ताकलापस्य च निस्तलस्य।
अन्योन्यशोभा-जननाद्बभूव साधारणो भूषण-भूष्यभावः।

कुमार. १-४२

यहाँ कण्ठ और मुक्ता कलाप के शोभा क्रिया द्वारा एक दूसरे के भूषाजनक होनेसेअन्योन्यालंकार है ।

तथा—

प्रफुल्लतापिच्छनिभैरभीषुभिः शुभैश्चसप्तच्छद-पांसु-पाण्डुभिः।
परस्परेणच्छुरितामलच्छवी तदेकवर्णाविव-तौ वभूवतुः।

आक्षेप—आक्षेप में वक्तव्य अर्थ में कुछ विशेषता उत्पन्न करने की दृष्टि से प्राकरणिक बात के निषेध का आभास होता है । कुवलयानन्द में कहा है—

आक्षेपः स्वयमुक्तस्य प्रतिषेधो विचारणात्। का. ७३

एक अन्य आक्षेप—

आक्षेपोऽन्यो विधौव्यक्ते निषेधे च तिरोहिते। का. ७५
निषेधाभासमाक्षेपं बुधाः केचन मन्वते। वही ७४

शाकुन्तल के निम्न श्लोक में आक्षेप है—

शान्तमिदमाश्रमपदं स्फुरति च वाहुः कुतः फलमिहास्य।
अथवा भवितव्यानां द्वाराणि भवन्ति सर्वत्र॥ १-१४

यहाँ बात कहकर उसका निषेध किया गया है । इस श्लोक में अर्थान्तर-न्यास, अप्रस्तुतप्रशंसा और काव्यलिङ्ग भी है ।

सामान्य-प्रतिपत्ति-पूर्वकमियं दारेषु दृश्या त्वया,
भाग्यायत्तमतः परं न खलु तद्वाच्यं वधू-वन्धुभिः। शाकु. ४-१७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहाँ शाकुन्तला के महादेवी- पद- प्राप्ति रूप विशेष- प्रतिपत्ति- पूर्वक अवेक्षण का निषेध सा बताकर उसका विशेष महत्त्व प्रतिपादित किया गया है। अत: आक्षेप अलंकार है। इस श्लोक में सामान्य- निवन्धना अप्रस्तुत प्रशंसा और काव्यलिङ्ग भी है। ऐसे ही—

स्वसुखनिरभिलाषः खिद्यसे लोकहेतोः,

प्रतिदिनमथवा ते वृत्तिरेवंविधैव॥ शाकु. ५-७

इसमें 'अथवा' पद के द्वारा पूर्वोक्त पर आक्षेप कर उसे पुष्ट किया गया है कि सब लोग तो पर दुःख से निरपेक्ष रहकर केवल आत्मसुख के सम्पादन का प्रयत्न करते हैं किन्तु आप अपने सुख की उपेक्षा कर अन्यों को सुख देने में व्यस्त रहते हैं। आपेक्ष कही विध्यात्मक होता है और कहीं विधि-निषेध दोनों पर आधारित अर्थात् मिश्र। देखें—

अलं विवादेन यथा श्रुतं त्वया तथाविधस्तावदशेषमस्तु सः।

ममात्रभावैकरसं मनःस्थितं न कामवृत्तिर्वचनीयमीक्षते॥

कुमार. ५-८२

यहाँ 'अलं विवादेन' कह कर निषेध और 'तथाविधोऽस्तु' कह कर विधि तथा फिर 'ममात्र... स्थितम्' विधि और 'न काम... ईक्षते' कहकर निषेध से आक्षेप किया गया है। अत: यहाँ मिश्र आक्षेप है।

उदात्त—

लोकातिशय-संपत्ति-वर्णनोदात्तमिष्यते

यद्वापि प्रस्तुतस्याङ्गं महतां चरितं भवेत्॥ सा. द. १०-९४

लोकोत्तर संपत्ति का वर्णन अथवा महापुरुष का लोकातिशायी चरित उदात्तालंकार का लक्षण है यदि वह चरित प्रस्तुत का अङ्ग बन कर आये।

नाभि-प्ररूढाम्बुरुहासनेन संस्तूयमानः प्रथमेन धात्रा।

अमुं युगान्तोचितयोगनिद्रः संहृत्य लोकान् पुरुषोऽधिशेते।

कुमार. ८-४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहाँ विष्णु का चरित समुद्र वर्णन का अङ्ग है । मेघदूत का प्रथम श्लोक भी देखें—

कश्चित् कान्ताविरहगुरुणा स्वाधिकारात् प्रमत्तः,
शापेनास्तङ्गमित-महिमा वर्ष-भोग्येण भर्तुः ।
यक्षश्चक्रेजनकतनया-स्नानपुण्योदकेषु ,
स्निग्धच्छाया-तरुषु वसतिं रामगिर्याश्रमेषु ॥ १-१

यहाँ गिरि विशेष वर्ण्य है । उसकी महत्ता प्रतिपादित करने के लिये राम सीता का चरित उपलक्षण रुप से आ गया है । अतः यहाँ उदात्तालंकार नहीं है ।

किन्तु मेघदूत के २-१२ से २-१६ तक प्रत्येक श्लोक में उदात्तालंकार है । एक श्लोक—

तत्रागारं धनपतिगृहादुत्तरेणास्मदीयं,
दूराल्लक्ष्यं सुरपतिधनुश्चारुणातोरणेन ।
यस्योपान्ते कृतकतनयः कान्तयावर्धितो मे,
हस्त- प्राप्यस्तवक- नमितो बालमन्दार वृक्षः । २-१२

इसी प्रकार 'वापीचास्मिन् (१३), 'तस्यास्तीरे' (१४) 'रक्ताशोकश्चल किसलयः' (१५) और 'तन्मध्ये च' (१६) में उदात्त है क्योंकि 'तदुदात्तं भवेद्यत्र समृद्धं वस्तु वर्ण्यते' और अलंकार सर्वस्व के अनुसार वह वर्णन कवि-प्रतिभोत्थापित संभाव्यमान ऐश्वर्यशाली वस्तु का वर्णन होना चाहिये । इसीलिये इन श्लोकों में स्वाभावोक्ति या भाविक नहीं है क्योंकि उनमें यथास्थित वस्तु का वर्णन रहता है । इसी प्रकार शाकुन्तल के 'कार्या सैकतलीन- हंस- मिथुना (६-१७) तथा ७-६, १४, २७ भी उदात्त के सुन्दर उदाहरण है ।

उपमेयोपमा—दो में यदि क्रम से उपमानोपमेयभाव हो तो उपमेयोपमा होती है । दो से आशय है उपमान और उपमेय, दो संख्या नहीं

रजोभिः स्यन्दनोद्धूतै र्गजैश्चघन-संनिभैः ।
भुवस्तलमिव व्योम कुर्वन् व्योमेव भूतलम् ॥ रघु. ४-२९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसे ही—

तद्वल्गुना युगपदुन्मिषिते न तावत्

सद्यः परस्पर तुलामधिरोहतां द्वे।

प्रस्पन्दमान परुषेतरतारमन्त

श्चक्षुस्तव प्रचलित-भ्रमरं चपद्मम्॥ रघु. ५-६८

यहाँ तारक और भ्रमर में विम्वप्रतिबिम्बभाव है।

उर्जस्वी—

नहि सुलभवियोगा कर्तुमात्मप्रियाणि,

प्रभवतिपरवत्ता शासने तिष्ठभर्तुः।

अहमपि तव सूनावद्य विन्यस्य राज्यं

विचरित-मृग-यूथान्याश्रयिष्ये वनानि॥ विक्रमो. ५-१७

इसमें राजा पुरुवा का निर्वेद गुरुतर- विरह- जन्य सन्ताप के कारण है। उसका हेतु केवल उर्वशी का विरह है, विवेक आदि साधनचतुष्टय नहीं। अतः यह केवल भावाभास है और वह विप्रलम्भ का पोषक है। इससे यहाँ ऊर्जस्वी अलंकार है। प्रथम पंक्ति में अर्थान्तरन्यास भी है।

काव्यलिङ्ग—हेतोर्वाक्य- पदार्थत्वे काव्यलिङ्गंनिगद्यते। अर्थात् हेतु के वाक्यार्थ रूप होने या पदार्थ रूप होने पर काव्यलिंग होता है। इसमें वाक्यार्थ रूप से निबद्ध किया जाने वाला हेतु, हेतु रूप से ही उपनिबद्ध होता है, उपनिबद्ध होने के बाद वह हेतु नहीं बनता। नहीं तो उसका अर्थान्तरन्यास से भेद ही नहीं रह जायगा।

मनीषिताः सन्ति गृहेषु देवतास्तपः क्ववत्से क्व च तावकं-वपुः।

पदं सहेत भ्रमरस्य पेलवं शिरीषपुष्पं न पुनः पतत्रिणः।

कुमार. ५-४

इस श्लोक में वर प्राप्ति के उद्देश्य से क्रियमाण तप के निषेध में "मनीषिताः सन्ति" आदि, यह वाक्यार्थ रूपी हेतु बतलाया गया है। अतः यहाँ एक वाक्यार्थगत काव्यलिङ्ग है। और पदार्थ रूप अनेक हेतु मूलक काव्यलिङ्ग निम्नश्लोक में है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मृगयश्चदर्भाङ्कुर-निर्व्यपेक्षास्तवागतिज्ञं समबोधयन्माम्।
व्यापारयन्त्यो दिशि दक्षिणस्यामुत्पक्ष्मराजीनि विलोचनानि।

रघु. १३-२५

ऐसे ही—

चलापाङ्गां दृष्टिं स्पृशसि वहुशोवेपथुमतीं,
रहस्याख्यायीव स्वनसि मृदु कर्णान्तिकचरः।
करौ व्याधुन्वन्त्याः पिबसि रति-सर्वस्वमधरं,
वयं तत्त्वान्वेषान्मधुकर हतास्त्वं खलु कृती। शाकु. १-२०

इस श्लोक के चतुर्थ चरण में भ्रमर के कृती होने के हेतु प्रथम तीन चरणों में बतलाये गये हैं। अतः काव्यलिङ्ग है। वैसे इस श्लोक में भ्रमर- स्वभावोक्ति, समासोक्ति, उपमा, सार तथा व्यतिरेक भी है।

अभिज्ञानशाकुन्तल में तो काव्यलिङ्ग की भरमार है। १-११, १२, १४, १९, २५, २९, २-१०, १४, १६, १८; ३-३, ७, १३, १५, १८, १९, २१; ४-१, ६, ९, १०, १३, १४, १५, १७, १८, १९, २०; ५-६, ७, ८, १५; ६-४, ५, ११, १२, २४, २५, ३२; ७-८, १७, २१, २८, ३३ में भी काव्यलिङ्ग का प्रयोग द्रष्टव्य है। कुमार संभव के निम्नश्लोक में—

लज्जा तिरश्चां यदि चेतसि स्यादसंशयं पर्वतराजपुत्र्याः।
तं केशपाशं प्रसमीक्ष्य कुर्युर्बालप्रियत्वं शिथिलं चमर्यः।

कुमार. १-४८

निर्लज्जत्व रूप हेतु के आद्यपाद में वाक्यार्थत्व रूप से उक्त होने के कारण यहाँ काव्यलिङ्ग है। और—

लग्नद्विरेफं परिभूय पद्मं समेघलेखं शशिनश्च विम्वम्।
तदाननश्रीरलकैः प्रसिद्धैश्चिच्छेद सादृश्य-कथा-प्रसंगम्॥

कुमार. ७-१६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहाँ भी पूर्वार्ध का वाक्यार्थ-सादृश्य कथाच्छेद के प्रति हेतु रूप से उपन्यस्त है। अतः काव्यलिंग अलंकार है। विक्रमोर्वशीयम् में—

गतं भयं भीरु सुरारिसंभवं त्रिलोकरक्षी महिमा हि वज्रिणः।

तदेतदुन्मीलय-चक्षुरायतं निशावसाने नलिनीव पङ्कजम्।

विक्रमो. १-६

यहाँ द्वितीय चरण का पदार्थ भय-निवृत्ति में हेतु रूप है। अतः काव्यलिंग है। तथा

यदृच्छया त्वं सकृदप्यवन्ध्योः

पथि स्थिता सुन्दरि यस्य नेत्रयोः।

त्वया विना सोऽपि समुत्सुकोभवेत्

सखीजनस्ते किमुतार्द्र-सौहृदः। विक्रमो. १-११

इस श्लोक में नेत्रों की अवन्ध्यत्व- सिद्धि में नयन- पथगामित्व हेतु बतलाया गया है। यों इसमें अन्त्यानुप्रास, अर्थापत्ति और इन सबके निरपेक्ष होने से संसृष्टि भी है। विक्रमोर्वशीयम् के १-१८; २-१५; ३-१३; ४-१६, २७, ३३ आदि श्लोक भी काव्यलिङ्ग से अलंकृत है।

तुल्ययोगिता—

वर्ण्यानामितरेषां वा धर्मैक्यं तुल्ययोगिता। कुवलयानन्द का. ४५। प्रस्तुत और अप्रस्तुत का गुण क्रिया- रूप एक धर्म में अन्वय होता है तो तुल्ययोगिता होती है।

नागेन्द्र-हस्ता स्त्वा त्वचि कर्कशत्वा

देकान्त शैत्यात् कदलीविशेषाः।

लब्ध्वाऽपि लोके परिणाहि रूपं

जातास्तदूर्वोरूपमान-वाह्याः। कुमार. १-३६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस श्लोक में पार्वती के उरुओं का वर्णन प्रस्तुत है। इसमें करिहस्तों और कदलियों रूप अप्रस्तुतों का उपमान-वाह्यत्व रूप एक धर्म में अन्वय है। विक्रमोर्वशीयम् में

अग्रे स्त्रीनख-पाटलं कुखकं श्यामं द्वयोर्भागयो:
बालाशोकमुपोढरागसुभगं भेदोन्मुखं तिष्ठति।

ईषद्वद्धरज:कणाग्र-कपिशा चूते नवा वल्लरी,
मुग्धत्वस्य च यौवनस्य च सखे मध्ये मधुश्री: स्थिता। २-७

इस श्लोक में भी तुल्ययोगिता है। इसमे कुरवक और वालाशोक तथा वर्ण्यो का तिष्ठति में एकान्वय है। इस श्लोक के 'स्त्रीनखपाटलम्' में उपमा, मञ्जरी में मधुश्री की संभावना से उत्प्रेक्षा, उद्यान वर्णन में स्वभावोक्ति और इन सबके परस्पर स्वाधीन रहकर चमत्कार जनक होने से संसृष्टि भी है। विक्रमो. के ३-१० तथा ३-१९ में भी तुल्ययोगिता है।

कुमार संभव में यह पद्य—

यं सर्वशैला: परिकल्प्य वत्सं मेरौ स्थिते दोग्धरि दोहदक्षे।
भास्वन्ति रत्नानि महौषधींश्च पृथूपदिष्टां दुदुहुर्धरित्रीम्॥ १-२

यहाँ हिमालय वर्ण्य है और उस पर विद्यमान ओषधियाँ और रत्न भी प्रकृत हैं। उनके दोहन क्रिया रूप-समान धर्म सम्बन्ध से औपम्य की प्रतीति होती है। अत: यहाँ केवल प्राकरणिक विषय तुल्ययोगिता है। केवल प्रकृत विषय तुल्ययोगिता यहाँ भी है—

अच्छिन्नामल-सन्ताना: समुद्रोर्म्यनिवारिता:-
पुनन्तिलोकान् पुण्यत्वात् कीर्तय: सरितश्चता। कुमार. ६-६९

और—

त्वामालिख्य प्रणयकुपितां धातुरागै: शिलाया—
मात्मानं ते चरणपतितं यावदिच्छामि कर्तुम्।
अस्रैस्तावन्मुहुरुपचितैर्दृष्टि रालुप्यते मे,
क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते संगमं नौ कृतान्त:। मेघ. २-४२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहाँ भी प्रकृत और अप्रकृत के गुण क्रियादि रूप धर्मों का एक में अन्वय प्रतिपादित होने से तुल्ययोगितालंकार है।

तद्गुण—

अपने गुण को छोड़कर अन्य का गुण ग्रहण करना बतलाने पर तद्गुण अलंकार होता है—तद्गुणः स्वगुणत्यागादन्यदीयगुणग्रहः। कुव. १४१। देखिये—

रम्यान्तरः कमलिनी हरितैः सरोभि

श्छायाद्रुमैर्नियमितार्कमयूखतापः।

भूयात् कुशेशय-रजो मृदुरेणुरस्याः

शान्तानुकूलपवनश्चशिवश्चपन्थाः॥ शाकु. ४-११

इस श्लोक में 'कमलिनी हरितैः सरोभिः' में तद्गुण, और 'रजोमृदु' में उपमा है।

दीपक—

प्रस्तुत और अप्रस्तुत के अलग अलग रहने पर तुल्योगिता होती है, यह अभी कहा है। किन्तु मिलित रूप में उन दोनों की स्थिति हो तो दीपक होता है। अलंकार सर्वस्व में कहा है- प्रस्तुताप्रस्तुप्तानां तु दीपकम्। काव्य प्रकाश के अनुसार भी उपमेय और उपमान के धर्म का एक बार ग्रहण करने पर या बहुत सी क्रियाओं के होने पर या उन के कारक का एक बार ही ग्रहण करने पर दीपक होता है—

सकृद् वृत्तिस्तु धर्मस्य प्रकृताप्रकृतात्मनाम्।

सैव क्रियासु वह्वीषु कारकस्येति दीपकम्॥

सा० द० १०-१०३

उदाहरणार्थ रघुवंश का यह श्वोक—

संचार-पूतानि दिगन्तराणि कृत्वा दिनान्ते निलयाय गन्तुम्।

प्रचक्रमे पल्लवराग-ताम्रा प्रभा पतङ्गस्य मुनेश्चधेतुः॥रघु. २-१५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहाँ प्रकृत प्रभा और अप्रकृत धेनु दोनों का अन्वय एक ही 'प्रचक्रमे' क्रिया में है।

उभे एव क्षमेवोढु मुभयोर्वीजमाहितम्।
साच शंभोस्तदीया वा मूर्तिर्जलमयी मम॥ कुमार. २-६०

यहाँ प्राकरणिक उमा महेश्वर और अप्राकरणिक ब्रह्म-जलमूर्तियों में औपम्य गम्यमान है और दोनों का एक ही 'क्षमेवोढुम्' में अन्वय है। ऐसे ही—

अवैमि पूतमात्मानं द्वयेनैव द्विजोत्तमाः।
मूर्ध्नि गङ्गा-प्रपातेन धौतपादाम्भसा चवः। कुमार. ६-५७

तथा—

उपपन्नमिदं सर्वमतः परमपि त्वयि।
मनसः शिखराणां च सदृशी ते समुन्नतिः। कुमार. ६-६६

यहाँ दीपकालंकार सुस्पष्ट है। ऐसे ही

परिग्रह-बहुत्वेऽपि द्वे प्रतिष्ठे कुलस्य नः।
समुद्रवसना चोर्वी सखी च युवयोरियम्। शाकु. ३-१७

यहाँ उर्वी और शकुन्तला का कुल प्रतिष्ठात्व रूप एक धर्म में अन्वय है। इसी प्रकार शाकु. ४-१३ में अर्थावृत्ति दीपक तथा—

सुश्रूषस्वगुरून् कुरुसखीवृत्तिं सपत्नीजने,
पत्युर्विप्रकृतापि-रोषणतया मास्म-प्रतीपंगमः। शाकु. ४-१८

५-८ में कारक दीपक तथा शाकु. ७-३ में क्रिया दीपक है।

दृष्टान्त—

चेद्बिम्बप्रतिबिम्बत्वं दृष्टान्तस्त्वलंकृतिः। कुव. ५५। अर्थात् जहाँ भिन्न उपमान और उपमेय वाक्यों के धर्म भिन्न होते हुए भी बिम्बप्रतिबिम्बभाव से निर्दिष्ट हों, वहाँ दृष्टान्तालंकार होता है—

कामं नृपाः सन्तु सहस्रशोऽन्ये राजन्वतीमाहुरनेन भूमिम्।
नक्षत्र-ताराग्रह-संकुलाऽपि ज्योतिष्मती चन्द्रमसैव रात्रिः।
रघु. ६-२२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहाँ राजन्वती और ज्योतिष्मती में विम्ब-प्रतिबिम्ब भाव है।

कुतोधर्मक्रिया-विघ्नः सतां रक्षितरि त्वयि-
तमस्तपति धर्मांशौ कथमाविर्भविष्यति। शाकु. ५-१४

यहाँ तमस् और विघ्न में बिम्ब-प्रति बिम्बभाव होने से दृष्टान्त है। वैधर्म्य से दृष्टान्त निम्न श्लोक में देखा जा सकता है—

कुमुदान्येव शशाङ्कः सविता बोधयति पङ्कजान्येव।
वशिनां हि परपरिग्रहसंश्लेषपराङ्मुखीवृत्तिः। शाकु. ५-२८

शाकु. के ६-२८, ६-३०, ७-४, और ७-३२ में सुस्पष्ट दृष्टान्तालंकार है। साथ ही—

ज्वलति चलितेन्धनोऽग्निर्विप्रकृतः पन्नगः फणां कुरुते।
प्रायः स्वं महिमानं क्षोभात् प्रतिपद्यते हि जनः। शाकु. ६-३१

में माला दीपक है। कुमार संभव के 'मनीषिताः सन्ति गृहेषु देवताः ५-४१, विक्रमोर्वशीयम् के 'ननु वज्रिण एव वीर्यमेतद्' १-१७, 'शमयति गजानन्यान् ५-१८ और 'त्वत्कार्यं वासवः कुर्यात् ५-२० में दृष्टान्तालंकार सुस्पष्ट है। इसी प्रकार—

अन्यत् कथमिव पुलकैः कलितं मम गात्रकं करस्पर्शात्।
नोच्छ्वसिति तपन-किरणैश्चन्द्रस्येवांशुभिः कमलम्।

विक्रमो. ३-१६

यहाँ भी पूर्वार्ध और उत्तरार्ध की प्रतिपाद्य वस्तुओं में विम्ब- प्रतिबम्ब भाव है किन्तु वह 'चन्द्रस्येवांशुभिः' इस पद के कारण उपमागर्भित है और नत्रर्थ के द्वारा प्रतिपादित होने के कारण वैधर्म्य से उपमागर्भित दृष्टान्त है। साथ ही अभेद के द्वारा भेदप्रख्यापन होने के कारण अतिशयोक्ति भी। साथ ही रोमहर्ष के कारण 'उर्वशी ही है यह' इस अनुमान के कारण अनुमानलंकार भी है। दृष्टान्त कुमार- संभव के निम्न श्लोक में भी स्पष्ट है।

मनीषिताः सन्ति गृहेषु देवताः तपः क्व वत्से क्व च तावकं वपुः।
पदं सहेत भ्रमरस्य पेलवं शिरीष-पुष्पं न पुनः पतत्रिणः।

कुमार ५-४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निदर्शना—

काव्य प्रकाश ने 'अभवन् वस्तु संबन्ध उपमा परिकल्पक: १०-९७ । अर्थात् जहाँ पदार्थों या वाक्यार्थों का परस्पर सम्बन्ध अनुत्पद्यान होता हुआ या उपयुक्त न होता हुआ उपमा का आक्षेप कर लेता है वहाँ, निदर्शना होती है । यथा—

क्व सूर्य-प्रभवो वंशः क्व चाल्प-विषया मतिः ।
तितीषु र्दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम् ॥ रधु. १-२

यहाँ सूर्य वंश और अल्प विषया मति का परस्पर संबन्ध जमता नहीं, अत: कवि की उक्ति "उडुप के द्वारा सागरतरण के समान ही मेरी बुद्धि के लिये रघुवंश का वर्णन है" इस उपमा में परिणत हो गयी है । निदर्शना पदार्थ- वृत्ति भी होती है और वाक्यार्थ- वृत्ति भी । यथा—

शुद्धान्त-दुर्लभमिदं वपुराश्रमवासिनो यदि जनस्य ।
दूरीकृताः खलु गुणै रुद्यानलता वनलताभिः । शाकु. १-१६

इस श्लोक में वाक्यार्थ- वृत्ति निदर्शना है । यहाँ पर ऐसा भी लगता है जैसे दृष्टान्त हो । दो निरपेक्ष वाक्यों में जहाँ बिम्ब प्रतिबिम्बभाव रहता है, वहाँ दृष्टान्त होता है, यह बात अभी उपर ही कही गयी है । किन्तु जहाँ प्रकृत वाक्यार्थ पर अन्य वाक्यार्थ 'सोऽ हम्' आदि के समान सामानाधिकरण्य द्वारा आरोपित किया जाता है, वहाँ संबन्ध संभव नहीं होता । ऐसे स्थलों में सादृश्य में पर्यवसित होने वाली निदर्शना ही मान्य होती है, दृष्टान्त नहीं । इस प्रकार यहाँ निदर्शना ही है । किन्तु मम्मटादि आचार्य यहाँ दृष्टान्त ही मानते हैं । निम्न श्लोक भी निदर्शना से अलंकृत है—

साक्षात्प्रियामुपगतामपहायपूर्वं
चित्रार्पितां पुनरिमां बहु मन्यमानः ।
स्त्रोतोवहां पथि निकामजलामतीत्य
जातः सखे ! प्रणयवान् मृगतृष्णिकायाम् । शाकु. ६-१६

और कुमार संभव का यह पद्य—

किं चायमरि-दुर्वारः पाणौ पाशः प्रचेतसः ।
मन्त्रेण हतवीर्यस्य फणिनो दैन्यमाश्रितः ॥ कुमार. २-२१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहाँ फणिनिष्ठ दैन्य का पाश में होना संभव नहीं, अत: दैन्य के समान दैन्य, इस कल्पना के द्वारा असंभवद्- वस्तु संबन्ध निदर्शना का कारण बना है । और

यमोऽ पि विलिखन् भूमिं दण्डेनास्तमितत्विषा।

कुरुतेऽ स्मिन्नमोघे ऽपि निर्वाणालातलाघवम्।। कुमार. २-२३

इसी प्रकार—

स्फुरता विच्छुरितमिदं रागेण मणेर्ललाट-निहितस्य।

श्रियमुदवहतिमुखं ते बालातप-रक्त कमलस्य।। विक्रमो. ४-७२

इस श्लोक में भी वालातप रक्त कमल की शोभा का मुख में समारोप होने के कारण निदर्शना है ।

प्रतिवस्तूपमा—

यदि उपमा वाक्यार्थों में हो और तदर्थ साधारण धर्म का दो वाक्यों में भिन्न भिन्न शब्दों के द्वारा निर्देश किया गया हो तो प्रतिवस्तूपमा होती है—वाक्ययोरेक सामान्ये प्रतिवस्तूपमामता—कुव. ५१ । मम्मट के अनुसार भी 'सामान्यस्य द्विरेकस्य यत्र वाक्यद्वये स्थिति:' यह प्रतिवस्तूपमा का लक्षण है । इसके अनुसार—

मानुषीषु कथं वा स्यादस्य रुपस्य संभव:

न प्रभातरलं ज्योतिरुदेति वसुधातलात्।। शाकु. १-२२

इस श्लोक में रूप और प्रभा तथा नायिका और विद्युत् एवं मानुषी और वसुधातल में बिम्ब- प्रतिबिम्बभाव होने पर भी संभव और उदेतिके शब्दार्थों में ऐक्य होने के कारण यहाँ प्रतिवस्तूपमा है, दृष्टान्त नहीं । इसी प्रकार—

तपति तनुगात्रि मदनस्त्वामनिशं मां पुनर्दहत्येव।

ग्लपयति यथा शशाङ्कं न तथाहि कुमुद्वतीं दिवस:। शाकु.३-१४

इस श्लोक में भी दो वाक्यों में प्रस्तुत उपमा का सामान्य धर्म दो पृथक् शब्दों दहति और ग्लपयति के द्वारा निर्देश किया गया है । शाकु. ३-११ तथा

कुतोधर्मक्रिया-विघ्न: सतांरक्षितररित्वयि।

तमस्तपति धर्मांशौ कथमाविर्भविष्यति। शाकु. ५-१४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और इसी प्रकार रघुवंश के

सर्वत्रनोवार्तमवेहि राजन्-नाथे कुतस्त्वय्यशुभं प्रजानाम्।

सूर्येतपत्यावरणायदृष्टेः कल्पेतलोकस्य कथं तमिस्रा॥ रघु.५-१३

इस श्लोक में भी प्रतिवस्तूपमा है।

परिकर—

विशेषण के साभिप्राय होने पर परिकरालंकार होता है। कुवलयानन्द में कहा है—अलंकारः परिकरः साभिप्राय- विशेषणे। का. प्र. ६२

तवप्रसादात्कुसुमायुधोऽपि सहायमेकं मधु मेव लब्ध्वा।

कुर्यां हरस्यापि पिनाकपाणे धैर्य-च्युतिं के ममधन्विनोऽ न्ये।

कुमार. ३-१०

इस श्लोक में 'पिनाकपाणि' यह शिव का तथा 'कुसुमायुध' यह काम का विशेषण साभिप्राय है।

ननु वज्रिण एववीर्य मेतद् विजयन्ते द्विषतो यदस्य पक्ष्याः।

विक्रमो. १-१७

इसमें 'वज्रिणः' यह विशेषण साभिप्राय है। और

मधुकर मदिराक्ष्याः शंस तस्याः प्रवृत्तिं

वरतनुरथवाऽसौ नैव दृष्टा त्वया मे।

यदि सुरभिमवाप्स्यस्तन्मुखोच्छ्वास-गन्धं

तवरतिरभविष्यत् पुण्डरीके किमस्मिन्। विक्रमो. ४-५२

इस श्लोक में मधुकर, मदिराक्षी और पुण्डरीक शब्दों का प्रयोग साभिप्राय किया गया है। यों इस श्लोक के प्रथमार्थ में आक्षेप है। आनन में अलौकिकत्व के प्रतिपादन से उदात्त भी है। पुण्डरीक को प्यार करने से उर्वशी के न देखने का अनुमान होने से अनुमान अलंकार है। उपमान पुण्डरीक की अपेक्षा आनन में वैशिष्ट्य बतलाने से व्यतिरेक भी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्मनो-वधमाहर्ता क्वाऽसौ विहगतस्करः ।

येनतत्प्रथमं स्तेयं गोप्तुरेव गृहे कृतम् ।। विक्रमो. ५-१

इस श्लोक में 'गोप्तुः' पद साभिप्राय है । कुमार संभव (५-२४) के "स्थिताः क्षणं पक्ष्मसु ताडिताधराः" आदि श्लोक में प्रत्येक पद के साभिप्राय होने से परिकरालंकार है ।

ईसिचुंविआइं भमरेहिं सुउमारदरकेसर सिहाइं ।

ओदंसयंति दअमाणा पमदाओ-सिरीसकुसुमाइं । शाकु. १-३

यहाँ परिकर है और काव्यलिङ्ग भी ऐसे ही—

सुभग-सलिलावगाहाः पाटल-संसर्गि-सुरभिवनवाताः ।

प्रच्छाय-सुलभनिद्रा दिवसाः परिणाम-रमणीयाः ।। शाकु. १-३

और शाकुन्तल के १-२१, २९, ३-१३, १८, २१, ४-८, ११, १५ तथा ७-११ आदि में परिकरालंकार है । सरस्वती- कण्ठाभरण ने परिकर के अनेक भेद किये हैं । उनमें—

त्वया जगन्ति पुण्यानि त्वय्यपुण्या जनोक्तयः ।

नाथवन्तस्त्वया लोकास्त्वमनाथा विपद्यसे ।।

इस श्लोक में हेतु परिकर है क्योंकि इसमें हेतु द्वय के द्वारा परिकर स्पष्ट है । और

अनेन यूना सह पार्थिवेन रम्भोरू कच्चिन्मनसो रूचिस्ते ।

सिप्रा-तरङ्गानिल-कम्पितासु विहर्तु मुद्यान-परम्परासु ।। रघु.६-३५

इस श्लोक में 'सहयुक्तेऽ प्रधाने' इस सूत्र से विहित तृतीया है । और उससे प्रतिपाद्य सहार्थ 'यूना' और 'पार्थिवेन' इन दो विशेषणों के द्वारा परिष्कृत होने से सहार्थ परिकर है । इसी प्रकार—

इन्दीवर-श्यामतनुर्नृपोऽसौ-त्वं रोचना-गौर-शरीरयष्टिः ।

अन्योन्यशोभा-परिवृद्धये वां योगस्तडित्तोयदयोरिवास्तु ।

रघु. ६-६५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहाँ 'परिवृद्धये' यह तादर्थ्ये चतुर्थी है। अतः यहाँ तादर्थ्यपरिकर है।

परिणाम—

परिणाम अलंकार में आरोप्यमाण का प्रकृत रूप से उपयोग होता है, अतः यहाँ प्रकृत आरोप्यमाण रुप में परिणत होता है। रुपक में आरोप्यमाण केवल प्राकृत रूप का उपरंजक होता है—केवल शोभा वर्धक, प्रकृतोपयोगी नहीं। यही रूपक और परिणाम में अन्तर है। उदाहरण—

आशास्यमन्यत् पुनरुक्तभूतं श्रेयांसि सर्वाण्यधिजग्मुषस्ते।

पुत्रं लभस्वात्मगुणानुरुपं भवन्तमीड्यं भवतः पितेव।।रघु. ५-३४

परिणामलंकार में उपमान का अभेद उपमेय में भासित होता है और रूपक उपमेय का अभेद उपमान में। परिणाम भी रुपक के समान अधिकारूढ वैशिष्ट्य होता है। यथा—

वनेचराणां वनितासखानां दरीगृहोत्संगनिषिक्तभासः।

भवन्ति यत्रौषधयो रजन्या मतैलपूराः सुरत-प्रदीपाः।।

कुमार. १-१०

इसमें ओषधियाँ बिना तेल डाले सुरत प्रदीपों का कामदेती बतलायी गयी है। यहाँ औषधियों में दीपकत्व आरोप्य है जो रमण के लिये आवश्यक अन्धकारनाश- रुपकार्य में ओषधिरूप से ही उपयोग में आता है। अतः यहाँ परिणाम है। और 'अतैलपूर' शब्द से ओषधियों में दीपकों की अपेक्षा अधिक वैशिष्ट्य भी बतलाया गया है। वैशिष्ट्य युक्त होने पर भी तमोनाश के लिये वे ओषधरूप से ही उपयोगिनी है। अतः यहाँ अधिकारुढ- वैशिष्ट्य परिणाम है। कुमारसंभव का ही एक अन्य श्लोक देखें—

यत्रांशुकाक्षेपविलज्जितानां यदृच्छया किंपुरुषाङ्गनानाम्।

दरीगृहद्वार-विलम्बिबिम्बास्तिरस्करिण्यो जलदा भवन्ति।। १-१४

यहाँ जलदों में आरोप्यमाण तिरस्करणीत्व के प्रकृतोपयोगी होने से परिणामालंकार है। विक्रमोर्वशीयम् के—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गूढं नूपुर-शब्दमात्रमपि मे कान्तं श्रुतौ पातयेत्,

पश्चादेत्य शनैः करोत्पलवृते कुर्वीत वालोचने ।। ३-१५

इस श्लोकार्ध में करों में आरोप्यमाण उत्पलत्व के प्रकृतोपयोगी होने से परिणाम है ।

विच्छित्ति- शेषैः सुरसुन्दरीणां वर्णैरमी कल्पलतांशुकेषु ।

विचिन्त्य गीत-क्षममर्थजातं दिवौकसस्त्वच्चरितं लिखन्ति ।।

शाकु. ७-५

विच्छित्तिशेष (अङ्गराग) में वर्णकत्व (लेखनमसि) का आरोप कर उसको प्रकृतोपयोगी बतलाने से परिणामालंकार है । शाकु. ३-३ में भी परिणाम है ।

किं शीतलैः क्लमविनोदिभिरार्द्रवातान्,

संचारयामि नलिनी-दलतालवृन्तैः

अङ्के निधाय करभोरु यथासुखं ते

संवाहयामि चरणावुत पद्मताम्रौ ।। शाकु. ३-१८

इस श्लोक के 'नलिनी दल' में आरोप्यमाण तालवृन्त के प्रकृतोपयोगी होने से परिणाम है । यों यहाँ पूर्वार्ध और उत्तरार्ध दोनों में 'तुल्यबल- विरोध' रूप विकल्पालंकार भी है और काव्यलिङ्ग, परिकर तथा उपमा भी । परिणाम का सुन्दर उदाहरण मेघदूत का यह पद्य भी है—

शुक्लापाङ्गैः सजलनयनैः स्वागतीकृत्यकेकाः,

प्रत्युद्यातः कथमपि भवान् गन्तुमाशु व्यवस्येत् ।। मेघ. १-२२

यहाँ केकाओं में आरोप्यमाण स्वागतवचनत्व प्रकृत प्रत्युद्गमनोपयोगी है ।

रुपक—

रुपक की परिभाषा करते हुए कुवलयानन्द में कहा है—

विषय्यभेदताद्रूप्य-रञ्जनं विषयस्य यत् । कुव. १७

आधिक्य, न्यून और अनुभय की उक्ति के भेद से इसे तीन प्रकार का माना है । विश्वनाथ भट्ट इसके १८ भेद मानते हैं और मम्मट इसकी सरल सी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तद्रूपकमभेदो य उपमानोपमेययोः" यह परिभाषा बताकर उसके प्रथम तीन- साङ्ग, निरङ्ग और परम्परित- भेद बताकर प्रत्येक के ८ भेद स्वीकार करते हैं।

लग्न-द्विरेफाञ्जनभक्ति-चित्रं मुखे मधुश्रीस्तिलकं प्रकाश्य,

रागेण वालारूण-कोमलेन चूतप्रवालोष्ठमलंचकार ॥

कुमार. ३-३०

कुमारसंभव के इस श्लोक में "द्विरेफाञ्जनभक्तिचित्रम्" और "चूतप्रवालोष्ठम्" में रूपक है। एक अन्य चित्र—

पर्याप्त-पुष्पस्तवक-स्तनाभ्यः स्फुरत्प्रवालौष्ठमनोहराभ्यः।

लतावधूभ्यस्तरवोऽप्यवापु र्विनम्रशाखाभुजबन्धनानि।

कुमार. ३-३९

इस श्लोक के चारों चरण रूपकों से मण्डित हैं—

नवकुसुमशरत्वं शीतरश्मित्वमिन्दो

र्द्वयमिदमयथार्थं दृश्यते मद्विधेषु।

विसृजति हिमगर्भैरग्निमिन्दुर्मयूखै

स्त्व-मपिकुसुमवाणान् वज्रसारीकरोषि ॥ शाकु. ३-३

यहाँ कुसुमशरत्वम् एवं कुसुमवाणान् में रूपक है।

तस्योत्संगे प्रणयिन इव स्नस्तगङ्गदुकूलाम्,

न त्वं दृष्ट्वा न पुनरलकां ज्ञास्यसे कामचारिन्। मेघ. १-६३

'स्नस्तगङ्गदुकूलाम्' में रूपक है।

विशेष—

कृष्णसारे ददच्चक्षुस्त्वयि चाधिज्यकार्मुके।

मृगानुसारिणं साक्षात् पश्यामीव पिनाकिनम् ॥ शाकु. १-६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहाँ अशक्यवस्त्वन्तरकरणात्मक विशेषालंकार है। यहाँ सूत के द्वारा विशिष्ट राजदर्शन करते हुए विशिष्ट पिनाकी का भी दर्शन कि या जाना बतलाया है। यहाँ विशेषालंकार द्वारा दुष्यन्त के प्रभावातिशय- रूप वस्तु व्यक्त होती है—अन्यत् प्रकुर्वतः कार्यमशक्यस्यान्यवस्तुतः—तथैवकरणं चेति विशेषः।

विकल्प—दो तुल्यबल वालों के विरोध कथन में विकल्पालंकार होता है—विरोधेतुल्य वलयोः विकल्पालंकृतिर्मता। कुव. ११४

किं शीतलैः क्लम-विनोदिभिरार्द्रवातान्
संचारयामि नलिनीदलतालवृन्तैः।
अङ्के निधाय करभोरु! यथासुखं ते
संवाहयामि चरणावुत पद्मताम्रौ॥ शाकु. ३-१८

यहाँ वात- संचारण और संवाहन दो तुल्य महत्त्व की क्रियाओं का युगपद् होना संभव नहीं। अतः विकल्पालंकार है।

विषम—विषम कई प्रकार का होता है। एक वह जिसमें दो परस्पर आनुरुप्य- रहित या अननुरूप पदार्थों की घटना या सम्बन्ध वर्णित हो। यथा—

क्व सूर्य-प्रभवो वंशः क्वचाल्पविषयामतिः। रघु. १-३

दूसरे में विरूप कार्य की उत्पत्ति वर्णित की जाती है। इष्टार्थ के लिये समुद्यम करने पर अनिष्ट की प्राप्ति बतलायी जाती है। प्रस्तुत पद्य में अन्तिम विषम है—

शापोऽप्यदृष्ट-तनयाननपद्म-शोभे
सानुग्रहो भगवता मयि पातितोऽयम्।
कृष्यां दहन्नपि खलु क्षितिमिन्धनेद्धो
बीचप्ररोहजननीं दहनः करोति। रघु. ९-८०

यहाँ तपस्वी द्वारा दशरथ का अनिष्टकरण इष्ट हैं जिसकी प्राप्ति से ठीक उलटा हुआ है। विरुद्ध- कार्योत्पत्ति, अनर्थोत्पत्ति और विरुपघटना भेद से विषमालंकार तीन प्रकार का होता है—

विरुद्धकार्यस्योत्पत्तिर्यत्रानर्थस्थ वा भवेत्।
विरूपघटना चासौ विषमालंकृतिस्त्रिधा॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेघदूत का यह श्लोक—

धूमज्योतिः-सलिलमरुतां संनिपातः क्वमेघः।

सन्देशार्थाः क्व पटुकरणैः प्राणिभिः प्रापणीयाः।

इत्यौत्सुक्यादपरिगणयन् गुह्यकस्तं ययाचे।

कामार्ता हि प्रकृति-कृपणाश्चेतनाचेतनेषु।। मेघ. १-५

यहाँ मेघ और सन्देश दोविरूप पदार्थों के घटन के कारण विषमालंकार है और वह चतुर्थ पंक्ति के अर्थान्तान्यास से अनुप्राणित है।

विरोध—

अलंकार सर्वस्व के अनुसार विरुद्ध के आभास का नाम विरोध है—विरुद्धाभासत्वं विरोधः- सूत्र ४१। जहाँ भाव- भाव या अभाव- अभाव का विरोध बतलाया जाता है, वहाँ भी यह अलंकार होता है। निम्न श्लोक में दो अभावात्मक क्रियाओं का परस्पर विरोध प्रतीत हो रहा है।

तं वीक्ष्य वेपथुमती सरसाङ्गयष्टि

र्निक्षेपणाय पदमुद्धृत मुद्वहन्ती।

मार्गाचलव्यतिकराकुलितेव सिन्धुः

शैलाधिराजतनया न ययौ न तस्थौ। कुमारसंभव ५-८५

इसी प्रकार—

आधिक्षामां विरहशयने संनिषण्णैकपार्श्वां

प्राचीमूले तनुमिव कलामात्रशेषां हिमांशोः।

नीता रात्रिः क्षण इव मया सार्धमिच्छारतैर्या

तामेवोष्णै र्विरहमहतीमश्रुभि र्यापयन्तीम्।। मेघ. २-२६

यहाँ परस्पर सामानाधिकरण्यपूर्वक न रह सकने वाले हिम और उष्ण पदार्थों के सहावस्थान का प्रतिपादन होने से विरोधालंकार है। काव्यादर्श में कहा है—विरुद्धानां पदार्थानां यत्र संसर्गदर्शनम्-विशेषदर्शनायैव स विरोधः स्मृत स्तथा। इसी प्रकार "शब्दाख्येयं यदपि" (मेघ. २-४०) में भी विरोध है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संक्षिप्येत क्षण इव कथं दीर्घयामा त्रियामा,

सर्वावस्थास्वहरपि कथं मन्दमन्दातपं स्यात्।

इत्थंचेतश्चटुलनयने ! दुर्लभ-प्रार्थनं मे

गाढोष्माभिः कृतमशरणं त्वद्-वियोगव्यथाभिः। मेघ. २-४५

इसमें दीर्घयामात्रियामा का क्षणतुल्य संक्षेप, और दिन का हर क्षण मन्दातप होना, इनके परस्पर विरुद्ध होने से विरोधालंकार है और शाकुन्तल के—

तव-कुसुमशरत्वं दीर्घ-रश्मित्व

मिन्दोर्द्वयमिदमयथार्थं दृश्यते मद्विधेषु।

विसृजति हिमगर्भैरिन्दुरग्निर्मयूखै

स्त्वमपि कुसुमवाणान् वज्रसारी करोषि। ३-३

इस श्लोक में विरोधालंकार सुस्पष्ट है। और विक्रमोर्वशीयम् के इस श्लोक में भी—

उर्वशी-सम्भवस्यायमैलसूनो र्धनुष्मतः।

कुमारस्यायुषो वाणः संहर्ता द्विषदायुषाम्॥ ५-७

आयुष् द्वारा आयुर्हरण का कथन विरोधालंकार की सृष्टि करता है।

विरोधाभास—

आभासत्वे विरोधस्य विरोधाभास उच्यते। कुव. ७६। इसमें विरोध का आभास मात्र होता है किन्तु ध्यान देने पर उसका परिहार हो जाता है। रघु. १०-२४ के 'अजस्य गृह्णतो जन्म' आदि में भी विरोधाभास है।

जगद्योनिरयोनिस्त्वं जगदन्तो निरन्तकः,

जगदादिरनादिस्त्वं जगदीशोनिरीश्वरः। कुमार. २-९

इस श्लोक में ब्रह्मा के सारे विशेषण परस्पर विरोधी प्रतीत होते हैं किन्तु उन का विरुद्धत्व आभास मात्र है। शाकुन्तल का निम्न श्लोक—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदालोके सूक्ष्मं व्रजति सहसा तद् विपुलतां
यदर्धे विच्छिन्नं भवति कृत-सन्धानमिव तत्।
प्रकृत्या यद्वक्रं तदपि समरेखं नयनयो,
र्न मे दूरे किंचित्क्षणमपि न पार्श्वे रथजवात्। शाकु. १-९

इसमें सूक्ष्म और विपुल, विच्छिन्न और कृत-सन्धान, वक्र और समरेख, दूर और पार्श्व में विरोध प्रतीत होता है किन्तु कारण के ज्ञान के साथ ही उसका परिहार हो जाता है। ऐसे ही शाकुन्तल के १-२५, २-११, ३-९, १४; ५-६ तथा ६-२१ में विरोधाभास है।

विभावना—विभावना अनेक प्रकार की होती है—(१) बिना कारण के कार्य की उत्पत्ति (२) कारणों की असमग्रता में भी कार्य की उत्पत्ति (३) प्रतिबन्धक रहने पर भी कार्योत्पत्ति (४) अकारण से भी कार्य का जन्म (५) विरुद्ध कार्य की उत्पत्ति (६) कार्य से कारण की उत्पत्ति। कुवलयानन्द—

विभावना विनाऽपि स्यात् कारणं कार्य-जन्म चेत्। ७७
हेतूनामसमग्रत्वे कार्योत्पत्तिश्च सा मता। ७८
कार्योत्पत्ति स्तृतीया स्यात् सत्यपि प्रतिबन्धके। ७९
अकारणात् कार्यजन्म चतुर्थीस्याद् विभावना। ८०
विरुद्धात् कार्य-संपत्तिर्दृष्टा काचिद् विभावना। ८१
कार्यात् कारणजन्मापि दृष्टा काचिद्विभावना। ८२

कुमार संभव के निम्न श्लोक में विभावना है

असंभृतं मण्डनमङ्गयष्टेरनासवाख्यं करणं मदस्य।
कामस्य पुष्पव्यतिरिक्तमस्त्रं बाल्यात्परं साऽथवयः प्रपेदे। १-३१

इसके द्वितीयचरण में विना आसव के मद की उत्पत्ति बतलायी गयी है। ऐसे ही—

नद्या इव प्रवाहो विषम-शिला-सङ्कट-स्खलित- वेगः।
विघ्नित-समागमसुखो मनसिशयस्त्वनुगुणोभवति। विक्रमो. ३-८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहाँ कारणों की प्रतिकूलता रहने पर आनुगुण्य की कार्य निष्पत्ति बतलायी है। विक्रमोर्वशीयम् ४-९ में ही 'तिष्ठेत् कोपवशात्' आदि में विभावना स्पष्ट है। शाकु. में भी २-१२, ३-२३, ५-१०, ५-३१ और ६-१३में विभावना है—

अचेतनं नाम गुणं न लक्षयेन्मयैव कस्मादवधीरिता प्रिया।

शाकु. ६-१३

यहाँ कारण के अभाव में भी अवधीरणा की उत्पत्ति बतलायी गयी है। सर० कण्ठा० के अनुसार कुमार. संभव के इस (१-३) श्लोक में गीर्भङ्ग के द्वारा विचित्रा नाम विभावना है। उसके अनुसार 'विभावनयैव विभावनायां विशेषोक्तेस्तयैव गीर्भङ्ग्या विचित्रा नाम विभावनाभवति—भवन्ति यत्रौषधयो रजन्यामतैलपूराः सुरत प्रदीपाः।

विशेषोक्ति—सति हेतौ फलाभावे विशेषोक्ति स्तथा द्विधा। (सा. द. १०-६७) कारण विद्यमान रहने पर भी कार्य की उत्पत्ति न होना, विशेषोक्ति है जो उक्त निमित्ता और अनुक्त निमित्ता दो प्रकार की होती है। यथा—

मामाकाश-प्रणिहितभुजं निर्दयश्लेष-हेतोः

लब्धायास्ते कथमपि मया स्वप्न-सन्दर्शनेषु।

पश्यन्तीनां न खलु बहुशो न स्थली-देवतानां,

मुक्ता-स्थूलास्तरुकिसलयेष्वश्रुलेशाः पतन्ति। मेघ. २-४३

यहाँ "विशेषोक्तिरखण्डेषुकारणेषुफलावचः" रूप अनुक्तनिमित्ता विशेषोक्ति है। ऐसे ही 'नद्या इव प्रवाहो' इस पूर्वोद्धृत विक्रमो.० के श्लोक (३-८) में भी विशेषोक्ति है। अथवा शाकु. के निम्न श्लोक में

जाने तपसो वीर्यं सा वाला परवतीति मे विदितम्

अलमस्मि ततो हृदयं तथापि नेदं निवर्तयितुम्॥ शाकु. ३-२

यहाँ निवर्तन के कारणों के विद्यमान रहने पर भी हृदय का निवर्तन न होना बतलाया गया है। शाकुन्तल ३-२३, ४-९, ५-१०, ६-४ और ७-१० एवं १२ में भी विशेषोक्ति स्पष्ट है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वभावोक्ति—किसी पदार्थ की स्वाभाविक क्रिया या रूप का वर्णन स्वभावोक्ति के अन्तर्गत आता है—स्वभावोक्तिस्तुडिम्भादेः स्वक्रिया-रूपवर्णम्। का. प्र. १०-११ कालिदास की रचनाओं में स्वभावोक्ति के दर्शन प्रचुरता से होते हैं। 'स्वभावोक्तिरसौचारु यथावद् वस्तु वर्णनम्' की सीमा में कवि की बहुत सी रचनायें आ जाती हैं। यथा—

अथ स ललितयोषिद्-भ्रूलता-चारुशृङ्गं

रतिवलय-पदाङ्के चापमासज्यकण्ठे।

सहचर-मधुहस्त-न्यस्त-चूताङ्कुरास्त्रः

शतमखमुपतस्थे प्राञ्जलिःपुष्पधन्वा। कुमार. २-६४

इस श्लोक में काम की क्रियाओं का यथार्थ वर्णन है। इसी प्रकार निम्न श्लोक में

तुषार-संघात-शिलाः खुराग्रैः समुल्लिखन् दर्पकलः ककुद्मान्।

दृष्टः कथञ्चिद् गवयै र्विविग्नैरसोढसिंह-ध्वनि रुन्ममाद॥ कुमार. १-५६

इस श्लोक मे ककुद्मान् वृष की क्रियाओं आदि का चारु वर्णन है। और मेघदूत का यह स्वाभाविक चित्र कितना भव्य है—

उत्सङ्गे वा मलिनवसने सौम्य निक्षिप्यवीणां,

मद्गोत्राङ्कं विरचितपदं गेयमुद्गातुकामा;

तन्त्रीमार्द्रां नयनसलिलैः सारयित्वा कथञ्चिद्

भूयो भूयः स्वयमपि कृतां मूर्च्छनां विस्मरन्तीम्॥ मेघ. २-२३

इस श्लोक में विरहिणी यक्षी के रूप- व्यापारादि का स्वाभाविक वर्णन है। मेघ.के २-१६, और २-३३ में भी स्वभावोक्ति है। विक्रमो. के 'अग्रेस्त्रीनखपाटलं' २-७ तथा ४-४८ तथा ५-१३ में भी स्वभावोक्ति है। इसी रूपक से एक सुन्दर उदाहरण—

उष्णार्तः शिशिरे निषीदति तरो र्मूलालवाले शिखी,

निर्भिद्योपरिकर्णिकार-मुकुलान्याशेरते षट्पदाः।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तप्तं वारिविहाय तीरनलिनीं कारण्डवः सेवते,

क्रीडावेश्मनि चैव पञ्जर-शुकः क्लान्तो जलं याचते।

विक्रमो. २-२२

स्वभावोक्ति का यह अत्यन्त मनोरम उदाहरण है। इसी प्रकार शाकुन्तल १-३, ९, १३, २९, ७, २६; २-२; ३-७, ४-८, १४; ५-७; ६-६, १७, १९, २० और ७-१४, १७, २१ में स्वभावोक्ति का प्रयोग है।

समासोक्ति

समासोक्ति में श्लिष्ट विशेषणों के द्वारा अप्रकृत अर्थ का बोध कराया जाता है—परोक्तिर्भेदकैः श्लिष्टैः समासोक्तिः। का. प्र. १०-९७। देखिये—

तेषां दिक्षु प्रथित-विदिशा-लक्षणां राजधानीं,

गत्वा सद्यः फलमविकलं कामुकत्वस्य लब्ध्वा

तीरोपान्त-स्तनित-सुभगं पास्यसि स्वादुयस्मात्

सभ्रूभङ्गं मुखमिव पयो वेत्रवत्याश्चलोर्मि॥ मेघ. १-२४

यहाँ श्लेष के प्रभाव से प्रकृतार्थ के साथ व्यञ्जना के द्वारा अप्रकृत- गत व्यवहार- रुप अर्थ का भी कथन होने से समासोक्ति है। कुमार के "पर्याप्तपुष्पस्तव-का." ३-३९ और

अङ्गुलीभिरिव केशसंचयं संनिगृह्य तिमिरं मरीचिभिः।

कुड्मलीकृत सरोज-लोचनं चुम्बतीव रजनी- मुखं शशी॥

कुमार. ८-८३

ये समासोक्ति के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। और यह—

निषिञ्चन् माधवीं लक्ष्मींलतां कौन्दीं च लासयन्,

स्नेह-दाक्षिण्ययो र्योगात् कामीव प्रतिभाति मे। विक्रमो. २-४

तथा २-१९ और ३-६ में समासोक्ति है। शाकुन्तल ४-२, ३, ९, ११, १३ तथा ५-७ आदि में भी समासोक्ति है। कुमार. संभव के निम्न श्लोक में भी समासोक्ति है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बालेन्दु-वक्राण्यविकासभावाद् वभुः पलाशान्यतिलोहितानि।

सद्यो वसन्तेन समागतानां नखक्षतानीव वनस्थलीनाम्॥ ३-२९

इस "नखक्षतानीव वनस्थलीनाम्" इस अंश में जो नायिका के व्यवहार की प्रतीति होती है वह उत्प्रेक्षा के भीतर अनुप्रविष्ट समासोक्ति से ही होती है।

विनोक्ति-

किसी के बिना यदि वर्ण्य वस्तु में हीनता का बोध कराया जाय या किसी के बिना वर्ण्य की रम्यता का प्रतिपादन हो तो विनोक्ति होती है—विनोक्तिश्चेद्विना किञ्चित् प्रस्तुतं हीन मुच्यते-तच्चेत् किंचिद् बिनारम्यं विनोक्तिः साऽपि कथ्यते। कुव० ५९-६०

यथा—

आविर्भूते शशिनि तमसा मुच्यमाने व रात्रिः,

नैशस्यार्चि र्हुतभुजइवच्छिन्न-भूयिष्ठ-धूमा।

मोहेनान्तर्वरतनुरियं लक्ष्यते मुक्तकल्पा,

गङ्गारोधः-पतनकलुषा गृहणतीव प्रसादम्। विक्रमो० १-८

इस श्लोक में तमस्, घूम, मोह और कालुष्य के बिना रात्रि, हुतभुज्, उर्वशी और गङ्गा के रम्यत्व का प्रतिपादन किया गया है और यह कार्य शब्द का प्रयोग किये बिना सिद्ध हुआ है।

वक्रोक्ति-

श्लेष, काकु आदि के द्वारा अभिप्रेत अर्थ से भिन्न अर्थात् अर्थान्तर का कथन होने पर वक्रोक्ति होती है—

वक्रोक्तिः श्लेष-काकुम्भामपरार्थ-प्रकल्पनम्॥ कुव. १५९

यथा शाकुन्तल का यह श्लोक—

आजन्मनःशाठ्यमशिक्षितो यस्तस्याप्रमाणं वचनं जनस्य।

परातिसन्धानमधीयते यैर्विद्येति ते सन्तु किलाप्तवाचः। ५-२५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहाँ विपरीतलक्षणा अथवा काकुके द्वारा मुनियों के वचस् की प्रामाणिकता और नृपों की बात की अविश्वसनीयता बोधित होती है ।

सहोक्ति– क्व वयं क्व परोक्षमन्मथो मृगशावैः सममेधितो जनः । शाक०. २-१८ । इस श्लोक में मृगशावों और शकुन्तला के सहवर्धित होने के कथन से शकुन्तला में सरलता, सहजता और पवित्रता की पुष्टि कर कथन को रञ्जक बताया गया है । यहाँ सह के पर्याय समशब्द का प्रयोग है । अतः सहोक्ति है । कहा है- सहोक्तिः सहभावश्चेद् भासते जन- रञ्जनः । कुव. ५८

प्रतीप–

प्रतीप में उपमान का आक्षेप (निन्दा या तिरस्कार) किया जाता है अथवा उपमान का तिरस्कार करने के लिए उसकी उपमेय रूप में कल्पना की जाती है ।

आक्षेप उपमानस्य प्रतीपमुपमेयता ।

तस्यैव यदि वा कल्प्या तिरस्कार- निबन्धनम् ।

का. प्र. १०-१३३

कुमार संभव का निम्नश्लोक प्रतीप का उदाहरण है-

पुष्पं प्रवालोपहितं यदि स्यान्मुक्ताफलं वा स्फुट-विद्रुमस्थम् ।

ततोऽनुकुर्याद्विशदस्य तस्य ताम्रौष्ठपर्यस्तरुचः स्मितस्य । १-४४

यहाँ पुष्प और मुक्ताफल को, जो उपमान है, प्रकृत का उत्कर्ष बढाने के लिए उपमेय कल्पित किया है । अतः यहाँ प्रतीप है । किन्तु अलंकार सर्वस्वकार ने पुष्प-प्रवाल और मुक्ताविद्रुम में सम्बन्ध न रहने पर भी सम्बन्ध की कल्पना के कारण यहाँ अतिशयोक्ति मानी है और सम्बन्ध की संभावना मात्र होने से संभावनातिशयोक्ति स्वीकार की है ।

हंस प्रयच्छ मे कान्तां गतिस्तस्यास्त्वया हृता ।

विभावितैकदेशेन देयं यदभियुज्यते ।। विक्रमो. ४.३३

मेरी प्रिया के समान तुम्हारी गति है, ऐसा कहकर उपमानभूत हंस की गति को उपमेय बना दिया गया है । अतः प्रतीपालंकार व्यंग्य है । यहाँ उत्तरार्ध में हेतुत्व होने से काव्यलिङ्ग भी है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भ्रान्तिमान्–

सादृश्य के कारण एक वस्तु में दूसरी की भ्रान्ति होने से भ्रान्तिमान् होता है । सादृश्याद् वस्त्वन्तर- प्रतीति र्भ्रान्तिमान् । अलं. सर्व.

प्रवलतमसामेवंप्रायाः शुभेषु हिवृतयः

स्रजमपि शिरस्यन्धः क्षिप्तां धुनोत्यहिशङ्कया। शाकु. ७-२४

यहाँ द्वितीय पंक्ति में भ्रान्तिमान् है ।

प्रहर्षण–

संकल्पितं प्रथममेव मया तवार्थे

भर्तारमात्मसदृशं सुकृतैर्गता त्वम्।

चूतेन संश्रितवती नवमालिकेय

मस्यामहं त्वयि च संप्रति वीतचिन्तः ।।शाकु. ४-१३

यहाँ प्रहर्षण अलंकार है क्योंकि बिना यत्न के उत्कण्ठित अर्थ की सिद्धि का कथन होने पर प्रहर्षण होता है— उत्कण्ठितार्थ- संसिद्धिर्विना यत्नं प्रहर्षणम् । कुव.१२९ । यों चूत और नवमालिका में नायकत्व व्यवहार का समारोप होने से समासोक्ति भी है । तथा साथ ही दीपक और काव्यलिङ्ग भी है

ससन्देह–

जहाँ सादृश्य के कारण उपमेय का उपमान के साथ संशयात्मक ज्ञान होता है— ससन्देहस्तु भेदोक्तौ च संशयः । का० प्र० १०-९२ । इसमें कभी भेद का कथन कर दिया जाता है और कभी नहीं । भेद की अनुक्ति के साथ ससन्देह देखें—

अस्याः सर्ग-विधौ प्रजापिरभूद्धातानु कान्तिप्रदः

शृङ्गारैकरसः स्वयन्नु मदनो मासोनु पुष्पाकरः ।

वेदाभ्यासजडः कथन्नु विषयव्यावृत- कौतूहलो

निर्मातुं प्रभवेन्मनोहरमिदंरूपं पुराणो मुनिः। विक्रमो० १-१०

अथवा-

नितान्त-कठिनां रूजं मम न वेद सा मानसीं

प्रभाव विदितानुराग मवमन्यतेवापिमाम्।। विक्रमो.२-११

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहाँ उर्वशी के आगमनाभाव के कारण में सन्देह होने से ससन्देह है । इसी प्रकार —

प्रभा-लेपी नायं हरि-हतगजस्यामिषलवः,

स्फुलिङ्गः स्यादग्नेर्गहनमभिवृष्टं पुनरिदम्।

अरे रक्ताशोक-स्तवक समरागी मणिरयं

यमुद्धर्तुं पूषाव्यसित इवालम्वितकरः ।। विक्रमो ४-६१

यहाँ पूर्वार्ध में 'क्या यह वह है किन्तु वह तो ऐसा नहीं' इस प्रकार कारण प्रदर्शन पूर्वक एक वस्तु में सन्देह निवारण कर दूसरी में उसे स्थापित करने के कारण निश्चयान्त भेदोक्तियुक्त ससन्देहालंकार है ।

व्यतिरेक–

उपमानाद् यदन्यस्य व्यतिरेकः स एव सः । का. प्र. १०-१५९ । व्यतिरेक में उपमान की अपेक्षा उपमेय का उत्कर्ष (गुण विशेष के द्वारा) वर्णित किया जाता है ।

चन्द्रं गता पद्मगुणान् न भुङ्क्ते

पद्माश्रिता चान्द्रमसीमभिख्याम्।

उमामुखंतु प्रतिपद्य लोला

द्विसंश्रयां प्रीतिमवाप लक्ष्मीः । कुमार. १-४३

इस श्लोक में उपमानभूत चन्द्र और पद्म की अपेक्षा उमामुख में अधिक गुणवत्त्व का कथन किया गया है, अतः व्यतिरेक है । ऐसे ही

आभरणस्याभरणं प्रसाधनविधेः प्रसाधनविशेषः ।

उपमानस्यापि सखे प्रत्युपमानं वपुस्तस्याः ।। वि.क्रमो २-३

इस श्लोक में सामान्यतया उपमानकोटि में स्थित आभरण चन्द्रादिक का उपमेय रूप से उपादान किया गया है और इस प्रकार उर्वशी के सौन्दर्य का आधिक्य वर्णित किया गया है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामन्त-मौलिमणिमण्डितपादपीठ

मेकातपत्रमवनेर्न तथा प्रभुत्वम्।

अस्याः सखे चरणयोरहमद्य कान्त

माज्ञाकरत्वमधिगम्य यथा कृतार्थः। विक्रमो. ३-१९

यहाँ राज्य सुख की अपेक्षा उर्वशी- प्राप्ति- जनित सुख का आधिक्य बतलाया गया है। विक्रमो. के ४-४२ तथा ४-४७ में भी व्यतिरेक है। एक अन्य उदाहरण—

नागेन्द्र-हस्तास्त्वचिकर्कशत्वादेकान्त-शैत्यात् कदली-विशेषाः।

लब्ध्वाऽपिलोके परिणाहि रूपं जातास्तदूर्वो रूपमान-वाह्याः।

कुमार. १-३६

व्यतिरेक सादृश्य पर आश्रित अलंकार है। अतः इसमें भी साधारण धर्म होता है। यहाँ आकारकी सुन्दरता या प्रसिद्धि उपमान और उपमेय में समान रूप से अन्वित होने वाला धर्म है। अलंकार सर्वस्वकार ने इसे अनुगामी धर्म कहा है। शाकुन्तल के २-१४, १३; ५-८ तथा ७-१२ में भी व्यतिरेक है।

सम— समं स्यादानुरूप्येण श्लाघा योग्यस्य वस्तुनः। सा.द. १०-७१ अर्थात् योग्य वस्तुओं की अनुरूपता के कारण प्रशंसा को समालंकार कहते हैं। यथा-

शशिनमुपगतेयं कौमुदी मेघमुक्तं,

जलनिधिमनुरूपं जह्नुकन्याऽवतीर्णा।

इति समगुणयोगप्रीतयस्तत्र पौराः

श्रवणकटु नृपाणामेकवाक्यं विवव्रु। ६-८५

शाकु. के. ४-१३, ५-१५ और ६-९ में भी सम है। देखिये-

त्वमर्हतां प्राग्रहरः स्मृतोऽसिनः शकुन्तला मूर्तिमती च सत्क्रिया।

समानयंस्तुल्यगुणं वधूवंर चिरस्य वाच्यं न गतः प्रजापतिः।

शाकु० ५-१५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुरूप वरवधू के संयोग वर्णन के कारण यहाँ समालंकार है ।

स्मरण– किसी सदृशवस्तु के स्मरण का वर्णन करने पर स्मरणलंकार होता है- सदृशानुभवाद् वस्तु- स्मृतिःस्मरणमुच्यते । सा.द. १०-२७ । यथा–

तस्योपान्ते रचितशिखरः पेशलैरिन्द्रनीलैः
क्रीडाशैलः कनक-कदली-वेष्टन-प्रेक्षणीयः ।
मद्गेहिन्याः प्रियइतिसखे ! चेतसा कातरेण,
प्रेक्ष्योपान्त-स्फुरिततडितं त्वां तमेव स्मरामि । मेघ. २-१४

यहाँ तडित् से युक्त मेघ को देखकर यक्ष को क्रीडाशैल का स्मरण होने का वर्णन है । मेघदूत २-४१ में भी यक्ष द्वारा भिन्न-भिन्न वस्तुओ को देखकर प्रिया के अंगो के स्मरण का वर्णन है ।

श्यामास्वङ्गं चकितहरिणी-प्रेक्षणे दृष्टिपातं,
वक्त्रच्छायां शशिनि शिखिनां वर्ह-भारेषु केशान् ।
उत्पश्यामि प्रतनुषु नदी-वीचिषु भ्रूविलासान्,
हन्तैकस्मिन् क्वचिदपि न ते चण्डि ! सादृश्यमस्ति ।।मेघ. २-४१

विक्रमोर्वशीयम् का यह श्लोक-

आरक्त-राजिभिरियं कुसुमैर्नवकन्दली सलिलगर्भैः,
कोपादन्तर्वाष्पे स्मारयति मां लोचने तस्याः ।।४-१५

यहाँ कन्दली- कुसुमों के दर्शन से जो संस्कार उद्बुद्ध हुआ उससे पुरूरवा को प्रिया के नयनों का स्मरण हो आया । यहाँ स्मरणालंकार है । ऐसे ही-

रक्तकदम्बः सोऽयं प्रियया घर्मान्तशंसि यस्येदम् ।
कुसुममसमग्र-केसर-विषममपि कृतं शिखाभरणम् ।

विक्रमो. ४-६०

इस श्लोक में कदम्ब- कुसुम प्रिया के शिखाभरण का स्मारक है और यह श्लोक भी ।

आयुषो यौवराज्यश्रीः स्मारयत्यात्मजस्य मे ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभियुक्तं महासेनं सैनापत्ये मरुत्वता। विक्रमो. ५-२३

यहाँ स्मरणालंकार स्पष्ट है । भोजराज ने 'अदृष्टादपि स्मरणे स्मरणालंकारः' कहकर निम्न्र श्लोक उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया है—

मुनिसुता प्रणय- स्मृति- रोधिना मम च मुक्तमिदं तमसा मनः
मनसिजेन सखे प्रहरिष्यता धनुषि चूतशरश्च निवेशितः ॥

शाकु. ६-८

उन्होंने 'पर प्रयत्नादपि स्मरणे स्मरणालंकारः, यह लक्षण देकर

दर्शन- सुखमनुभवतः साक्षादिव तन्मयेनहृदयेन।
स्मृति- कारिणा त्वया मे पुनरपि चित्रीकृता कान्ता॥

शाकु. ६-२१

प्रस्तुत श्लोक उदाहृत किया है

समान वस्तु के अनुभव से और दूसरी वस्तु की स्मृति से भी स्मरणालंकार होता है- सदृशानुभवाद् वस्त्वन्तरस्मृतिः स्मरणम्- अलं. सर्व. सू. १५ । दूसरी वस्तु का अर्थ है अन्य सदृश वस्तु । यह अनुमान नहीं है । इसमें स्मृति विनातर्क या व्याप्ति के स्वतः उत्पन्न होती है । सादृश्य के बिना जो स्मृति होती है, वह भी इस अलंकार का विषय नहीं होती । यथा-

अत्रानुगोदं मृगयानिवृत्त स्तरङ्ग- वातेन निवृत्तखेदः ।
रहस्त्वदुत्सङ्ग- निषण्णमूर्धा स्मरामि वानीरगृहेषु सुप्तः ॥

रघु. १३-३५

यहाँ सादृश्य के बिना वस्तु की स्मृति होने से स्मरणालंकार नहीं है ।

यथासंख्य–

अङ्गेनाङ्गं प्रतनु तनुना गाढ़तप्तेन तप्तं ।
सास्रेणाश्रुद्रुतमविरतोत्कण्ठ मुत्कण्ठितेन
उष्णोच्छ्वासं समधिकतरोच्छ्वासिनादूरवर्ती
संकल्पैस्तै र्विशति विधिनावैरिणा रूद्धमार्ग। मेघ. २-३९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह यथासंख्य से अलंकृत श्लोक है। पहले कहे गये अर्थों के क्रम से पुनः अन्य अर्थों का कथन यथासंख्य कहलाता है– उद्दिष्टानामर्थानां क्रमेणानुनिर्देशो यथासंख्यम् ।अलं० सर्व० । इस श्लोक में भी अङ्गादि पूर्व पदार्थों के कथन- क्रम से समन्वय प्रतिपादित किया गया है।

सार –

चलापाङ्गां दृष्टिं स्पृशसि वहुशो वेपथुमतीं
रहस्याख्यायीव स्वनसि मृदुकर्णान्तिकचरः।
करौ व्याधुन्वन्त्याः पिवसि रतिसर्वस्वमधरं
वयं तत्त्वान्वेषान्मधुकर हतास्त्वं खलु कृती। शाकु.१-२०

इस श्लोक में सार अलंकार है। जहाँ पूर्व की अपेक्षा उत्तरोत्तर में उत्कर्ष वर्णित किया जाता है, वहाँ सार होता है - उत्तरोत्तरमुत्कर्षः सारः । अलं० सर्व० सू. ५०। यहाँ भी दर्शन, स्पर्शन, स्वनन, अधरपान आदि श्रांगारिक क्रियाओं का उत्तरोत्तर उत्कर्ष बतलाया गया है। वैसे इस श्लोक में स्वभावोक्ति और समासोक्ति अलंकार भी है।

व्याजस्तुति-

इदं किलाव्याज- मनोहरं वपु।
स्तपःक्षमंसाधयितुं य इच्छति।
ध्रुवं स नीलोत्पलपत्र- धारया
समिल्लतां छेत्तुमृषिर्व्यवस्यति॥ शाकु १-१६

इस श्लोक में व्याजस्तुति अलंकार है। वाच्यनिन्दा से स्तुति के व्यङ्ग्य होने पर व्याजस्तुति अलंकार होता है—निन्दास्तुतिभ्यां वाच्याभ्यां गम्यत्वे स्तुति-निन्दयोः। सा० १०-६०। और यहाँ 'असाधुदर्शी है ऋषि' इस प्रकार की निन्दा का "सौकुमार्यातिशययुक्त है यह शकुन्तला, सर्वथा इस कर्म के अयोग्य" इस प्रकार की शकुन्तला- स्तुति में पर्यवसान होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समुच्चय–

बहूनां युगपद्भावभाजां गुम्फः समुच्चयः । कुव०-११५ । एक साथ होने वाली बहुत सी बातों का एक साथ गुम्फन होने से समुच्चय होता है ।

सितांशुका मङ्गलमात्रभूषणा पवित्रदूर्वाङ्कुर-लाञ्छितालका ।
व्रतापदेशोज्झित-गर्ववृत्तिता मयि प्रसन्ना वपुषैव लक्ष्यते ॥

विक्रमो. ३-१२

यहां सितांशुक धारण करने से ही व्रतचारिता सूचित की जा सकती थी किन्तु उसकी पुष्टि के लिए तीन विशेषण और जोड़ दिये गए हैं । अतः समुच्चय है ! और निम्न श्लोक में भी–

गूढं नूपुरशब्दमात्रमपि मे कान्तं श्रुतौ पातयेत् ,
पश्चादेत्य शनैः करोत्पलवृते कुवीत वालोचने ।
हर्म्येऽस्मिन्नवतीर्य साध्वसवशान्मन्दायमाना बलाद् ,
आनीयेत पदात्पदं चतुरया सख्या ममोपान्तिकम् ॥

विक्रमो. १-१५

इसमें एक ही वस्तु से उर्वशी समागम के सुख की प्राप्ति संभव होने पर भी तीन तीन साधनों का निरूपण है । अतः यहाँ भी समुच्चयालंकार है । इसी प्रकार,

शमयति गजानन्यान् गन्धद्विपः कलभोऽपिसन्
प्रभवतितरां वेगोदग्रं भुजङ्ग- शिशोर्विषम् ।
भुवमधिपति र्वालावस्थोऽप्यलं परिरक्षितुं
न खलु वयसा जात्यैवायं स्वकार्य-सहोजनः । विकुमों.५-१८

इस श्लोक की अन्तिम पंक्ति की पुष्टि के लिए गन्धद्विप का एक उदाहरण ही पर्याप्त होता क्योंकि गन्ध- गज कहते ही उसे है जिसके सामने अन्य गज ठहर न सके–

यस्य गन्धं समाघ्राय न तिष्ठन्ति प्रतिद्विपाः ।
स वै गन्धगजो नाम नृपते र्विजयावहः ॥ युक्तिकल्पतरू ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिर भी कवि ने भुजङ्ग शिशु और बाल अधिपति ये अतिरिक्त उदाहरण देकर समुच्चय उपस्थित कर दिया है। और शाकुन्तल का यह श्लोक भी समुच्चय से अलंकृत है।

कृतं न कर्णार्पितवन्धनं सखे शिरीषमागण्डविलम्बिकेसरम्।

न वा शरच्चन्द्र- मरीचिकोमलं मृणालसूत्रं रचितं स्तनान्तरे॥

शाकु. ६-१८

यहाँ दो क्रियाओं का समुच्चय है। अलंकार सर्वस्व के अनुसार गुणों (शुक्लतादि) तथा क्रियाओं का यौगपद्य (एक साथ) से अवस्थान समुच्चय का लक्षण है। उसके अनुसार कालिदास का निम्न श्लोक समुच्चय की सीमा में हैं—

अयमेकपदे तया वियोगः प्रियया चोपनतोऽतिदुःसहो मे।

नववारिधरोदयादहोभिर्भवितव्यं च निरातपत्वरम्यैः। विक्रमो.४-३

यहाँ क्रिया- समुच्चय है। यह विभिन्न- विषयत्व का उदाहरण है अर्थात् भिन्नाधिकरणत्व का। एकाधिकरण-क्रिया समुच्चय भी होता है। सरस्वती कण्ठाभरण ने

द्रव्य-क्रिया-गुणादीनां क्रियाद्रव्यगुणादिषु

निवेशनमनेकेषामेकतः स्यात् समुच्चयः ।४-६२

यह परिभाषा देते हुए ग्यारह प्रकार का समुच्चय माना है और कहा है—

इतरेतरयोगो यः समाहारो य उच्यते।

अन्वाचय इहान्यो यः सोऽपि नान्यः समुच्चयात्॥ ४-६३

उदाहरण देखें—

वपुर्विरुपाक्षमलक्ष्य-जन्मता

दिगम्बरत्वेन निवेदितं वसु।

वरेषु यद् वाल-मृगाक्षि मृग्यते

तदस्ति किं व्यस्तमपि त्रिलोचने॥ कुमार. ५-७२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस श्लोक में वर की योग्यता की पहचान के लिये तीन बातें प्रस्तुत की गयी हैं किन्तु क्या इनमें एक भी त्रिलोचन के पास है, ऐसा कहकर वपुष, वयस और वसु इन तीनों के समुच्चय को "तत्" पद से व्यक्त किया है। यदि इस समुच्चय के अवयवों को "आविर्भूतावयव" माने तो यहाँ इतरेतर- योग होगा और तिरोहितावयव के रूप में ग्रहण करे तो समाहार होगा। किन्तु यहाँ पर 'तत्' इस एकवचनान्त नपुंसक के प्रयोग द्वारा कथन से समाहार ही प्रतीत होता है। अत: यह समाहार- समुच्चय का उदाहरण है। साथ ही इसमें कहीं चकार का प्रयोग न होने से यह अनुभयाश्रित समुच्चय है। च- योग- युक्त इतरेतर- योग समुच्चय निम्न श्लोक के उत्तर पद में है—

तत्क्षणं विपरिवर्तित-ह्रियोर्नेष्यतोः शयनमिद्धरागयोः।

सा वभूव वशवर्तिनीद्वयोः शूलिनः सुवदना-मदस्य च॥ -

कुमार. ८-७९

विकस्वर—

यस्मिन् विशेष-सामान्य-विशेषाः सविकस्वरः। कुव. १२४

कुलवयानन्द ने विकस्वर नामक अलंकार वहाँ माना है जहाँ किसी विशेष के समर्थन के लिये सामान्य का विन्यास कर उसकी प्रसिद्धि से भी सन्तुष्ट न होकर उसके समर्थन के लिये फिर उपमान के ढंग से या अर्थान्तर की रीति से कवि अन्य विशेष का उपन्यास करता है। यथा—

अनन्त-रत्न प्रभवस्य तस्यहिमं न सौभाग्य-विलोपिजातम्।

एकोहि दोषो गुण-सन्निपाते निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः॥

कुमार. १-३

यहाँ उपमान की रीति से विशेषान्तर का न्यास किया गया है।

शब्दप्रमाणालंकार—

जहाँ कवि चामत्कारिक ढंग से श्रुति, स्मृति, पुराण, आगम आदि को प्रस्तुत कर कथ्य का समर्थन करता है, वहाँ यह अलंकार होता है—उदाहरणार्थ श्रुति-प्रमाण—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विवृण्वता दोषमपिच्युतात्मनस्त्वयैकमीशंप्रति साधु भाषितम्।
यमामनन्त्यात्मभुवोऽपिकारणं कथं सलक्ष्य-प्रभवो भविष्यति ।।

कुमार. ५-८१

यहाँ शिव परमेष्ठी के भी कारण हैं यह बात "यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वम्" इस श्रुति प्रमाण के द्वारा पुष्ट है । आत्म तुष्टि भी मान्यता में प्रमाणभूत होती है। इसका उदाहरण—

असंशयं क्षत्रपरिग्रहक्षमा यदार्यमस्यामभिलाषि मे मनः ।
सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरण-प्रवृत्तयः ।।

शाकु. १-२७

इस श्लोक में दुष्यन्त द्वारा आत्मतुष्टि के कारण शकुन्तला-परिग्रह धर्म्य और श्रुत्यनुमत मान लिया गया है ।

श्रुत्यलंकार—

विदितं वो यथा स्वार्था न मे काश्चित्प्रवृत्तयः ।
ननु मूर्तिभिरष्टाभिरित्थं-भूतोऽस्मि सूचितः ।। कुमार. ६-२४

यहाँ शिव के अष्ट मूर्ति रूप, सर्वोपकारक परिग्रहरूप श्रुति- प्रसिद्ध लिङ्ग के द्वारा उनकी प्रवृत्तियों का भी लोकानुग्रहमात्र प्रयोजन है, यह बात सिद्ध की गयी है । अतः श्रुत्यलंकार है ।

पर्याय—

एक आधार में अनेक आधेयों का अथवा अनेक आधारों में एक आधेय का होना वर्णित हो तो पर्यायालंकार होता है—एकमनेकस्मिन्नेकमेक-स्मिन् क्रमेण पर्यायः । अलं सर्व. (सू. ६१) यथा

विसृष्ट-रागादधरान्निवर्तितः स्तनाङ्गरागारुणिताच्च कन्दुकात्।
कुशाङ्कुरादान-परिक्षताङ्गुलिः कृतोऽक्षसूत्र-प्रणयी-तयाकरः ।।

कुमार. ५-११

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहाँ एक ही आधेय कर के अनेक—अधर कन्दुक और अक्षसूत्र—आधार बतलाये गये हैं। तथा—

निशासु भास्वत्कलनूपुराणां यः संचरोऽभूदभिसारिकाणाम्।
नदन्मुखोल्काविचितामिषाभिः सवाह्यते राजपथः शिवाभिः ॥

रघु. १६-१२

इस श्लोक में एक ही आधार (राजपथ) के अभिसारिका और शिवा ये दो आधेय वतलाये गये हैं। अतः यहाँ भी पर्याय है। इसी प्रकार—

स्थिताः क्षणं पक्ष्मसु ताडिताधराः पयोधरोत्सेध-निपात-चूर्णिताः।
वलीषु तस्याः स्खलिताः प्रपेदिरे क्रमेण नाभिं प्रथमोदविन्दवः ॥

कुमार. ५-२४

आधार कहीं संहतरुप (मिलित रूप) में होता है कहीं असंहत रूप में। प्रस्तुत उदाहरण में उदबिन्दु आधेय है। उनके आधार, पक्ष्म, अधर, पयोधर और वली असंहत है।

पर्यायोक्त—

जहाँ व्यङ्ग्य बात को ही दूसरे रूप में अभिधा से कह दिया जाय वहाँ पर्यायोक्त अलंकार होता है—

पर्यायोक्तं यदा भङ्ग्या गम्यमेवाभिधीयते।

सा. द. १०-६१। जैसे

अनेन पर्यासयताश्रुविन्दून् मुक्ताफल-स्थूलतमान् स्तनेषु।
प्रत्यर्पिताः शत्रुविलासिनीनामाक्षेपसूत्रेणविनैव हाराः।

रघु. ६-२८

यहाँ राजा के शत्रुमारण रूप कारण के समान उसका कार्य नारियों का रोदन जल (आँसू) का वर्णन कर प्रभावातिशय उत्पन्न किया गया है। अतः यहाँ पर्यायोक्त है। तथा—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रम्यास्तपोधनानां प्रतिहत-विघ्नाः क्रियाः समवलोक्य।
ज्ञास्यसि कियद् भुजो मे रक्षति मौर्वी-किणाङ्क इति॥

शाकु. १-१२

यहाँ भी राजा का शौर्य गम्य या व्यङ्ग्य है। उसे "प्रतिहत- विघ्नाः क्रियाः" इस अभिधा द्वारा कह दिया है। वैसे यहाँ प्रस्तुताङ्कुर और काव्यलिङ्ग भी है। शाकु. ६-४ और ७-२६ में भी पर्यायोक्त है।

परिवृत्ति—सम-न्यूनाधिकानां समाधिकन्यूनै र्विनिमयः परिवृत्तिः। अलं सर्व. सू. ६२। अर्थात् परिवृत्ति में एक वस्तु देकर उसके समान अर्हता की वस्तु लेना, या अधिक अर्हता की वस्तु देकर न्यून अर्हता की वस्तु और न्यून अर्हता की वस्तु देकर अधिक अर्हता की वस्तु लेना—इन तीनों प्रकार के विनिमय का वर्णन किया जाता है। अधिक परिवृत्ति अर्थात् उत्कृष्ट गुण वाली वस्तु देकर न्यून गुण वाली वस्तु लेने का उदाहरण यह है—

किमित्यपास्याभरणानि यौवने धृतं त्वया वार्धकशोभि वल्कलम्।
वद प्रदोषे स्फुटचन्द्रतारका विभावरी यद्यरुणाय कल्पते॥

कुमार. ५-४४

यहाँ पार्वती द्वारा उत्कृष्ट गुण वाले, आभरण देकर उनके स्थान पर न्यून गुण वाले वल्कल का विनिमय वर्णित है। ऐसे ही मालविकाग्निमित्र में—

आदार्य-कर्ण किसलयमियमस्मै चरणमरुणमर्पयति।
उभयोः सदृश-विनिमयादन्योन्यमवञ्चितं मन्ये। माल. ३-१६

यहाँ अशोक के किसलय और मालविका के अरुण चरण में समान अर्हता के कारण समविनिमय है। किन्तु निम्न श्लोक में हार और वल्कल इन दोनों में असमान परिवृत्ति है—

विमुच्य सा हारमहार्य-निश्चया विलोलयष्टि-प्रविलुप्त-चन्दनम्।
बबन्ध वालारूण-वभ्रु वल्कलं पयोधरोत्सेध-विशीर्ण संहति॥

कुमार. ५-८

यहाँ हार और वल्कल असमान हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हेतु—

हेतु का हेतुमान् अर्थात् कारण का कार्य के साथ वर्णन हेतु कहलाता है—हेतोर्हेतुमता सार्धं वर्णनं हेतु रुच्यते। कुव. १६७। भट्टोद्भट आदि कुछ आचार्य हेतु और हेतुमान् के ऐक्य को हेतु मानते हैं—हेतुहेतुमतोरैक्यम्। ऐसा कार्य भी अवश्य- भाविता अथवा उस के शैघ्र्य के प्रत्यायन के लिये किया जाता है—यथा—

सिध्यन्ति कर्मसु महत्स्वपि यन्नियोज्याः

संभावना-गुणमवेहि तमीश्वराणाम्॥ शाकु. ७-४

इसमें कार्य सिद्धि का हेतु ईश्वरों का संभावनागुण अर्थात् कार्य और कारण का साथ ही उल्लेख हुआ है। यथा—

काचिदवगुण्ठनवती नाति परिस्फुट-शरीर-लावण्या।

मध्ये तपोधनानां किसलयमिव पाण्डुपत्राणाम्॥ शाकु. ५-१३

यहाँ लावण्य की अपरिस्फुटता रूप कार्य और अवगुण्ठन रूप कारण साथ-साथ वर्णित हैं। ऐसे ही—

रम्याणि वीक्ष्य मधुरांश्च निशम्य शब्दान्

पर्युत्सुकी भवंति यत्सुखितोऽपि जन्तुः।

तच्चेतसा स्मरति नूनमबोधपूर्वं

भावस्थिराणि जननान्तर-सौहृदानि॥ शाकु. ५-२

इस श्लोक में पर्युत्सुकता रूप कार्य और स्मरण रूप कारण दोनों का सहोल्लेख है। इसी प्रकार शाकु. ५-१; ४-५; ३-१९, २-१२; १७, २७, ६-१६ और ७-४ में हेत्वलंकार है। भोजराज ने क्रिया का कारक और ज्ञापक दो प्रकार के हेतु माने है। ज्ञापक का उदाहरण—

तां प्रत्यभिव्यक्त-मनोरथानां महीपतीनां प्रणयाग्रदूत्यः।

प्रवालशोभा इव पादपानां शृङ्गारचेष्टा विविधा वभूवुः॥

रघु. ६-१२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहाँ महीपतियों की शृङ्गार चेष्टामें उनके मनोरथों की ज्ञापक है। भोज ने सहज नामक चित्र हेतु भी माना है। यथा—

सममेव समाक्रान्तं द्वयं द्विरदगामिना।

तेन सिंहासनं पित्र्यमखिलं चारिमण्डलम्।। रघु. ४-४

यद्यपि यहाँ राज्याभिषेक और समाक्रान्ति में हेतु- हेतुमद्भाव है फिर भी पौर्वापर्य में क्षिप्रकारित्व पर बल देने के लिये कार्य कारण भाव को तुल्य बतला दिया है। यह सहज चित्र हेतु है।

अहेतु—

जहाँ वस्तु के स्वभाव के कारण या हेतु की शक्ति की हानि के कारण हेतु अपना कार्य न कर पाये अर्थात् व्याहत हो जाय, वहाँ अहेतु अलंकार होता है। वस्तु स्वभाव के कारण हेतु की व्याहतता—

नीवी-वन्धोच्छ्वसित शिथिलं यत्र सिद्धाङ्गनानां,

क्षौमं रागादनिभृत-करेष्वाक्षिपत्सु प्रियेषु,

अर्चिस्तुङ्गानभिमुखगतान् प्राप्य रत्न-प्रदीपान्।,

ह्रीमूढानां भवति विफल-प्रेरणा चूर्ण-मुष्टिः।। मेघ. २-५

यहाँ रत्न प्रदीपों को बुझा देने के लिये फेंकी गयी चूर्णमुष्टि यद्यपि ठीक स्थान पर लगी फिर भी निर्वापण का कारण कृतकार्य नहीं हो सका जिसका कारण रत्नदीपों का वस्तु- स्वभाव है। अतः यहाँ वस्तु- स्वभाव से व्याहत नाम अहेतु है।

सूक्ष्म—

इङ्गिताकार लक्ष्योऽर्थः सूक्ष्मः सूक्ष्मगुणात्तुसः। सा. क. ३-२१। निम्न श्लोक में इङ्गितों से लक्ष्य शृंङ्गार- चेष्टायें इसके अन्तर्गत आती हैं। ऊपर ही उल्लिखित "तां प्रत्यभिव्यक्त- मनोरथानाम्"। रघु. ६-१२ में सूक्ष्मालंकार है।

प्रस्तुताङ्कुर—

आचार इत्यवहितेन मयागृहीता

या वेत्रयष्टि रवरोधगृहेषु राज्ञः।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काले गते बहुतिथेमम सैव जाता

प्रस्थान-विक्लव-गतेरवलम्बनार्था ॥ शाकु. ५-३

यहाँ प्रस्तुतताङ्कुरालंकार है क्योंकि प्रधानभूत प्रस्तुत के अनुकूल अन्य प्रस्तुत का वर्णन करने में प्रस्तुताङ्कुर होता है—

प्रस्तुतेन प्रस्तुतस्य द्योतने प्रस्तुताङ्कुरः । कुव. ६७ ।

अन्य भी

रम्यास्तपोधनानां प्रतिहत-विघ्नाः क्रियाः समवलोक्य।

ज्ञास्यसि किद्भुजो मे रक्षति मौर्वी-किणाङ्क इति ॥

शाकु. १-१२

इस श्लोक में रक्षारूप प्रवृत्ति का साफल्य जानने से राजा को परमानन्द फिर तपस्वियों की प्रसन्नता और उससे राजा का अभ्युदय पोतित होता है। इस प्रकार प्रस्तुत कारण से अन्य प्रस्तुत कार्य की अभिव्यञ्जना होती है। इसी प्रकार

पुत्रस्य ते रणशिरस्ययमग्रयायी

दुष्यन्त इत्यभिहितो भुवनस्य भर्ता।

चापेन यस्य विनिवर्तित-कर्मजातं

तत्कोटिमत्कुलिशमाभरणं मघोनः । शाकु. ७-२६

इस श्लोक में भी प्रस्तुताङ्कुर या पर्यायोक्त अलंकार है।

प्रेय—

प्रेयः प्रियतराख्यानम्—काव्यादर्श २-२७५ है। जैसे

जातं वंशे भुवन-विदिते पुष्करावर्तकानां

जानामि त्वां प्रकृतिपुरुषं कामरूपं मघोनः ।

तेनार्थित्वं त्वयि विधिवशाद् दूरबन्धुर्गतोऽहं

याच्ञा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धुकामा ॥ मेघ. १-६

यहाँ अर्थान्तरन्यास से अनुप्राणित प्रेयोऽलंकार है। और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रविमाविशते सतां क्रियायैसुधया तर्पयते पितृन् सुरांश्च।

तमसां निशि मूर्च्छतां निहन्त्रे हरचूडानिहितात्मने नमस्ते ।।

विक्रमो. ३-७

यहाँ पुरुरवा के सोमवंशीय होने से चन्द्र- देवता- विषयक रति का प्रतिपादन प्रेयस् के अन्तर्गत है ।

भाविक—

किसी भूत या भविष्यत् अद्भुत पदार्थ को प्रत्यक्षवत् अनुभव करने पर भाविक होता है—

अद्भुतस्य पदार्थस्य भूतस्याथ भविष्यतः ।

यत्प्रत्यक्षायमाणत्वंतद् भाविकमुदाहृतम् ।। साहि. १०-९३

यथा निम्न श्लोक में तपस्वियों की प्रतीति स्फुट रूप से हो रही है । यह शान्तरस का अङ्ग है ।

वनान्तरादुपावृत्तैः समित्कुशफलाहरैः ।

पूर्यमाणमदृश्याग्नि-प्रत्युद्यातैस्तपस्विभिः । रघु. १-४९

यहाँ भाविकालंकार है क्योंकि यथावद् वर्णन के आधार पर सुन्दर वस्तु का प्रत्यक्ष- तुल्य ज्ञान इस श्लोक से होता है जो भाविक की पहचान है ।इसी प्रकार—

दर्भाङ्कुरेण चरणः क्षत इत्यकाण्डे

तन्वी स्थिता कतिचिदेव पदानि दत्वा।

आसीद् विवृत्तवदना च विमोचयन्ती

शाखासु वल्कलमसक्तमपि द्रुमाणाम्। शाकु. २-१३

यहाँ शाकुन्तला की प्रीति की प्रत्यक्ष रूप से शुद्ध प्रतीति हो रही है । शाकु. २-२२ में भी भाविक है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उदात्त—

लोकोत्तर सम्पत्ति का वर्णन उदात्तालंकार होता है—यदि प्रस्तुत वस्तु का अङ्गभूत महापुरुषों का चरित हो तो वह भी उदात्त की परिधि में आता है—

लोकातिशय-संपत्ति-वर्णनोदात्तमिष्यते।
यद्वापि प्रस्तुतस्याङ्गंमहतां चरितं भवेत्॥ सा. द. १०-९४

यथा—समुद्र वर्णन करते हुये उसके अंग के रूप में विष्णु का यह वर्णन—

नाभि-प्ररुढाम्बुरुहासनेन संस्तूयमानः प्रथमेन धात्रा,
अमुं युगान्तोचित-योगनिद्रः संहृत्य लोकान् पुरुषोऽधिशेते।

रघु. १३-०६

तथा—

प्राप्यावन्तीनुदयन-कथा-कोविद-ग्रामवृद्धान्
पूर्वोद्दिष्टामनुसर दिशं श्री विशालां विशालाम्।
स्वल्पीभूते सुचरित-फले स्वर्गिणां गांगतानां
शेषैः पुण्यैर्हृतमिवदिवः कान्तिमत् खण्डमेकम्॥ मेघ. १-३१

यहाँ भी उदात्त अलंकार है। क्योंकि—

आशयस्य विभूतेर्वा यन्महत्त्वमनुत्तमम्।
उदात्तं नाम तं प्राहुरलंकारं मनीषिणः॥

उत्तर मेघ के १२ से १६ तक पाँच श्लोक भी उदात्त से मण्डित हैं। उदाहरणार्थ—

तन्मध्ये च स्फटिक-फलका काञ्चनी वासयष्टि
र्मूले बद्धा मणिभिरनति-प्रौढवंश-प्रकाशैः।
तालैः शिञ्जावलय-सुभगैः कान्तया वर्धितो मे
यामध्यास्ते दिवसविगमे नीलकण्ठः सुहृद्वः॥ मेघ. २-१६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तदुदात्तं भवेद् यत्र समृद्धं वस्तु वर्ण्यते। और इन पाँच श्लोकों में समृद्ध वस्तु का ही वर्णन है।

प्रपञ्चोक्ति—

जहाँ उपमान और उपमेय में साम्य या किसी का उत्कर्ष या अपकर्ष बतलाया जाय वहाँ प्रपञ्चोक्ति होती है जो प्रकृता और विकृता दो प्रकार की होती है—

साम्योत्कर्षापकर्षोक्तेरुपमानोपमेययोः।

प्रकृता विकृता चेति प्रपञ्चोक्तिः प्रदर्श्यते। सर. क. ४-३९

यथा—

अरण्य-वीजाञ्जलि-दान-ललितास्तथाच तस्यां हरिणा विशश्वसुः।

यथा तदीयैर्नयनैः कुतूहलात् पुरः सखीनाममिमीत लोचने॥

कुमार. ५-१५

इस श्लोक में पार्वती के उपमेयभूत नेत्रों और मृगों के उपमानभूत नेत्रों में जो साम्य वर्णित है वह अविकृत अर्थात् स्वाभाविक रूप में ही है। अतः यहाँ "सामान्येन प्रकृता" प्रपञ्चोक्ति है।

प्रतिवस्तूक्ति—

प्रपञ्चोक्ति और दृष्टान्तोक्ति की छायाग्राहिणी प्रतिवस्तूक्ति भी भोज के अनुसार स्वतन्त्र अलंकार है—

प्रतिवस्तूक्तिरप्यस्मिनृज्वी वक्राच कथ्यते।

दृष्टान्तोक्तेश्च साच्छायां प्रपञ्चोक्तेश्चगाहते। सर. क. ४-४

यथा—

शुद्धान्त-दुर्लभमिदं वपुराश्रम-वासिनोयदि जनस्य।

दूरीकृता खलुगुणै रुद्यानलता वनलताभिः॥ शाकु. १-१६

यहाँ 'शुद्धान्तदुर्लभम्' इस वक्रोक्ति के द्वारा पहले दार्ष्टान्तिक रूप वस्तु को प्रस्तुत कर बाद में 'दूरी कृताः खलुगुणैः" आदि के द्वारा वक्रोक्ति से ही दृष्टान्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूप प्रतिवस्तु प्रस्तुत की गयी है । अतः यह विधि में वक्रोत्तरा प्रतिवस्तूक्ति है । और

मानुषीषु कथं वा स्यादस्य रूपस्य संभवः ?

न प्रभातरलं ज्योतिरूदेति वसुधातलात्।। शाकु. १-२३

इस श्लोक में 'कथं वा स्यात्' इति वक्र निषेधोक्ति से उपमेय (दार्ष्टान्तिक) का अभिधान करके पीछे 'नप्रभातरलम्' आदि वैयधिकरण वक्रा निषेधोक्ति से दृष्टान्त का अभिधान किया है । अतः यह निषेध में प्रतिवस्तूक्ति है ।

दृष्टान्तोक्ति—

भोजराज ने साम्य के अनेक भेदों में दृष्टान्तोक्ति भी एक भेद माना है । यह क्रिया योग के साम्य पर आधारित भी हो सकती है । यथा—

स्थितः स्थितामुच्चलितः प्रयातां निषेदुषीमासनबन्ध-धीरः ।

जलाभिलाषी जलमाददानां छायेवतां भूपतिरन्वगच्छत्।

रघु. २-६

यह क्रियायोग-निमित्त साम्य वाली दृष्टान्तोक्ति है । गुणयोग-निमित्त साम्यवाली दृष्टान्तोक्ति निम्न श्लोक में है—

रूपं तदोजस्वि तदेव वीर्यं तदेव नैसर्गिक मुन्नतत्वम्।

न कारणात् स्वाद् विभिदे कुमारः प्रवर्तितो दीप इव प्रदीपात्।।

रघु. ५-३७

यहाँ रुपादि गुणों की उत्पत्ति से जनित साम्य है प्रदीपरुप दृष्टान्त से ।

क्रम—

शब्दस्य यदि वार्थस्य द्वयोरप्यनयोरथ।

भणनं परिपाट्या यत् क्रमः स परिकीर्तितः ।। सर. क. ४-८१

कालतः अर्थ- परिपाटी रूप क्रम निम्नश्लोक में है—

हस्ते लीला कमलमलके बाल-कुन्दानुविद्धं

नीतालोध्र- प्रसवरजसा पाण्डुतामानने श्रीः ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चूडापाशे नवकुखकं चारु कर्णे शिरीषं
सीमन्ते च त्वदुपगमजं यत्र नीपं वधूनाम्॥ मेघ. २-२

यहाँ "हस्ते लीला कमलम्" आदि पदार्थों का शरदादि काल क्रम से कथन किया गया है। अतः यहाँ कालतः अर्थ- परिपाटी- क्रम है।

संभव—

अभूत-कारणालोकात् स्यादेवमिति संभवः।
स विधौ वा निषेधे वा द्वयेवा नद्वयेऽपिवा॥ सर. क. ३-२५

बहुत से कारणों के दिखने पर 'ऐसा हो सकता है' यह समझ संभव अलंकार की सृष्टि करती है। वह विधि, निषेध या दोनों के या किसी के भी न होने पर हो सकता है—

त्वय्यादातुं जलमवनते शार्ङ्गिणो वर्णचौरे,
तस्याः सिन्धोः पृथुमपि तनुं दूरभावात् प्रवाहम्।
प्रेक्षिष्यन्ते गगनगतयो नूनमावर्ज्य दृष्टी
रेकं मुक्तागुणमिव भुवः स्थूलमध्येन्द्र- नीलम्॥ मेघ. १-४६

जल लेने के लिये जब तुम झुकोगे तो उस समय नदी प्रवाह ऐसा लगेगा जैसे बीच में गूँथी हुई इन्द्र नीलमणि से युक्त मुक्ताहार हो। तब वह आकाश में दर्शनीय लगेगा, ऐसी विधिरूप संभावना के कारण यहाँ विधि विषयक संभवालंकार है। और विधि-निषेध विषयक—

उत्पश्यामि द्रुतमपि सखे मत्प्रियार्थं यियासोः
कालक्षेपं ककुभसुरभौ पर्वते पर्वते ते
शुक्लापाङ्गैः सजलनयनैः स्वागतीकृत्य केकाः।
प्रत्युद्यातः कथमपि भवान् गन्तुमाशु व्यवस्येत्॥ मेघ. १-५९

उपर्युक्त पूर्व श्लोक में उत्प्रेक्षालंकार था और इसमें परिणामालंकार है किन्तु भोजराज के मत में यहाँ 'उत्पश्यामि कालक्षेपम्' में विधिरूप और 'कथमपि.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

..व्यवस्येत्' में निषेध रूप इस प्रकार दोनों के संभाव्यमान होने से उभयविषयक संभवालंकार है । और

तस्याः पातुं सुरगज इव व्योम्नि पूर्वार्धलम्बी
त्वं चेदच्छस्फटिक-विषयं तर्कयेस्तिर्यगम्भः,
संसर्पन्त्याः सपदिभवतः स्रोतसिच्छायया सा
स्यादस्थानोपगत-यमुना-संगमेवाभिरामा ।। मेघ. १-५१

यहाँ उत्प्रेक्षालंकार तो है ही साथ ही 'यदि तुम ऐसा करोगे तो ऐसा होगा' से विधि- निषेध का पता नहीं चलता । इसलिये यहाँ अनुभव विषयक संभवालंकार है । विधिरूप संभव का यह भी उदाहरण है—

रुद्धापाङ्ग-प्रसरमलकै रञ्जन-स्नेहशून्यं
प्रत्यादेशादपि च मधुनो विस्मृतभ्रू- विलासम् ।
त्वय्यासन्ने नयनमुपरिस्पन्दि शङ्के मृगाक्ष्याः
मीनक्षोभाकुल-किसलय-श्रीतुलामेष्यतीति ।। मेघ. २-३२

यहाँ विप्रलाम्भ में बालों का न सम्हालना, नेत्रों में अंजन का न लगाना या मधु न पीना और पति का समाचार मिलने सेपूर्व नेत्र- स्पन्दन इस प्रकार संभावित नहीं है जैसे द्रोण का खारी में या सौ का पाँच सौ में होना सुनिश्चित है । अतः यह अनुमान का विषय न होकर संभव का है ।

वितर्क—

ऊह को वितर्क कहते हैं । यह सन्देह और निर्णय पर अधिष्ठित होता है । यह निर्णयान्त और अनिर्णयान्त दोनों प्रकार का होता है । यथा—

"अस्याः सर्गविधौ- प्रजापतिरभूत्" विक्रमो. १-१० । इस पूर्वोद्धृत श्लोक में 'किं प्रभवेत् पुराणोमुनिः' यह सन्देह कर 'अतः चन्द्रादि में से किसी को होना चाहिये' ,यह निर्णयान्त वितर्क है—कहा है—

ऊहो वितर्कः सन्देहनिर्णयान्तरधिष्ठितः ।
द्विधाऽसौ निर्णयान्तश्चानिर्णयान्त इति स्थितः ।। सर. क. ३-३९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और—

चित्ते निवेश्य परिकल्पित-सत्त्वयोगाद्

रूपोच्चयेन विधिना मनसा कृता नु।

स्त्रीरत्न-सृष्टि रपराप्रतिभाति सा मे

धातु र्विभुत्वमनुचिन्त्य वपुश्च तस्याः ।। शाकु. २-१०

यह तत्त्वानुपाती और अतत्त्वानुपाती उभयात्मक निर्णयान्त वितर्क है जबकि इससे पूर्वोक्त श्लोक अतत्त्वानुपाती निर्णयान्त था । अनिर्णयान्त मिथ्यारूप वितर्क का उदाहरण—

अद्रेः शृङ्गं हरति पवनः किं स्विदित्युन्मुखीभि—

र्दृष्टोच्छायश्चकित-चकितं मुग्ध-सिद्धाङ्गनाभिः ।

स्थानादस्मात् सरसनिचुलादुत्पतोदङ्मुखः सन् ,

दिङ्नागानां पथि परिहरन् स्थूलहस्तावलेपान् ।। मेघ. १-१४

'क्या पवन अद्रि के शृङ्ग को उड़ाये लिये जा रहा है' । ऐसी कल्पना के मिथ्या होने से और वस्तु के अनिर्णीत होने से अनिर्णयान्त मिथ्यारूप वितर्क है ।

स्मृति—

सदृश, अदृष्ट, चिन्ता, पर प्रयत्न, स्वप्न और प्रत्यभिज्ञान के द्वारा जो पूर्वानुभूत वस्तु का ज्ञान होता है, उसे स्मृति कहते हैं—सदृशादृष्ट चिन्तादेरनुभूतार्थ वेदनम्—स्मरणं प्रत्यभिज्ञान- स्वप्नावपि न तद्बहिः । सर. क. ३-४२ । अदृष्ट से स्मृति जैसे मुनि शाप के अपगम से दुष्यन्त को शकुन्तला की स्मृति—

मुनिसुता-प्रणय-स्मृति-रोधिना मम विमुक्तमिदं तमसा मनः ।

मनसिजेन सखे प्रहरिष्यता धनुषि चूतशरश्चनिवेशितः ।।

शाकु. ६-८

प्रपरप्रयत्न-जन्य स्मरण—

दर्शन-पथमायाता साक्षादिव तन्मयेन हृदयेन।

स्मृति-कारिणा त्वया मे पुनरपि चित्रीकृता कान्ता।। शाकु. ६-२१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहाँ परकृत प्रयत्न, चित्र दर्शन से चिन्ता और स्मरण है ।

उपमान—

सदृश से सदृश के ज्ञान को उपमान कहते हैं जो अनुभूत तथा अननुभूत पदार्थ में भी होने से दो प्रकार का होता है—सदृशात् सदृश- ज्ञान मनुमानं द्विधेह तत् ॥ सर. क. ३-५० ।

दर्पणे च परिभोग-दर्शिनी पृष्ठतः प्रणयिनो निषेदुषः ।

वीक्ष्य विम्वमनुविम्वमात्मनः कानि कानि न चकार लज्जया ।

कुमार. ८-११

दर्पण में रात्रि-संभोग के चिह्नों को देखती पार्वती दर्पण में शिव के विम्ब का प्रतिबिम्ब देखकर तज्जन्य व्रीडा के अनुकूल क्रियायें करने लगती हैं । यहाँ मेरा मुख ऐसा ही है जैसा दर्पण में प्रतिबिम्बित है । किन्तु पहले तो उसने अपना मुख देखा नहीं । फिर भी यह मेरा ही मुख है, इस प्रकार का ज्ञान अननुभूत है । फिर आप्तोदेश से यह जान कर कि जैसा बिम्ब होता है, होता है वैसा ही प्रतिबिम्ब भी । फिर भी प्रिय का (शिव का) प्रतिबिम्ब देखकर "यह मेरे प्रिय का प्रतिबिम्ब है" इस प्रकार की धारणा भी अननुभूत विषयिणी ही है । किन्तु सामने चित्र रखा हो तब अपनी या प्रिय का आकृति का अनुमान के आधार पर अवगत अनुभूत विषय होगा । फिर भी दोनों स्थितियों में होगा अनुमान ही ।

अभाव—

पदार्थ की असत्ता का नाम अभाव है—असत्ता या पदार्थानामभावः सोऽभिधीयते । यह प्रागभाव आदि भेदों से छै प्रकार का होता है । प्रध्वंसाभाव देखिये—

धृति रस्तमिता मतिश्च्युता विरतं गेयमृतुर्निरुत्सवः ।

गतमाभरण-प्रयोजनं परिशून्यं शयनीयमद्य मे । रघु. ८-६६

यहाँ धृति आदि की असत्ता का कारण मृत्यु द्वारा किया प्रध्वंस है ।

सामर्थ्याभाव—

मानुषीषु कथं वा स्यादस्य रूपस्य संभवः ।

न प्रभातरलं ज्योति रुदेति वसुधातलात् ॥ शाकु. १-२३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आप्तवचन—

यथार्थ शब्द के वक्ता को आप्त कहते हैं। उसके वचन आगम कहलाते हैं। उदाहरणार्थ 'यहाँ पुरुषों की निन्दा नहीं करनी चाहिये' यह आप्त वाक्य है। इस का काव्य में विधि और निषेध दोनों प्रकार से प्रयोग हो सकता है। निषेध रूप में प्रयोग देखें

निवार्यतामालि किमप्ययं वटुः
पुनर्विवक्षुः स्फुरितोत्तराधरः।
न केवलं मो महतोऽपभाषते
शृणोति तस्मादपि यः स पापभाक्। कुमार. ५-८३

पार्वती द्वारा सखी को दिया गया आदेश इस श्लोक के उत्तरार्ध आप्त वाक्य के आधार पर ही है।

ललित—वस्तु के प्रस्तुत होने पर जो वर्णनीय वृत्तान्त है उसका वर्णन न करके वहीं उसके प्रतिबिम्बरूप किसी अप्रस्तुत वृत्तान्त का वर्णन कर देना ललितालंकार है—वर्ण्ये स्याद् वस्तु- वृत्तान्त- प्रतिबिम्बस्य वर्णनम्-ललितम्। कुव. १२८। यथा—

क्व सूर्य- प्रभवो वंशः क्वचाल्पविषया मतिः।
तितीर्षु र्दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम्॥ रघु. १-२

"अल्प विषया मति से सूर्य वंश का वर्णन करने का इच्छुक हूँ मैं" इस प्रकार प्रस्तुत वृत्तान्त को उपन्यस्त कर "उडुप के द्वारा सागर का तितीर्षु हूँ" इस अप्रस्तुत वृत्तान्त का जो प्रकृत का प्रतिविम्बभूत है, वर्णन कर दिया गया है।

संसृष्टि—

यदि ये अलंकार एकाधिक संख्या में स्थित हों किन्तु परस्पर अनपेक्ष होकर अर्थात् स्वतन्त्र रूप से- तो वहाँ संसृष्टि होती है—मिथोऽनपेक्षयैतेषां स्थितिः संसृष्टिरुच्यते। सा.द. १०-९८। अथवा—एषां तिलतण्डुल- न्यायेन मिश्रत्वं संसृष्टिः। अलं सर्व. ८५

यदृच्छया त्वं सकृदप्यवन्ध्ययोः
पथि स्थिता सुन्दरि! यस्यनेत्रयोः।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्वया बिना सोऽपि समुत्सुको भवेत्

सखीजनस्ते किमुतार्द्र-सौहृदः । विक्रमो. १-११

यहाँ प्रथम द्वितीय चरणों के अन्त में अन्त्यानुप्रास है और काव्यलिङ्ग भी है और अर्थापत्ति भी है । इनकी निरपेक्षभाव से स्थिति होना चमत्काराधायक है । अतः संसृष्टि है । तथा

अग्रे यान्ति रथस्यरेणु-पदवीं चूर्णीभवन्तो घनाः,

चक्रभ्रान्तिररान्तरेषु वितनोत्यन्यामिवारावलीम् ।

चित्रारम्भ-विनिश्चलं हरि-शिरस्यायामवच्चामरं,

यन्मध्ये समवस्थितो ध्वजपटः प्रान्ते च वेगानिलात् ॥

विक्रमो. १-५

इस श्लोक में उत्प्रेक्षा, उपमा, स्वभावोक्ति इन तीनों की संसृष्टि है । तथा—

वनेचराणां वनितासखानां दरीगृहोत्सङ्ग-निषिक्तभासः ।

भवन्ति यत्रौषधयो रजन्यामतैलपूराः सुरत-प्रदीपाः ।

कुमार. १-१०

यहाँ परिणाम और विभावना की संसृष्टि है ।

अपमेधोदयं वर्षमदृष्ट-कुसुमं फलम् ।

अतर्कितोपपन्नं वो दर्शनं प्रतिभाति मे ॥ कुमार. ६-५४

यहाँ विभावना और रुपक की संसृष्टि है । ऐसे ही—

प्रजाः प्रजाः स्वा इव तन्त्रयित्वा निषेवते शान्तमना विविक्तम् ।

यूथानि संचार्य रविप्रतप्तः शीतं दिवा स्थानमिव द्विपेन्द्रः ॥

शाकु. ५-५

इनमें दो उपमाओं की अनपेक्ष भाव से स्थिति के कारण संसृष्टि है । उपर्युक्त सभी श्लोकों में एकाधिक अलंकार तिल-तण्डुलवत् पृथक् पृथक् देखे जा सकते हैं ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संकर—

संकर में भी एकाधिक अलंकारों की संसृष्टि होती है किन्तु नीरक्षीरन्याय से। वे पृथक् न होकर परस्पर गुँथे रहते हैं। कहीं वे क्षीर- जलवत्, कहीं पांसु-पानीयवत्, तो कहीं नरसिंह वन कर रहते हैं—

रजोभिस्तुरगोत्कीर्णैर्गजैश्च घन-संनिभैः।

भुवस्तलमिवव्योम कुर्वन् व्योमेव भूतलम्॥ रघु. ४-२९

इस श्लोक में परिवृत्ति और उपमा का अङ्गभाव नरसिंहवत् व्यक्त भी है और अव्यक्त भी।

अलंकार सर्वस्व ने भी तीन प्रकार का संकर माना है—अङ्गाङ्गिभाव संकर, संशय या सन्देह संकर और एक- वाचकानुप्रवेश संकर। अङ्गाङ्गिभाव संकर जैसे—

अङ्गुलीभिरिव केशसंचयं संनियम्य तिमिरं मरीचिभिः।

कुड्मलीकृत-सरोजलोचनं चुम्बतीव रजनी-मुखं शशी।

कुमार. ८-६३

यहाँ अँगुलियों के समान, यह उपमा है। वहीं सरोज लोचन उपमा में साधक हैं। रजनी मुख में श्लेष मूलक अतिशयोक्ति है। इस प्रकार 'अङ्गुलीभिरिव मरीचिभिः' और 'सरोजलोचनम्' ये दो उपमायें और 'मुख' शब्द के श्लेष से अनुगृहीत अतिशयोक्ति, 'चुम्बतीव' इस पद से प्रकाशित उत्प्रेक्षा की अनुग्राहिका है क्योंकि वह इन्हीं की सहायता से निष्पन्न होती है। इस प्रकार इन में अङ्गाङ्गि भाव है। यहाँ उत्प्रेक्षा निशा और शशी में दाम्पत्य व्यवहार के समारोपके कारण समासोक्ति- गर्भा है। उपमा दोनों में समान रूप से उत्थापक है। समासोक्तिगर्भता के बिना चुम्बनोत्प्रेक्षा नहीं टिक सकती। अत: यहाँ उत्प्रेक्षा और समासोक्ति दोनों के एककालिक होने के कारण समान प्राधान्य भी है। अन्य उदाहरण—"अस्याः सर्गविधौ प्रजापति रभूत्" आदि बहुशः उद्धृत विक्रमो. (१-१०) के श्लोक में अनुमान और काव्यलिङ्ग का संकर है और काव्यलिङ्ग अलंकार अनुमान का उत्थापक है। अत: उनमें अङ्गाङ्गि भाव है। सन्देह संकर का उदाहरण—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शशिनमुपगतेयं कौमुदी-मेघमुक्तं
जलनिधिमनुरूपं जह्नुकन्यावतीर्णा।
इति समगुण-योग प्रीतयस्तत्र पौराः
श्रवणकटु नृपाणामेकवाक्यं विवव्रुः। रघु. ६-८५

इसमें यदि 'इयम्' पद से अज का वरण करने वाली इन्दुमती को निर्दिष्ट मानें तो विम्व- प्रतिबिम्ब- भावापन्न धर्म से युक्त दो सदृशों में ऐक्यारोप रूप निदर्शना होगी और यदि उसके द्वारा स्वरूप से ही उसका निर्देश माना जाय और विम्वभूतधर्म 'समगुणयोगप्रीतयः' इस पौर विशेषण से मान लिया जाय तो प्रस्तुत धर्मी में उस वृत्तान्त के प्रतिबिम्बभूत अप्रस्तुत वृत्तान्तारोप रूप ललित होगा। यहाँ इस बात का अनिश्चिय रहने से सन्देह संकर है। कुमार० में भी

तथेति शेषामिव भर्तु राज्ञामादाय मूर्ध्ना मदनः प्रतस्थे।
ऐरावता-स्फालन-कर्कशेन हस्तेन पस्पर्श तदङ्गमिन्द्रः॥

कुमार. ३-२२

यहाँ साधक-बाधक-प्रमाणों के प्रभाव में उपमा और उत्प्रेक्षा का सन्देह संकर है। यदि भर्ता ने शेषा (माला) भी दी तो "तामाज्ञामिव" यह उपमा है और नहीं दी तो शेषात्वेन उत्प्रेक्षित होने से उत्प्रेक्षा होगी।

"उन्नमितैकभ्रूलतमानन मस्याः पदानि रचयन्त्याः।
कण्टकितेन प्रथयति मय्यनुरागं कपोलेन॥ शाकुन्तल ३-१२

यहाँ अर्थापत्ति और अनुमान में विशेष निर्णायक न होने से सन्देह संकर है। ऐसे ही "तस्याः पुष्पमयी शरीर- लुलिता" (२-२३) में विशेषोक्ति और विभावना का और 'महाभागः कामं नरपतिरभिन्न स्थितिरसौ" (५-१०) में भी विभावना और विशेषोक्ति का ही सन्देह संकर है।

कालिदास की रचनाओं में प्रयुक्त अलंकारों का यह दिग्दर्शन मात्र है। वस्तुतः उनके बहुत कम श्लोक निरलंकृत है। और फिर नाटकों के गद्य में भी अलंकृति की कमी नहीं है। मज़े की बात यह कि इसमें कुछ भी अलंकारों को ध्यान में रखकर नहीं लिखा गया। कालिदास के समय में तो साहित्य शास्त्र की भी प्रतिष्ठा नहीं हो पायी थी। उन्हें इन अलंकारों के नामों तक का ज्ञान नहीं था और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न उनकी परिभाषा का। अलंकार तो सहजभाव से उनमें आ गये हैं। यही उनका महाकवित्व है।

परिशिष्ट

अनुप्रास—सरस्वती कण्ठाभरण ने षड्विध अनुप्रास का वर्णन करते हुए कुमार संभव के निम्न श्लोक को वर्णमसृणता का उदाहरण माना है—

स्थिताः क्षणं पक्ष्मसु ताडिताधराः पयोधरोत्सेध-निपात-चूर्णिताः।
वलीषु तस्याः स्खलिताः प्रपेदिरे क्रमेणनाभिं प्रथमोद-विन्दवः।

कुमार. ५-२४

इसी प्रकार वर्णोत्कट अनुप्रास का उदाहरण यह दिया है—

विमुच्य सा हारमहार्य-निश्चया विलोलयष्टि-प्रविलुप्त चन्दनम्।
बबन्ध बालारूणवभ्रु वल्कलं पयोधरोत्सेध-विशीर्ण-संहति।

कुमार. ५-८

उसने पदानुप्रास के १२ भेद बतलाते हुए दन्तुर पद का निम्नोक्त उदाहरण दिया है—

स नैषधस्यार्थपतेः सुतायामुत्पादयामास निषिद्ध- शत्रुः।
अनूनसारं निषधान्नगेन्द्रात् पुत्रं यमाहुर्निषधाख्यमेव।। रघु. १८-१

विक्रमार्वशीयम् का यह श्लोक भी अनुप्रास- मण्डित है—

अलक- संयमना दिवलोचने हरति मे हरिवाहन दिङ्मुखम्।

उपमा—

विक्रमोर्वशीयम् के निम्नोक्त श्लोकों में उपमाद्रष्टव्य है—

सखीभिर्याति सम्पर्कं लताभिः श्रीरिवार्तवी।
यावत् पुनरियं सुभ्रूरुत्सुकाभिः समुत्सुका।

विक्रमो. १-१४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहाँ उर्वशी की सखियों का लतासदृश अङ्गयष्टि वाली और उनके बीच उसका ऋतु श्री के समान श्रेष्ठ होना उपमा का हेतु है।

मालोपमा—

एक उपमेय के अनेक उपमान होने पर मालोपमा होती है—मालोपमायदेकस्योपमानं बहु दृश्यते। निम्न श्लोक में एक ही उर्वशी के अनेक उपमान होने से मालोपमालंकार है।

> **आविर्भूते शशिनि तमसा रिंच्यमानेव रात्रिः**
> **नैशस्यार्चिर्हुतभुज इव च्छिन्नभूयिष्ठ-धूमा।**
> **मोहेनान्तर्वरतनुरियं लक्ष्यते मुच्यमाना,**
> **गङ्गा रोधः-पतन-कलुषा गच्छतीव प्रसादम्।** विक्रमो. १-९

और यहाँ भी—

> **अमरमुनिरिवात्रिः स्त्रष्टुरत्रेरिवेन्दु**
> **र्वुधइव शिशिरांशो-र्वोधनस्येव-देवः।**
> **भव पितुरनुरुपस्त्वं गुणै र्लोक-कान्तै-**
> **रतिशयिनि समस्ता वंश एवाशिषस्ते।** विक्रमो. ५-२१

यहाँ पारम्पर्य द्योतन के लिये अनेक उपमानों का प्रयोग है।

कल्पितोपमा—

> **गोरोचना-निकष-पिङ्ग- जटाकलापः**
> **संलक्ष्यते शशिकलामलवीत-सूत्रः**
> **मुक्ता-गुणातिशय-सम्भृत-मण्डनश्रीः**
> **हैमप्ररोह इव जङ्गम-कल्पवृक्षः।** विक्रमो. ५-१९

इसके प्रथमार्ध में दो उपमायें हैं। अन्तिम चरण में उपमानभूत जङ्गम कल्पवृक्ष के कल्पित होने के कारण कल्पितोपमा है। विक्रमोर्वशीयम् के २-२१, ३-१३, ४-२७ और ४-३७ भी उपमा के उत्तम उदाहरण हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्प्रेक्षा—

आदर्शनात् प्रविष्टा सा मे सुरलोक-सुन्दरी हृदयम्।
वाणेन मकरकेतोः कृतमार्गमवन्ध्यपातेन ।। विक्रमो. २-२

यहाँ वाणेन के द्वारा हृदय के कृतमार्ग होने की सम्भावना के कारण उत्प्रेक्षा अलंकार है ।

असुलभा सकलेन्दु-मुखीच सा किमपि चेदमनङ्ग-विचेष्टितम्।
अभिमुखीष्विव वाञ्छित-सिद्धिषु व्रजति निर्वृतिमेकपदे मनः ।।
विक्रमो. २-९

यहाँ वाञ्छित सिद्धियों के अभिमुखी होने की संभावना से उत्प्रेक्षा है । इसी प्रकार विक्रमो. २-१८, ३-२, ३-६ और ४-६६ में उत्प्रेक्षा देखी जा सकती है ।

रूपक—

परिजन-वनिता-करार्पिताभिः
परिवृत एष विभाति दीपिकाभिः ।
गिरिरिव गतिमानपक्षसादाद्
नुतट-पुष्पित-कर्णिकार-यष्टिः । विक्रमो. ३-३

यहाँ पर्वत पर कर्णिकार तरुओं में यष्टित्व के आरोप से वनिता सदृश लता का भी समारोप हुआ है । यहाँ पूर्णोपमा तो है ही, कर्णिकार तरुओं के ऊपर यष्टित्व के द्वारा ताद्रूप्य का भी प्रतिपदान किया है, अतः रुपक स्पष्ट है । एक अन्य श्लोक—

विद्युल्लेखाकनक-रुचिरं श्रीवितानं ममाभ्रं,
व्याधूयन्ते निचुल-तरुभि र्मञ्जरी-चामराणि ।
धर्मच्छेदात् पटुतरगिरो वन्दिनोनीलकण्ठा,
धारासारोपनयनपरा नैगमाश्चाम्बुवाहाः । विक्रमो. ४-४

इस श्लोक में प्रथम तीन चरणों में शुद्ध-परम्परित और चतुर्थ चरण में 'धारा सार' इस पद के श्लिष्ट (सार = जल और वित्त) होने से श्लिष्ट परम्परित रुपक है । ऐसे ही—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मदकल युवति-शशिकला गज यूथप-यूथिका-शवल-केशी।

स्थिर-यौवना स्थिता ते दूरालोके सुखालोका ।। विक्रमो. ४-४६

इस श्लोक में अनुप्रास तो स्पष्ट ही है। साथ ही—

नियतारोपणोपाय: स्यादारोप: परस्यय:।

तत्परम्परितं श्लिष्टेवाचके भेद-भाजि वा। का.प्र.

इस परिभाषा के अनुसार शुद्ध परम्परित रुपक भी है। 'जब अन्य युवतियाँ तारात्व को प्राप्त करें तो उर्वशी शशिकला का स्थान प्राप्त करे' इस प्रकार रुपक के परम्परागत होने तथा अश्लिष्ट होने से शुद्ध परम्परित है।

यथा-संख्य—

सूर्याचन्द्रमसौ यस्य मातामहपितामहौ।

स्वयंवृत: पतिर्द्वाभ्यामुर्वश्या च भुवाच य: ।। विक्रमो. ४-३८

इसके पूर्वार्ध में यथा- संख्यालंकार सुस्पष्ट है।

विशेष—

विशेष अलंकार वहाँ भी होता है जहाँ वेग पूर्वक किसी कार्य को करने वाला कर्त्ता उसी प्रयत्न से किसी अन्य कठिन कार्य को भी कर डालता है—

अन्यत्प्रकुर्वत: कार्यमशक्यस्यान्यवस्तुन:।

तथैव करणं चेति विशेषस्त्रिविध: स्मृत: ।। का. प्र. १०-१३६

यथा—

गृहिणी सचिव: सखीमिथ: प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ।

करुणा-विमुखेन मृत्युना हरता त्वां वद किन्न मे हृतम् ।।

रघु. ८-६७

यहाँ पर इन्दुमती- के प्राणहरण करने वाली मृत्यु ने उसी प्रयत्न से अज की सचिव, सखी और शिष्या का भी हरण कर लिया, यह बतलाया गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रस-सिद्धि

आचार्य भरत ने विभाव, अनुभाव और संचारी भावों के संयोग से रस की निष्पत्ति मानी है । मम्मट के अनुसार भी इन्हीं तीनों से व्यक्त स्थायी भाव का नाम रस है । स्थायी भाव जब आस्वादन योग्य अवस्था को पहुँच जाते हैं तो वे रस कहलाते हैं—

विभावा अनुभावा स्तत् कथ्यन्ते व्यभिचारिणः ।

व्यक्तः स तै र्विभावाद्यैः स्थायीभावो रसोमतः । का.प्र. ४-२८

स्थायीभाव वासना रूप से चित्त में सदा विद्यमान रहते हैं और वे उपर्युक्त तीनों के द्वारा उद्बुद्ध होकर व्यक्त हो जाते हैं । विश्वनाथ का भी कथन है—

विभावेनानुभावेन व्यक्तः संचारिणा तथा ।

रसतामेति रत्यादिः स्थायिभावः सचेतसाम् ॥ सा. द. ३-१

इसका अर्थ यह हुआ कि स्थायी चित्त- वृत्तियों को व्यक्त करने में विभाव अनुभाव और संचारी भाव कारण होते हैं । तीनों की एक साथ उपस्थिति हो तो बहुत अच्छा, किन्तु यदि तीनों में कोई दो या केवल एक भी असाधारण रूप से निर्दिष्ट हो तो शेष का आक्षेप हो जाता है और रस निष्पत्ति हो जाती है । काव्योपयोगी स्थायी चित्त वृत्तियाँ हैं—रति, ह्रास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा और विस्मय । निर्वेद भी स्थायी वृत्ति है । इनसे जिन रसों की निष्पत्ति होती है, वे हैं—शृङ्गार, हास, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत और शान्त ।

कालिदास की रचनाओं में इनमें से अनेक रसों और उनके अंगों के उदाहरण देखे जा सकते हैं । सारा ऋतुसंहार, कुमारसंभव का अष्टमसर्ग और रघुवंश का उन्नीसवां सर्ग सम्भोग शृङ्गार के वर्णन से ओत प्रोत है । इनके अतिरिक्त भी नाटकों और रघुवंश के अनेक स्थलों में शृंङ्गार का रम्य परिपाक मिलता है । विप्रलम्भ शृंङ्गार का काव्य मेघदूत प्रसिद्ध ही है । कुमार संभव का पञ्चम सर्ग तीनों नाटकों का अधिकांश और रघुवंश के छिटपुट स्थल भी विप्रलम्भ के श्रेष्ठ उदाहरण हैं । अभिज्ञान शाकुन्तल का विदूषक यत्र तत्र हास की सृष्टि करता चलता है । यों हास का पुट इन रचनाओं में स्वल्प ही है । करुण के लिये रघुवंश का अजविलाप और कुमार संभव का रति विलाप सुप्रसिद्ध है । रौद्र, वीर और भयानक रस रघु-पुरन्दर युद्ध, रघु की दिग्विजय यात्रा, अज और स्वयंवर से लौटते राजाओं के बीच युद्ध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और राम रावण युद्ध में शान्त रस नाटकों के आश्रम वर्णनों, कुमार संभव के तृतीय, चतुर्थ, पंचम सर्गों, रघुवंश के प्रथम सर्ग, रघु के गृहत्याग आदि अनेक स्थलों में देखा जा सकता है। प्रकृति वर्णन जिनसे ये कृतियाँ भरी पड़ी हैं, शृंङ्गार के ही अंतर्गत आते हैं। ऋतु संहार के ग्रीष्म वर्णन में भयानक रस की श्रेष्ठ झाँकी विद्यमान है। अद्भुत के उदाहरण अपेक्षा कृत कम है यद्यपि रघुवंश के युद्ध प्रसंगों तथा निशाचर माया के चित्रण एवं अन्यत्र भी उसकी उपस्थिति स्पष्ट है। काव्य शास्त्रीय ग्रन्थों ने कालिदास की कृतियों से बड़ी संख्या में रसादि के उदाहरणों का चयन किया है। उदाहरणार्थ विरह जन्य शृंङ्गार-विलम्भ के लिये मेघदूत का अति प्रसिद्ध पद्य "त्वामालिख्य प्रणयकुपिताम्" आदि तथा भयानक रस के लिये शाकुन्तल का "ग्रीवाभङ्गाभिरामं मुहुरनुपतति स्यन्दने बद्ध दृष्टिः" आदि श्लोक तथा शाकुन्तल के ही "यदालोके सूक्ष्मं व्रजति सहसातद् विपुलताम्' और विक्रमोर्वशीयम् का "अग्रे यान्ति रथस्य रेणुपदवीं चूर्णीभवन्तो घनाः" श्लोक अद्भुत रस के उत्तम उदाहरण हैं। कुछ आचार्य वत्सल को भी रस मानते हैं। शाकुन्तल के अन्तिम भाग, विक्रमोर्वशीयम् के अन्तिम अंक में तथा रघुवंश के तृतीय सर्ग में वात्सल्य का परिपाक देखा जा सकता है। यथा—

> **आलक्ष्य-दन्त-मुकुलाननिमित्त-हासै**
> **रव्यक्तवर्णरमणीयवचः-प्रवृत्तीन्।**
> **अङ्काश्रयप्रणयिन स्तनयान् वहन्तो**
> **धन्या स्तदङ्गरजसा मलिनीभवन्ति।** शाकु. ७-१७

तथा—

> **वाष्पायते निपतिता मम दृष्टिरस्मिन्,**
> **वात्सल्य-बन्धि हृदयं मनसः प्रसादः।**
> **संजात-वेपथुभिरुज्झितधैर्यवृत्ति**
> **रिच्छामि चैनमदयं परिरब्धुमङ्गैः॥** विक्रमो. ५-९

तथा—

> **इयं ते जननी प्राप्ता त्वदालोकनतत्परा।**
> **स्नेह-प्रसव-निर्भिन्नमुद्वहन्ती स्तनांशुकम्।** वही १२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा—

तमङ्कमारोप्य शरीर-योगजैः सुखैनिषिञ्चन्तमिवामृतं त्वचि।

उपान्त-संमीलित-लोचनो नृपश्चिरात् सुतस्पर्श-रसज्ञतां ययौ।

रघु. ३-२६

रघुवंश के तृतीय सर्ग में भी ऐसे कई श्लोक हैं

विप्रलम्भ शृङ्गार के कारणों में अनुरक्त नायक या नायिका का कार्यवश विदेश चला जाना, पर सेवा, संभ्रम (उत्पात या परचक्रादिजन्य विप्लव), शाप और प्रवास या भिन्न- देशता प्रमुख है। दिव्य-मानुष-विप्लव से जन्य संभ्रमज प्रवास पर आधारित विप्रलम्भ विक्रमोर्वशीय में मिलता है। शाप- जन्य प्रवास पर आश्रित विप्रलम्भ मेघदूत में है। यथा—

उत्संगे वा मलिनवसने सौम्य निक्षिप्यवीणां,

मद्गोत्राङ्कं विरचितपदं गेयमुद्गातुकामा।

तन्त्रीमार्द्रांनयन-सलिलैः सारयित्वा कथञ्चिद्

भूयो भूयः स्वयमपिकृतां मूर्च्छनां विस्मरन्तीम्॥ उत्तर. मेघ २३

इसके विपरीत विभावानुभाव संचारियों के द्वारा उपजायमान रस- प्रतिपत्ति इस श्लोक में सुन्दर रीति से व्यक्त है—

विवृण्वती शैल-सुतापि भावमङ्गैः स्फुटद्बाल-कदम्बकल्पैः।

साचीकृता चारुतरेण तस्थौ मुखेन पर्यस्त-विलोचनेन॥

कुमार. ३-६८

रति के लिये प्रथम अपेक्षित वस्तु है आलम्बन विभाव। आचार्यों ने निम्न श्लोक को प्रायः आलम्बन विभाव के रूप में उद्धृत किया है जो पुरुरवा के प्रेम की आलम्बनभूत उर्वशी के विषय में है—

अस्याः सर्गविधौ प्रजापतिरभूच्चन्द्रो नु कान्तिप्रदः,

शृङ्गारैकनिधिः स्वयन्नु मदनो मासो नु पुष्पाकरः।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेदाभ्यासजडः कथन्नु विषयव्यावृत्त-कौतूहलो।
निर्मातुं प्रभवेन्मनोहरमिदं रूपं पुराणो मुनिः ।। विक्रमो. १-१०

कभी कभी विभाव, अनुभाव और संचारी भाव में किसी एक के ही विद्यमान रहने पर भी रसास्वाद होता है क्योंकि वहाँ प्रकरणादि के कारण अन्य भावों का समाक्षेप कर लिया जाता है । यथा—

दीर्घाक्षं शरदिन्दुकान्तिवदनं बाहूनतावंसयोः,
संक्षिप्तं निविडोन्नतस्तनमुरः पार्श्वे प्रमृष्टे इव।
मध्यः पाणिमितो नितम्बि जघनं पादावरालाङ्गुली,
छन्दो नर्तयितुर्यथैव मनसः सृष्टं तथास्यावपुः ।। माल. २-३

यद्यपि यहाँ अग्निमित्र के प्रणय की आलम्बन मालविका का ही वर्णन है फिर भी प्रेमी की उक्ति होने के कारण औत्सुक्य आदि संचारी भाव तथा नयन विस्फार आदि अनुभावों का आक्षेप हो जाने से यहाँ श्रृंङ्गार रस की सिद्धि हो जाती है ।

कालिदास प्रणय के शिल्पी हैं । उनकी कृतियों में श्रृंङ्गार-चित्रों का बाहुल्य स्वाभाविक है—

मधु द्विरेफः कुसुमैकपात्रे पपौ प्रियां स्वामनुवर्तमानः ।
श्रृङ्गेण च स्पर्श-निमीलिताक्षीं मृगीमकण्डूयत कृष्णसारः ।।

कुमार. ३-३६

तथा—

एषा कुसुम निषण्णा तृषितापि सती भवन्तमनुरक्ता।
प्रतिपालयति मधुकरी न खलु मधु त्वया विना पिबति।।

शाकु. ६-२३

रति के अनेक मधुर चित्र कालिदास में बिखरे हैं । यथा—

उपोढरागेण विलोलतारकं तथा गृहीतं शशिना निशामुखम्।
यथा समस्तं तिमिराशुकं तथा पुरोऽपि रागाद् गलितं न लक्षितम्।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा—

चलापाङ्गां दृष्टिं स्पृशसि बहुशो वेपथुमतीं
रहस्याख्यायीव स्वनसि मृदु कर्णान्तिकचरः ।
करौ व्याधुन्वन्त्याः पिबसि रति सर्वस्वमधुरं
वयं तत्त्वान्वेषान्मधुकर हतास्त्वं खलुकृती ।। शाकु. १-२१

ये सब स्थल रसाभास के हैं क्योंकि तिर्यगादि- विषया रति में रसाभास माना जाता है । इसी प्रकार प्रधानता से प्रतीयमान निर्वेद आदि संचारी भाव, देवगुरु आदि के विषय में अनुराग, एवं सहायक सामग्री के अभाव में रस रूप को अप्राप्त रति, हास आदि स्थायी, ये सब भाव कहलाते हैं । रस और भावों की सिद्धि एक दूसरे पर निर्भर रहती है । रसके बिना भाव नहीं और भाव के बिना रस नहीं होते । कहा है—

संचारिणः प्रधानानि देवादिविषया रतिः ।
उद्बुद्धमात्रः स्थायी च भाव इत्यभिधीयते । सा. ३-२६०

तथा—

न भावहीनोऽस्ति रसो न रसो भाववर्जितः ।।
परस्पर- कृतासिद्धरनयोः रसभावयोः ।।

इस प्रकार—

हरस्तु किंचित् परिवृत्तधैर्यश्चन्द्रोदयारम्भ इवाम्बुराशिः ।
उमामुखे विम्वफलाधरोष्ठे व्यापारयामास विलोचनानि ।।

कुमार. ३-६७

यहाँ पार्वती-विषयक शिव की रति वर्णित है किन्तु यहाँ स्थायी भाव उद्बुद्धमात्र है—रस कोटि तक नहीं पहुँच पाया । भाव बन कर ही रह गया है—

रति या काम की दश अवस्थायें आचार्यों ने बतलायी हैं । इनमें प्रलाप और व्याधि भी हैं । कुमार संभव के निम्न श्लोक में प्रलाप की स्थिति है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्रिभाग- शेषासु निशासु च क्षणं निमील्यनेत्रे सहसा व्यवुध्यत।
क्व नीलकण्ठ व्रजसीत्यलक्ष्यवागसत्य- कण्ठार्पित बाहुबन्धना ॥

कुमार. ५-५७

श्रेष्ठ नायक के गुणों में अनुरागिता और धैर्य भी है। अनुरागिता के द्वारा वह अपने निकटवर्ती जनों के बीच उनका स्नेहास्पद बनता है और धैर्य के कारण अपने निश्चय या लक्ष्य पर स्थिर रहता है। रघुवंश में अज अनुरागिता के कारण लोकप्रिय है—

अहमेव मतो महीपतेरिति सर्वः प्रकृतिष्वचिन्तयत्।
उदधेरिव निम्नगा- शतेष्वभवन्नास्य विमानना क्वचित्।

रघु. ८-८

और धैर्य देखिये—विकार हेतु की उपस्थिति में भी निर्विकारता—

श्रुताप्सरोगीतिरपि क्षणेऽस्मिन् हरः प्रसंख्यानपरो वभूव।
आत्मेश्वराणां नहि जातु विघ्नाः समाधि- भेद- प्रभवो भवन्ति ॥

कुमार. ३-४०

नायिकाओं में प्रोषित पतिका के चित्रण मेघदूत के उत्तरार्ध में अनेक श्लोकों में हैं। प्रोषितभर्तृका वह स्त्री कहलाती है जिसका पति कार्यवश दूर देश को चला गया है और जो इस कारण कामपीड़ा का अनुभव करती हो—

तां जानीथाः परिमित-कथा जीवितं मे द्वितीयं,
दूरीभूते मयि सहचरे चक्रवाकीमिवैकाम्।
गाढोत्कण्ठां गुरुषु दिवसेष्वेषु गच्छत्सु बालां,
जातां मन्ये शिशिर-मथितां पद्मिनीं वान्यरुपाम् ॥ मेघ. २-२०

यह प्रोषित पतिका यक्षी के पति के द्वारा ही उसकी पीड़ा का चित्रण है।

निर्विकार चित्त में होने वाली प्रथम विक्रिया भाव कहलाती है। भाव चित्त विकार का नाम है और यदि भाव की प्रतिक्रिया भ्रूनेत्रादि के विकारों द्वारा थोड़ी-थोड़ी बाहर व्यक्त हो तो उसे हाव कहते हैं। यह यौवन काल में होने वाले अट्ठाईस सत्त्वज अलंकारों में एक है। पार्वती के हाव का कालिदास द्वारा चित्रण देखिये—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विवृण्वती शैलासुतापिभावमङ्गैः स्फुरद्बालकदम्बकल्पैः ।

साचीकृता चारुतरेण तस्थौ मुखेन पर्यस्त-विलोकनेन ॥

कुमार. ३-६८

यौवन के सत्त्वज अलंकारों में शोभा भी एक है । कालिदास के इस श्लोक में शोभा का चित्र है—

असंभृतं मण्डनमङ्गयष्टेरनासवाख्यं करणं मदस्य ।

कामस्य पुष्प-व्यतिरिक्तमस्त्रं वाल्यात् परं साऽथ वयः प्रपेदे ॥

कुमार. १-३१

वक्रोक्ति- जीवित कार ने इसे विभावनालंकार के उदाहरण के रूप में उद्धृत किया है । माधुर्य भी सत्त्वज अलंकार है जो सब दशाओं में रमणीय होता है । शाकुन्तल में माधुर्य का चित्र—

सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यम्,

मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति ।

इयमधिक-मनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी,

किमिवहि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम् । शाकु. १-१८

रम्य वस्तु को देखने के लिये चञ्चल होने का नाम है कुतूहल । यौवन में कुतूहल सहज होता है । यह भी सत्त्वज अलंकार है । कुतूहल का एक दृश्य—

प्रसाधिकालम्बितमग्रपादमाक्षिप्यकाचिद् द्रवरागमेव ।

उत्सृष्ट-लीलागतिरागवाक्षादलक्तकाङ्कांपदवीं ततान ॥

कुमार. ७-५८

आचार्य भोज के मत में तो श‍ृङ्गार रसराज ही है । वह इसे अभिमान या अहङ्कार कहते हैं । उनके विचार से कवि का श‍ृङ्गारी होना आवश्यक है क्योंकि—

श‍ृङ्गारी चेत् कविः काव्ये जातं रसमयं जगत् ।

स एव चेदश‍ृङ्गारी नीरसं सर्वमेव तत् ॥ सर. कण्ठा ५-१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेम की गति सर्प के समान कुटिल होती है और प्रेम में विप्रलम्भ आवश्यक है क्योंकि उस के बिना संभोग शृङ्गार पुष्ट नहीं होता—न विना विप्रलम्भेन संभोगः पुष्टिमश्नुते। रति मन के अनुकूल बातों में सुख की संवेदना का नाम है और बिना संप्रयोग या संभोग की रति प्रीति कहलाती है—

मनोऽनुकूलेष्वर्थेषु सुखसंवेदनं रतिः।

असंप्रयोगविषया सैव प्रीति र्निगद्यते॥ सर. कण्ठा. १३८

सात्त्विकादि की उत्पत्ति न हो पाने के कारण कई बार रस का पाक नहीं हो पाता और रस केवल भाव बनकर रह जाता है। उदाहरणार्थ निम्न श्लोक में विम्वोष्ठादि के कारण मन के अनुकूल पार्वतीमुख पर शिव के विलोचनों के टिक जाने से उनका अभिलाष तो सूचित होता है किन्तु वह आगे न बढ़कर वहीं रुक जाता है। यथा—

हरस्तु किञ्चित् परिवृत्त-धैर्यश्चन्द्रोदयारम्भ इवाम्वु- राशिः।

उमामुखे विम्ब-फलाधरोष्ठे व्यापारयामास विलोचनानि॥

कुमार. ३-६७

निम्न श्लोक में संवेद और रोमाञ्च उत्पन्न हो जाने के कारण दो सात्त्विक भाव प्रकट है जिससे रस का रति रूप से अविर्भाव होता है—

आसीद् वरः कण्टकित-प्रकोष्ठः स्विन्नाङ्गुलिः संववृते कुमारी।

तस्मिन् द्वये तत्क्षणमात्म-वृत्तिः समं विभक्तेव मनोभवेन॥

रघु. ७-२२

कभी कभी संचारी का जन्म रस के जन्म को ज्ञापित करता है। यथा निम्न श्लोक में उत्पन्न ह्री नामक संचारी शृंङ्गार रस की उत्पत्ति को सूचित करता है—

तयोरपाङ्ग-प्रविचारितानि किंचिद् व्यवस्थापित-संहृतानि।

ह्री यन्त्रणामानशिरे मनोज्ञामन्योन्यलोलानि विलोचनानि।

रघु. ७-२३

इसी प्रकार कभी कभी उत्पन्न अनुभाव भी रस को ज्ञापित करता है—जैसे—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ततः सुनन्दावचनावसाने लज्जां तनूकृत्य नरेन्द्रकन्या।
दृष्ट्या प्रसादामलया कुमारं प्रत्यग्रहीत् संवरणस्त्रजेव ।।

रघु. ६-८०

यहाँ प्रसादामलरुपा दृष्टि अनुभाव का रूप ग्रहण करती हुई रस के अविर्भाव को सूचित करती है। और रति रूप से रस की निष्पत्ति इस श्लोक में देखी जा सकती है—

तां वीक्ष्य वोपथुमतीं सरसाङ्गयष्टिं
निक्षेपणायपदमुद्धृतमुद्वहन्तीम्।
मार्गाचल-व्यतिकराकुलितेव सिन्धुः
शैलाधिरजतनया न ययौ न तस्थौ।। कुमार. ५-८५

प्रस्तुत श्लोक में शिव के प्रतिकूल रहने पर भी जन्मान्तर के संस्कार के कारण उनके प्रति पार्वती भी रति सर्वकालाविच्छिन्न है, भले ही शिव उनसे वियुक्त हो। और वह रति दुश्चर तप के द्वारा और उद्दीप्त हुई एवं शिव के आकस्मिक दर्शन ने उसमें और उत्तेजना को जन्म दिया। इससे पार्वती में तुरन्त सात्त्विक स्वेद, स्तम्भ और वेपथु का जन्म हुआ जिनसे हर्ष, धृति, स्मृति, आवेग, साध्वस आदि व्यभिचारि- भाव उपलक्षित हुए और इस प्रकार रति के पदनिक्षेप रूप शरीरानुभाव का उपर्युक्त संचारी भावों के साथ संसर्ग हुआ। परिणामतः यहाँ विभावानुभाव संचारी भावों के संयोग से रति के द्वारा श्रृङ्गार रस की निष्पत्ति हुई है।

सात्त्विक भाव स्तम्भादि आठ हैं। ये रस के जन्म, निष्पत्ति और पुष्टि के कारण बनते हैं। स्वेद रूप सात्त्विक भाव से रस का जन्म निम्न श्लोक में स्पष्ट है—

हिमव्यपायाद्विशदाधराणामापाण्डुरी-भूतमुखच्छवीनाम्।
स्वेदोदगमः किम्पुरुषाङ्गनानां चक्रे पदं पत्र-विशेषकेषु।।

कुमार. ३-३३

अश्रुरूप सात्त्विक भाव के द्वारा रस का अनुबन्ध निम्न श्लोक में देखिये—

उत्पक्ष्मणो र्नयनयोरुपरुद्धवृत्ति
वाष्पं कुरु स्थिरतया शिथिलानुबन्धम्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अस्मिन्नलक्षित नतोन्नतभूमिभागे
मार्गे पदानि खलु ते विषमी भवन्ति। शाकु. ४-१५

कण्ठाश्रय दुःखावेश के द्वारा रसानुबन्ध (करुण) निम्न श्लोक में देखा जा सकता है—

विललाप स वाष्प-गद्‌गदं सहजामप्यपहाय धीरताम्।
अभितप्तमयोऽपि मार्दवं भजते कैनकथा शरीरिषु॥

रघु. ८-४३

प्रलय सात्त्विक भाव के द्वारा रसनिष्पत्ति—

तीव्राभिषङ्ग- प्रभवेण वृत्तिं मोहेन संस्तम्भयतेन्द्रियाणाम्।
अज्ञातभर्तृव्यसना मुहूर्तं कृतोपकारेव रतिर्वभूव॥ कुमार. ३-७३

पूर्व श्लोक में कण्ठनिरुद्ध अश्रु तथा प्रस्तुत श्लोक में प्रलय (मूर्च्छा) करुण रस की निष्पत्ति में साधक है।

संचारी या व्यभिचारी भावों की संख्या आचार्यों ने तैंतीस मानी है। विभावों और अनुभावों के साथ संचारी भी एक या अनेक संख्या में विद्यमान रहकर रस की निष्पत्ति में सहायक बनते हैं। कालिदास की रचनाओं में व्यभिचारियों की उपस्थिति स्वाभाविक है। नमूने के रूप में कुछ व्यभिचारी भावों से युक्त प्रसंगों की ओर निर्देश किया जा रहा है—

स्मृति—

पूर्व में अनुभूत विषय या वस्तु के ज्ञान को स्मृति कहते हैं। यथा—

इतः प्रत्यादेशात् स्वजनमनुगन्तुं व्यवसिता,
स्थिता तिष्ठेत्युच्चैर्वदति गुरुशिष्ये गुरुसमे,
पुनर्दृष्टिं वाष्पप्रसरकलुषामर्पितवती,
मयिक्रूरे यत्तत् सविषमिव शल्यं दहति माम्॥ शाकु. ६-९

इस श्लोक में दुष्यन्त के द्वारा शकुन्तला के प्रत्याख्यान काल की बातों की जाग्रत् स्मृति दुष्यन्त को पीडित करती वर्णित है। पुनर्मिलन की तीव्र इच्छा भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसमें व्यक्त है और पश्चात्ताप भी। ये सब मिलकर रति की निष्पत्ति में पर्यवसित होते हैं। यहाँ स्मृति रति के प्रकर्ष में सहायक है।

ऊह—

पदार्थों के विषय में वितर्क का नाम ऊह है। वह सत्य हो या असत्य, स्मृति, ज्ञान और चिन्तनादि के द्वारा निश्चयान्त होकर रस की निष्पत्ति का साधन बनता है। यथा—

चित्ते निवेश्य परिकल्पित सत्त्वयोगा

रुपोच्चयेत विधिना मनसा कृता नु।

स्त्रीरत्नसृष्टिरपराप्रतिभाति सा मे

धातुर्विभुत्वमनुचिन्त्य वपुश्च तस्याः।। शाकु. २-१०

यहाँ भी ऊह के द्वारा निश्चित शकुन्तला के रूप की लोकोत्तरता रति के प्रकर्ष में सहायक हुई है।

अभिलाष—इष्ट की प्राप्ति न होने पर उसके प्रति उत्कण्ठा को अभिलाष कहते हैं—

यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं संस्पृष्ट मुत्कण्ठया,

कण्ठः स्तम्भित-वाष्पवृत्ति-कलुषश्चिन्ताजडं दर्शनम्।

वैक्लव्यं मम तावदीदृशमहो स्नेहादरण्यौकसः,

पीड्यन्ते गृहिणः कथन्नु तनया-विश्लेषदुःखैर्नवैः। शाकु. ४-६

यहाँ विभावानुभाव संचारि-संयोग से प्रीति के समान उत्कण्ठा भी रस की आनुषंगिणी है किन्तु वह उत्तरार्ध के प्रतिपाद्य विस्मयादि के द्वारा अभिभूत हो जाने के कारण रस के ह्रास का कारण बन गयी है। रस का प्रकर्ष "मम अरण्यौकसः" इस कथन से निवृत्त हो जाता है।

चपलता—आत्म- प्रकाशनमयी चेष्टा का नाम है चपलता। यह रसोत्पत्ति का कारण हो सकती है। यथा निम्न श्लोक में—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कश्चित् कराभ्यामुपगूढ-नालमालीन-पत्राभिहत-द्विरेफम्।
रजोभिरन्तः-परिवेष-वन्धि लीलारविन्दं भ्रमयाञ्चकार॥

रघु. ६-१३

यहाँ लीलारविन्द के भ्रमण की चेष्टा द्वारा इन्दुमती के प्रति रति की अभिव्यक्ति हुई है।

मति—

शास्त्रोक्त वस्तु के अनुसन्धान के द्वारा उसके अर्थ के निर्धारण को मति कहते हैं। निम्नोक्त श्लोक में मति के द्वारा स्नेह की पुष्टि हुई है और फिर उत्तरार्ध के द्वारा उसका अनुबन्धन हुआ है—

असंशयं क्षत्रपरिग्रह-क्षमा यदार्य मस्यामभिलाषि मे मनः।

सतां हि सन्देह-पदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरण- प्रवृत्तयः।

शाकु. १-२०

चितार्द्रता—अहेतुक और अनिवर्य स्नेह का नाम है चित्तार्द्रता। निम्नोक्त श्लोक में इसके द्वारा रस निष्पत्ति हुई है। जो लोग वत्सल को रस नहीं मानते उसके मत में स्नेह माव की निष्पत्ति समझना चहिये—

अनेन कस्यापिकुलाङ्कुरेषु स्पृष्टेषु गात्रेषु सुखं ममैतत्।
कां निर्वृतिं चेतसि तस्य कुर्याद् यस्यायमङ्गात् कृतिनः प्ररूढः।

शाकु. ७-१९

यहाँ सिंह- माणवक के दमन को देखकर भरत के प्रति उत्पन्न हुआ स्नेह उसके अङ्गो के स्पर्श सुख से उद्दीपित और स्पृहा, मति, वितर्क आदि संचारिओं से जुड़कर स्थिर भाव का रूप ग्रहण करता है।

अवहित्था—

लज्जा के कारण हर्षादि के व्यञ्जक आकार को छिपाने का नाम अवहित्था है—

एवं वादिनि देवर्षौ पार्श्वे पितुरधो-मुखी।
लीलाकमल पत्राणि गणयामास पार्वती॥ कुमार. ६-८४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहाँ नारद वचन से उद्भूत हर्षाभिव्यक्ति को पिता के समीप रहने के कारण लज्जावश लीला कमलपत्रों को गिनने के बहाने छिपाया गया है जो उसके उत्कर्ष का कारण है ।

मद—

मदिरा के कारण होने वाले संमोह तथा आनन्दातिशय को मद कहते हैं—

घूर्णमाननयनं स्खलत्कथं स्वेदबिन्दु मदकारणस्मितम् ।
आननेन न तु तावदीश्वर श्चक्षुषाचिरमुमामुखं पपौ ।

कुमार. ८-८०.

यहाँ नयन घूर्णन, अकारणस्मित आदि संमोह और आनन्द को प्रकट करते हुए रति की निष्पत्ति करते हैं ।

दैन्य—

सामर्थ्य या शक्ति की कमी के कारण वाक्य या वचन में जो अनुत्कर्ष लक्षित होता है उसे दैन्य कहा जाता है—

अस्मान् साधुविचिन्त्य संयम-धनानुच्चैः कुलं चात्मन,
स्त्वय्यस्याः कथमप्यवान्धवकृतां प्रीतिप्रवृत्तिं च ताम् ।
सामान्य-प्रतिपत्ति पूर्वकमियं दारेषु दृश्या त्वया,
भाग्यायत्तमतः परं न खलुतद् वाच्यं वधू-बन्धुभिः ॥

शाकु. ४-१७

यहाँ प्रथम तीन पदों में याचनाजन्य दैन्य है जिसका उत्स शकुन्तला के प्रति कण्व का स्नेह है । और वह दैन्य चतुर्थ पाद में और भी वैवश्यजन्य दैन्य के साथ अनुबद्ध हो गया है और स्नेह या वात्सल्य भाव की परिपुष्टि का कारण है ।

ग्लानि—

आधि, व्याधि आदि के प्रकर्ष से उत्पन्न होने वाला बल या शक्ति का अपचय ग्लानि कहलाता है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसलयमिव मुग्धं बन्धनाद् विप्रलूनं,

हृदय-कुसुम-शोषी दारुणो दीर्घ-शोकः ।

ग्लययति परिपाण्डुक्षाममस्याः शरीरं,

शरदिज इव धर्मः केतकी-गर्भपत्रम् ।। माल. ३-१८

यहाँ प्रकृष्ट शोक से जुड़ी हुई ग्लानि विवर्णता और कृशता के साथ अनुबद्ध होकर विप्रलम्भ शृङ्गार को पुष्ट करती है ।

आवेग—

सम्भ्रम या घबराहट का नाम आवेग है । यह अनेक कारणों से हो सकता है । शत्रु- जन्य आवेग—

अर्घ्यमर्घ्यमिति वादिनं नृपं सोऽनपेक्ष्य भरताग्रजो-यतः ।

क्षत्र-कोपदहनार्चिषं ततः सन्दधे-दृशमुदग्रतारकम् ।। रघु. ११-६९

यहाँ परशुराम को देखकर राजा दशरथ के मन में संभ्रम हुआ है । यह वीर रस में उपकारक है ।

मोह—

भय, दुःख, घबराहट, अत्यन्त चिन्ता आदि के कारण उत्पन्न हुआ चित्तका विक्लव मोह होता है । इसमें मूर्च्छा, अज्ञान, पतन, चक्कर आना और अदर्शन आदि होते हैं । यथा—

तीव्राभिषङ्ग-प्रभवेणवृत्तिं मोहेन संस्तम्भयतेन्द्रियाणाम् ।

अज्ञातभर्तृव्यवसना मुहूर्तं कृतोपकारेव रतिर्बभूव ।।कुमार. ३-७३

यहाँ मोह करुण रस की निष्पत्ति में सहायक है ।

स्वप्न—

निद्रा में निमग्न पुरुष के विषयानुभव करने का नाम स्वप्न है । इसमें कोप, भय, आवेग, ग्लानि, सुख और दुःख, आदि होते हैं । विप्रलम्भ शृङ्गार के पोषक स्वप्न का चित्र—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मामाकाश-प्रणिहितभुजं निर्दयाश्लेषहेतो
र्लब्धायास्ते कथमपि मया स्वप्नसन्दर्शनेषु।
पश्यन्तीनां न खलु वहुशो न स्थली-देवतानां
मुक्ता-स्थूलास्तरु-किसलयेष्वश्रुलेशाः पतन्ति ॥ मेघ. २-४३

यहाँ यक्ष अपनी वियुक्त प्रियतमा का दर्शन स्वप्न में करता है ।

मरण—

वाणादि के लगने से प्राण- त्याग का नाम मरण है । इसमें देह का पतन होता है—

राम-मन्मथशरेण ताडिता दुःसहेन हृदये निशाचरी।
गन्धवद्रूधिरचन्दनोक्षिता जीवितेशवसतिं जगाम सा ॥

रघु. ११-२०

स्थायीभाव स्थिरता के साथ चित्त में विद्यमान रहते हैं किन्तु संचारी भाव स्थायी भाव में उन्मग्न-निमग्न अर्थात् आविर्भूत और तिरोहित होकर अनुकूलता से व्याप्त रहते हैं । विशेष रीति से अभिमुख-चरण के कारण ये व्यभिचारी कहलाते हैं। कभी कभी अनेक व्यभिचारी एक साथ भी देखे जाते हैं । जैसे इस श्लोक में—

क्वाकार्यं शशलक्ष्मणः क्व च पुनर्भूयोऽपिदृश्येतसा,
दोषाणां प्रशमाय नः श्रुतमहो कोपेऽपि कान्तं मुखम्।
किं वक्ष्यन्त्यपकल्मषाः कृतधियः स्वप्नेऽपि सा दुर्लभा,
चेतः स्वास्थ्यमुपैहि कः खलु युवाधन्योऽधरं पास्यति ॥

विक्रमो. ४-३३

उर्वशी को देखकर पुरुरवा की उक्ति है—कहाँ मेरा यह अनुचित कार्य (उर्वशी प्रेम) और कहाँ मेरा चन्द्रवंश ! अच्छा हो यदि वह फिर से दिखायी पड़ जाय । हमारा शास्त्राभ्यास दोषों के निवारण के लिये ही तो है । ओह ! क्रोध करने पर भी उसका मुख कैसा सुन्दर लगता है ! अरे पुण्यात्मा बुद्धिमान् लोग क्या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहेंगे ? किन्तु वह तो स्वप्न में भी दुर्लभ है । हे चित्त स्वस्थ हो जाओ । न जाने कौन भाग्यशाली युवा उसके अधर का पान करेगा । यह उन्माद संचारी का उदाहरण है और भावशवलता का भी । यहाँ प्रतीयमान उत्तरोत्तरभाव पूर्व- पूर्व भाव को उपमर्दित कर चमत्कार उत्पन्न करता है । इस प्रकार यहाँ वितर्क, औत्सुक्य, मति, स्मरण, शङ्का, दैन्य, धृति और चिन्ता की शवलता हो गयी है । अतः यहाँ भाव शवलता है । भाव सन्धि में केवल दो भावों का योग रहता है किन्तु शवलता में दो से अधिक भावों का सम्मर्द रहता है । यहाँ आठ भावों की शवलता है । यह श्लोक विक्रमोर्वशीयम् के कुछ संस्करणों में नहीं पाया जाता किन्तु काव्य प्रकाश, सरस्वती कण्ठाभरण और अलंकार शेखर आदि ने इसे उद्धृत किया है ।

रूप, तारुण्य और उपभोग के कारण उत्पन्न शोभा जो आङ्गिक विभूषणका काम देती है, कालिदास की रचनाओं में आकर्षक ढंग से चित्रित हुई है—यथा—

तां प्राङ्मुखीं तत्र निवेश्य वालां क्षणं व्यलम्बन्त-पुरोनिषण्णाः ।
भूतार्थ-शोभाह्रियमाणनेत्राः प्रसाधने सन्निहितेऽपि नार्यः ।

कुमार. ७-१३

प्रसाधन के लिये बैठी स्त्रियाँ पार्वती के शरीर से फूटते सौन्दर्य को देखकर कर्तव्यमूढ सी रह गयीं । उसकी शरीर की शोभा बिना प्रसाधन के ही अत्यन्त हृदयावर्जक थी । हिन्दी कवि बिहारी ने भी अंग शोभा का ऐसा ही वर्णन किया है ।

पहिरु न भूषण कनक के कहि आवत इहि हेत ।
दर्पन के से मोरचे दूरि दिखाई देत ॥

लिखन बैठि जाकी सबीहि गहि गहि गरब गरूर ।
भए न केते जगत के चतुर चितेरे कूर ॥

और शाकुन्तल का यह चित्र क्या कुछ कम हैं ?

अनाघ्रातं पुष्पं किसलयमलूनं कररूहै
रनाविद्धं रत्नं मधु नवमनास्वादित-रसम् ।
अखण्डं पुण्यानां फलमिव च तद्रूपमनघं
न जाने भोक्तारं कमिह समुपस्थास्यति विधिः ॥ शाकु. २-१०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसी शोभावती स्त्री के शरीर पर स्वल्प परिधान या अलंकरण भी बहुत कमनीयता उत्पन्न कर देते हैं। कुमार संभव का एक चित्र देखें—

कर्णार्पितो रोध्रकषाय-रुक्षे गोरोचनामेदनितान्त-गौरे।

तस्याः कपोले पर-भागलाभाद् बबन्ध चक्षूंषि यव-प्ररोहः।

कुमार. ७-१७

शास्त्रीय भाषा में इसे विच्छित्ति नामक स्वभावज यौवन भाव कहते हैं। युवती के समान कालिदास अपने युवा नायकों के आङ्गिक, बौद्धिक, चारित्रिक और व्यापारिक (कार्मिक) सौन्दर्य या आकर्षण का यथास्थान चित्रण करते चले हैं। यथा—**रूपसंपत्**–

ता राघवं दृष्टिभिरापिवन्त्यो नार्यो न जग्मु र्विषयान्तराणि।

तथाहि शेषेन्द्रिय-वृत्तिरासां सर्वात्मना चक्षुरिव प्रविष्ठा।

रघु. ७-१२

यहाँ रूप-सौन्दर्य जन्य रतिभाव है।

शीलसंपत्– नायक की शुचिता (मनोनैर्मल्य और कामादि से अनभिभूतता) का उदाहरण—

का त्वं शुभेकस्य परिग्रहो वा किं वा मदभ्यागमकारणं ते।

आचक्ष्व मत्वा वशिनां रघूणां मनः परस्त्री-विमुख-प्रवृत्ति॥

रघु. १६-८

यह रात्रि के मध्य भाग में एकाकी कुश के कक्ष में प्रविष्ट सुन्दरी युवति के प्रति कुश की उक्ति है। ऐसे ही प्रज्ञा भी व्यक्ति में आकर्षण उत्पन्न करती है—

प्रज्ञा संपत्–

यद्यत् प्रयोग-विषये भाविक मुपदिश्यते मया तस्यै।

तत्तद् विशेष-करणात् प्रत्युपदिशतीव मे वाला॥ माल. १-५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्याग—यह नायक में अपेक्षित गुणों में भी एक है। नायक का एक गुण स्वसुखतृष्णा के प्रति निरभिलाष होकर लोकहित चिन्तन भी है। यह दुष्यन्त की भी विशेषता है—

स्वसुख निर रभिलाषः खिद्यसे लोकहेतोः

प्रतिदिन मथवा तेवृत्ति रेवंविधैव।

अनुभवति हि मूर्ध्ना पादप स्तीव्र मुष्णं

शमयति परितापं छाययोपाश्रितानाम्। शाकु. ५-१२

त्याग संपत्—इसी प्रकार माया सिंह को गो मोक्षार्थ स्वशरीर अर्पित करने वाले दिलीप—

स त्वं मदीयेन शरीरवृत्तिं देहेन निर्वर्तयितुं प्रसीद।

दिनावसानोत्सुक-वालवत्सा विसृज्यतां धेनुरियं महर्षेः

रघु. २-४२

यह महासत्त्व धीरोदात्त नायक का लक्षण है। दयावीर का भी उदाहरण है यह।

संयमसंपत्— कोई कोई नायक नाट्यशास्त्र में वर्णित चारों प्रकार के नायकों की कोटि में नहीं आता। कुमार संभव के शिव ऐसे ही हैं। उनका रूप और आचार सभी विलक्षण हैं—

अथाजिनाषाढ़धरः प्रगल्भवाक् ज्वलन्निव व्रह्ममयेन तेजसा।

विवेश कश्चिज्जटिलस्तपोवनं शरीरबद्धः प्रथमाश्रमो यथा।

कुमार. ५-३०

नायक की शीलसंपत् ऊपर कही गयी है। रूप संपद् का एक चित्र यह भी है—

व्यूढोरस्को वृषस्कन्धः शालप्रांशुर्महाभुजः।

आत्म-कर्मक्षमं देहं क्षात्रो धर्म इवाश्रितः॥ रघु. १-१३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रुपादि संपत् रति का कारण होती है और प्रीति का भी । रति और प्रीति में इतना ही अन्तर है कि प्रथम सांप्रयोगिकी होती है किन्तु द्वितीय में सांप्रयोगिकी रति नहीं रहती यद्यपि उत्पत्ति दोनों की ही निसर्ग, संसर्ग, औपम्य, अध्यात्म या अभियोग (विशिष्ट क्रिया) से होती है । कहा है—

रति र्निसर्ग-संसर्गौपम्याध्यात्माभियोगजा ।

संप्रयोगाभिमानोत्था विषयोत्था च कथ्यते ।।

प्रीतिरप्येवमेवस्यान्नत्वस्यां सांप्रयोगिकी ।।

सर. क. ५-१६५, ६६

रति के परिपोष एवं उद्दीपन में अनेक वस्तुयें और परिस्थितियाँ सहायक होती हैं । यथा अनुराग की विषयभूत नायिका का विशिष्ट सौन्दर्य—

सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यं

मलिनममपि हिमांशो र्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति ।

इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी,

किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम् ।। शाकु. १-१८

इसी प्रकार अनुमान पर आश्रित मिलन की आशा—

शान्तमिदमाश्रमपदं स्फुरति च वाहुः कुतः फलमिहास्य ।

अथवा भवितव्यानां द्वाराणि भवन्ति सर्वत्र ।। शाकु. १-१५

उद्दीपन के कारणों में माल्य, वस्त्र, अलंकार, ऋतु, मद, धूप तथा स्थान, काल आदि हो सकते हैं । कालिदास ने अपनी कृतियों में इन सब का भरपूर उपयोग किया है । देखें—

माल्य—

अशोक-निर्भत्सित-पद्मरागमाकृष्टहेमद्युति कर्णिकारम् ।

मुक्ताकलापीकृत सिन्धुवारं वसन्तपुष्पाभरणं वहन्ती ।।

कुमार. ३-५३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहाँ वसन्त- पुण्य- माल्य पार्वती के रूप को उत्कर्ष प्रदान करता हुआ रति का उद्दीपक है ।

वस्त्र—

आवर्जिता किञ्चिदिव स्तनाभ्यां वासो वसानातरुणार्करागम् ।
पर्याप्त-पुष्पस्तवकावनम्रा संचारिणी पल्लविनी लतेव ।।

कुमार ३-५४

यहाँ तरुणार्क-राग-मय वस्त्र रति का उद्दीपक है ।

अलंकरण—

कण्ठस्य तस्याः स्तनवन्धुरस्य मुक्ताकलापस्य च निस्तलस्य ।
अन्योन्यशोभाजननाद्बभूव साधारणो भूषण- भूष्यभावः ।।

कुमार १-४२

ऋतु—

इदम सुलभ वस्तु प्रार्थना-दुर्विवारं
प्रथममपिमनो मे पञ्चवाणः क्षिणोति ।
किमुत मलयवातोन्मूलिता-पाण्डुपत्रै
रूपवन सहकारै र्दशितेष्वङ्कुरेषु ।। विक्रमो. २-६

यहाँ वसन्त का आगमन विप्रलम्भ रति की पीडा का उद्दीपक बतलाया गया है । और संभोग शृङ्गार का उद्दीपक देखें—

मद—

तत्क्षणं विपरिवर्तित-ह्रियोर्नेष्यतोः शयनमिद्धरागयोः ।
सा वभूववशवर्तिनी द्वयोः शूलिनः सुवदना मदस्य च ।।

कुमार ८-७९

यहाँ पार्वती की रति का उद्दीपक मद बतलाया गया है । ऐसे ही मल्लिका से अलंकृत केश अनुराग को प्रदीप्त करने के कारण होते है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्नानार्द्रमुक्तेष्वनुधूपवासं विन्यस्त-सायन्तनमल्लिकेषु।
कामो वसन्तात्यय-मन्दवीर्यः केशेषु लेभे वलमङ्गनानाम्।।

रघु. १६-५०

ये सब उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत आते हैं। कालिदास ने युवतियों की अनेक चेष्टाओं के मनोरम चित्र प्रस्तुत किये हैं। जैसे निम्न श्लोक में विव्वोक का सुन्दर चित्र है। अभीष्ट की प्राप्त हो जाने पर अभिमान और गर्व के कारण अभीष्ट वस्तु के प्रति भी अनादर भाव का नाम विव्वोक है। पार्वती के प्रसंग में विव्वोक का चित्र देखिये—

निर्विभुज्य दशनच्छदं ततो वाचि भर्तुरवधीरणापरा।
शैलराज- तनया समीपगामाललाप विजयामहेतुकम्।।

कुमार. ८-४९

विहृत— बोलने के अवसर पर वाणी से कुछ न कहकर क्रिया के अनुष्ठान को विहृत कहते हैं—वक्तव्य कालेऽ प्यवचो व्रीडया विहृतं मतम्। विहृत का एक चित्र

पत्युः शिरश्चन्द्रकलामनेन स्पृशेति सख्या परिहासपूर्वम्।
सा रञ्जयित्वा चरणौ कृताशी र्माल्येन तां निर्वचनं जघान।

कुमार. ७-१९

क्रीडितक—

क्रीडितक भी विव्वोक और विहृत के समान यौवन के २८ सत्त्वज अलंकारों में है। इसे केलि भी कहते हैं। यह वाल्य, कौमार और यौवन तीनों अवस्थाओं का विहार-विशेष है।

मन्दाकिनी-सैकत-वेदिकाभिः सा कन्दुकैः कृत्रिमपुत्रकैश्च।
रेमे मुहुर्मध्यगता सखीनां क्रीडारसं निर्विशतीव बाल्ये।।

कुमार. १-२९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुराग की कई कोटियाँ होती हैं। यथा पूर्वानुराग, प्रौढानुराग आदि। निम्न श्लोक प्रौढानुराग का व्यञ्जक है—

त्वमालिख्य प्रणयकुपितां धातुरागैः शिलाया

मात्मानं ते चरण-पतितं यावदिच्छामि कर्तुम्।

अस्त्रैस्तावन्मुहुरुपचितैर्दृष्टि रालुप्यते मे,

क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते संगमं नौ कृतान्तः। मेघ. २-४२

इस श्लोक में प्राचीन प्रणय, कोप और प्रसादनादि से अनुराग की प्रौढता का ज्ञान होता है। यही विप्रलम्भ प्रणयिजनों में से एक की मृत्यु हो जाने पर करुण में परिवर्तित हो जाता है। इन्दुमती के व्यपाय के कारण अज का दुःखातिशय करुण बन गया है। यथा—

ध्रुवमस्मि शठः शुचिस्मिते कलितः कैतववत्सलस्त्वया,

परलोकमसंनिवृत्तये यदनामन्त्र्यगतासि मामितः। रघु. ८-४९

और निम्न श्लोक में पुरुष के व्यपाय के कारण रति का शोक- प्रकर्ष करुण बन गया है। यथा—

हृदये वससीति मत्प्रियं यदवोचस्तदवैमि कैतवम्।

उपचार-पदं न चेदिदं त्वमनङ्गः कथमक्षता रतिः॥ कुमार. ४-९

संभोग शृङ्गार का सुख और हर्ष द्विगुण हो जाता है जब वह प्रथमानुराग, मान, प्रवास आदि के अनन्तर होता है। पहले असंगत या संगत होकर वियुक्त नायक नायिका के परस्पर मिलन से उत्पन्न रति नाम स्थायी भाव अभिलषित आलिङ्गनादि की प्राप्ति हो जाने पर उनसे उत्पन्न हर्ष, धृति, स्मृति, मति प्रभृति व्यभिचारी भावों से संसक्त होकर तथा ऋतु, उद्यान, मधुपान, चन्द्रोदय आदि उद्दीपनों से उद्दीप्त होता हुआ और सविभ्रम-भ्रू-कटाक्ष-आलाप-संभ्रम-स्मित आदि अनुभावों से अभिव्यज्यमान होता हुआ संभोग शृंगारवस्था को प्राप्त होता है। प्रवासान्तर समागम विषयक संभोग शृंङ्गार—

शापान्तो मे भुजगशयनादुत्थिते शार्ङ्गपाणौ,

मासानेतान् गमयचतुरो लोचने मीलयित्वा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पञ्चादावां विरह-गुणितं तं तमात्माभिलाषं
निर्वेक्ष्यावः परिणत-शरच्चन्द्रिकासु क्षपासु ।। मेघ. २-४७

कालिदास ने पुरुषों के समान पशु पक्षियों के भी संभोग शृंङ्गार का सोत्साह वर्णन किया है यद्यपि ये वर्णन रसाभास की कोटि में आते हैं। शास्त्रकारों ने यह बात सामान्य मनोविज्ञान की दृष्टि से ठीक ही कही है क्योंकि स्त्री पुरुष के रति भाव का पाठक के साथ साधारणीकरण हो जाता है और पाठक मैं, तुम आदि के भान से मुक्त होकर निर्वन्ध मनःस्थिति में उसका आस्वाद लेता है। तिर्यग् जाति की रति के साथ पाठक की वैसी एकाकारता नहीं बन पाती, किन्तु यह अलग है। कवि द्वारा तिर्यग् रति के चित्र भी कम कमनीय नहीं है। यथा—

मधु द्विरेफः कुसुमैकपात्रे पपौ प्रियांस्वामनुवर्तमानः।
शृङ्गेण च स्पर्श-निमीलिताक्षीं मृगीमकण्डूयत कृष्णसारः ।।

कुमार. ३-३६

तथा—

ददौ सरः-पङ्कजरेणुगन्धि गजाय गण्डूषजलं करेणुः।
अर्धोपभुक्तेन विसेन जायां संभावयामास रथाङ्गनामा।

कुमार. ३-३७

वृक्षों के रतिभाव का चित्र देखिये—

पर्याप्त-पुष्पस्तवक-स्तनाभ्यः स्फुरत्-प्रवालोष्ठ-मनोहराभ्यः।
लतावधूभ्यस्तरवोऽप्यवापु विंनम्र-शाखाभुज-बन्धनानि ।।

कुमार. ३- ३९

और किम्पुरुषों की रति तो रसाभास नहीं, यद्यपि सामान्यजनों से भिन्न अवश्य है। फिर भी भोज ने न जाने क्यों इसे भी रसाभास के अन्तर्गत मान लिया है—रति का यह सुन्दर उदाहरण है—

गीतान्तरेषु श्रमवारिलेशै रीषत्समुच्छ्वासितपत्र लेखम्।
पुष्पासवाघूर्णितनेत्रशोभि प्रियामुखं किम्पुरुषश्चुचुम्बे ।।

कुमार. ३-३८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नायक-नायिका-गुण—

आचार्यों ने नायक और नायिका के अनेक गुणों की चर्चा की है जिनमें कुलीनता, औदार्य, माहाभाग्य, कृतज्ञता, रूप संपद्, यौवन संपद, शील संपद, वैदग्ध्य, मानिता, सौभाग्य संपद्, उदार वाक्यत्व, स्थिरानुरागिता प्रमुख हैं। नायक की रूप संपद् का उदाहरण पीछे भी दिया जा चुका है। यथा—

रुप-संपद्—

व्यूढोरस्को वृषस्कन्धः शालप्रांशु र्महाभुजः।
आत्मकर्मक्षमं देहं क्षात्रो धर्म इवाश्रितः॥ रघु. १-१३

यहाँ दिलीप की वीरोचित रूपसंपद् का चित्रण है। इसी प्रकार यौवन संपद् भी—

महोक्षतां वत्सतरः स्पृशन्निव द्विपेन्द्रभावं कलभः श्रयन्निव।
रघुः क्रमाद् यौवन-भिन्न-शैशवः पुपोष गाम्भीर्य-मनोहरं वपुः॥
रघु. ३-२२

शील संपद— और शील संपद् रामपुत्र कुश की देखिये जो अर्धरात्रि वेला में उनके एकाकी शयन में प्रविष्ट सुन्दरी युवती के प्रति तटस्थ व्यवहार करते हैं—

का त्वं शुभे कस्य परिग्रहो वा किं वा मदभ्यागमकारणं ते।
आचक्ष्व मत्वा वशिनां रघूणां मनः परस्त्री-विमुख-प्रवृत्ति॥
रघु. १६-८

कुलीनता— यह तो हुई नायक के गुणों की बात। कालिदास ने नायिका के गुणों की भी चर्चा सरस भाव से की है। शकुन्तला की महाकुलीनता देखिए—

मानुषीभ्यः कथं वा स्यादस्य रुपस्यसंभवः।
न प्रभातरलं ज्योतिरुदेति वसुधातलात्॥ शाकु० १-२३

महाभाग्यता—

तां नारदः कामचरः कदाचित् कन्यां किल प्रेक्ष्यपितुः समीपे।
समादिदेशैकवधूं भवित्रीं प्रेम्णा शरीरार्धहरां हरस्य। कु० १-५०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रुप संपत्—

नारद द्वारा की गयी भविष्यवाणी उमा की महाभाग्यता को प्रकट करती है। और रुप संपद् के विषय में उर्वशी का यह चित्र—

आभरणस्याभरणं प्रसाधन विधेः प्रसाधनविशेषः।

उपमानस्यापि सखे प्रत्युपमानं वपुस्तस्याः॥ विक्रमों २-३

यौवन संपद्— का यह कैसा मनोहारी रूप है—

उन्मीलितं तूलिकयेव चित्रं सूर्यांशुभिर्भिन्नमिवारविन्दम्।

वभूव तस्याश्चतुरस्त्रशोभि वपुर्विभक्तं नवयौवनेन॥

कुमार. १-३२

सौभाग्य संपद्— इन्दुमती वर्णन के इस श्लोक में द्रष्टव्य है—

संचारिणी दीपशिखेव रात्रौ यं यंव्यतीयायपतिंवरासा।

नरेन्द्रमार्गाट्ट इव प्रपेदे विवर्ण-भावं स स भूमिपालः॥

रघु. ६-६७

मानिता— का स्वरूप कितना आवर्जक है—

शैलात्मजापि पितु रुच्छिरसोऽभिलाषं

व्यर्थं समर्थ्य ललितं वपुरात्मनश्च।

सख्योः समक्षमिति चाधिकजातलज्जा

शून्या जगाम भवनाभिमुखं कथंञ्चित्॥ कुमार. ३-७५

उदारवाक्यता—का उदाहरण पार्वती का निम्न कथन है—

यथाश्रुतं वेदविदां वर त्वया जनोऽयमुच्चैः पदलङ्घनोत्सुकः।

तपः किलेदं तदवाप्ति-साधनं मनोरथानामगति र्न विद्यते॥

कुमार. ५-६४

स्थिरानुरागिता— जो अनुराग का सबसे महत्त्वपूर्ण अंग है, निम्न श्लोक में दर्शनीय है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अलं विवादेन यथा श्रुतं त्वया तथाविधस्तावदशेषमस्तु सः।
ममात्र भावैकरसं मनः स्थितं न कामवृत्तिर्वचनीय मीक्षते॥

कुमार ५-८२

रति या अनुराग का पाक तीन प्रकार का होता है। जो प्रारम्भ में अस्वादु हो किन्तु अन्त में स्वादु हो उसे नारिकेल पाक कहते हैं। जो आदि और अन्त दोनों में स्वादु हो वह मृद्वीका पाक कहलाता है और जो आदि, मध्य और अन्त में क्रमशः स्वादु, स्वादुतर और स्वादुतम होता जाय उसकी आम्रपाक संज्ञा है। शाकुन्तल का यह श्लोक आम्रपाक का निदर्शक है—

शापादसि प्रतिहता स्मृतिरोधरुक्षे
भर्तर्यपेततमसि प्रभुता तवैव।
छाया न मूर्च्छति मलोपहतप्रसादे
शुद्धेतु दर्पणतले सुलभावकाशा॥ शाकु० ७-३२

रूपक-चर्चा

कालिदास ने तीन नाटकों की रचना की है। वस्तुतः नाटक दो हैं और त्रोटक एक। नाटकों के प्रारम्भ में नान्दी का विधान है। विश्वास है कि इससे विघ्नों का शमन होता है—

तथाऽ प्यवश्यं कर्तव्या नान्दी विघ्नोपशान्तये
आशीर्वचन संयुक्ता स्तुतिर्यस्मात् प्रयुज्यते-
देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता॥
मङ्गल्यशङ्खचन्द्राब्ज-कोककैरवशंसिनी-
पदैर्युक्ता द्वादशभिरष्टाभिर्वा पदैरुत॥ सा.द. ६-२३, से २५

किन्तु कालिदास के रूपकों में उक्त लक्षण वाली नान्दी नहीं मिलती। उदाहरणार्थ—

वेदान्तेषु यमाहुरेकपुरुषं व्याप्य स्थितं रोदसी,
यस्मिन्नीश्वर इत्यनन्यविषयः शब्दो यथार्थाक्षरः।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्तर्यश्च मुमुक्षुभिर्नियमित-प्राणादिभि र्मृग्यते।

सः स्थाणुः स्थिरभक्तियोग-सुलभो निःश्रेयसायास्तु वः।

विक्रमो० १-१

इसे सामान्यतया नान्दी कह दिया जाता है किन्तु इस पर उपर्युक्त नान्दी लक्षण घटित नहीं होता। यह न अष्टपदा है, न द्वादशपदा। न अन्य लक्षणों से युक्त ही। वस्तुतः यह नान्दी न होकर पूर्वरंग का रंगद्वार नामक अंग है। रङ्गद्वार में सर्वप्रथम अभिनय अवतरित होता है। अतः वाचिक और आङ्गिक अभिनय से युक्त यह रङ्गद्वार कहलाता है। नान्दी इस रङ्गद्वार से पूर्व नटों के द्वारा की जाती है। नट- नर्तक बिना विशेष स्वरूप- रचना के मिलकर मंगलार्थ जो स्तुति करते हैं वह नान्दी कहलाती है। वह नटों का अपना कार्य है। नाटककारों को उसकी रचना करने की आवश्यकता नहीं। इसीलिए भरत ने इसका लक्षण नहीं किया। ऊपर जो नान्दी की परिभाषा दी गयी है वह किसी अन्य मत के अनुसार है।

सूत्रधार जब पूर्वरङ्ग का विधान समाप्त करके चला जाता है तब स्थापक आकर रूपक की वस्तु, बीज, मुख या पात्र की सूचना श्लेषादि के द्वारा देता है। यथा शाकुन्तल में—

तवास्मि गीतरागेण हारिणा प्रसभं हृतः।

एष राजेव दुष्यन्तः सारङ्गेणातिरंहसा॥ शाकु. १-५

इस श्लोक के द्वारा स्थापक ने पात्र (दुष्यन्त) की सूचना दी है। श्लोक मे 'सारङ्ग' शब्द हरिण और राग दोनों मे श्लिष्ट है। सारङ्गराग मध्याह्न में गाया जाता है। और राजा दुष्यन्त आखेट करते हुए मध्यह्न में ही कण्वाश्रम में पहुँचे थे। कालिदास ने इसी समय का वर्णन "ईसीसि चुंविआइं भमरेहिं"आदि श्लोक के द्वारा किया है। यह गीति भी सारंगराग मे है। इसी प्रकार 'हारि' विशेषण भी श्लिष्ट है। पाँच अर्थोपक्षेकों में अङ्कावतार भी एक है। पूर्व अङ्क के अन्त में उसी के पात्रों के द्वारा सूचित किया हुआ जो अगला अंक अंवतरित होता है वह पूर्व अंक से अविभक्त अर्थात् उसके अङ्ग जैसा होता है और अङ्कावतार कहलाता है। जैसे शाकुन्तल के पञ्चम अङ्क में उसके पात्रों द्वारा सूचित किया हुआ षठाङ्क उससे अविभक्त सा लगता है। कालिदास की नाट्य कृतियों में नाट्य शास्त्रोक्त विभिन्न अङ्गो या स्थितियों का विवेचन व्याख्याकारों ने किया है। मेरा उद्देश्य उन्हें दोहराना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं है। मैं तो केवल निदर्शन मात्र के लिए कुछ बातों का उल्लेख कर रहा हूँ। यथा मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श और उपसंहृति ये पाँच सन्धियाँ हैं जो पाँच नाट्यावस्थाओं से सम्बद्ध हैं और इनमें से प्रत्येक के अनेक भेद है। उदाहरणार्थ मुख सन्धि के बारह के अंग है। प्रतिमुख सन्धि के विलास आदि १३ अंग है। रति की हेतुभुत जो भोगेच्छा है उसे ही विलास कहते हैं—"समीहा रतिभोगार्था विलास इतिकथ्यते"। यह पुरूष की स्त्री के प्रति या स्त्री की पुरूष के प्रति हो सकती है। जैसे शाकुन्तल में दुष्यन्त का शकुन्तला- विषयक अभिलाष—

कामं प्रिया न सुलभा मनस्तु तद्भाव दर्शनायासि।

अकृतार्थेऽपि मनसिजे रतिमुभयत्र प्रार्थनाकुरूते।। शाकु. २.१

प्रतिमुख सन्धि का ही एक अन्य अंग है परिसर्प। सोयी हुई या नष्ट इष्ट-वस्तु के अन्वेषण का नाम है परिसर्प "इष्टनष्टानुसरणं परिसर्पश्च कथ्यते।" शाकुन्तल के तृतीय अङ्क में दुष्यन्त शकुन्तला की खोज करता हुआ कहता है—

अस्मिन् वेतस-परिक्षिप्ते लता-मण्डपे भवितव्यं तया। तथाहि—

अभ्युन्नता पुरस्तादवगाढा जधन-गौरवात् पश्चात्।

द्वारे ऽस्य पाण्डुसिकते पदपङ्क्ति र्दृश्यतेऽभिनवा।। शाकु. ३.६

इस श्लोक में नितम्ब के स्थान पर कवि ने जघन शब्द का प्रयोग किया है। स्त्री की कटि का पश्चाद् भाग नितम्ब और पुरोभाग जघन कहलाता है। यह कविप्रमवाद है। प्रतिमुखसन्धि का एक अंग विधुत है। किये हुए अनुनय को स्वीकार न करने का नाम विधुत है—कृतस्यानुनयस्यादौविधुतं त्वपरिग्रहः।'' शाकु. के तृतीय अङ्क के श्लोक सं० १६ से पूर्व शकुन्तला का यह कथन "हला ! किं अंते उर-विरह-पज्जु स्सुअस्स राएसिणो उवरोहेण ? "

गर्भ सन्धि के अभूताहरण आदि अङ्गों में एक है क्रम। किसी के भाव अर्थात् प्रथम चित्त- विक्रिया का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करना क्रम कहलाता है—भावतत्त्वोपलब्धि स्तुक्रमः स्यात्। यथा शाकुन्तल में—

राजा-स्थाने खलु विस्मृत-निमेषेण चक्षुषा प्रियामवलोकयामि।

तथाहि-उन्नमितैकभ्रूतलमानन मस्याः पदानि रचयन्त्याः।

पुलकाञ्चितेन कथयति मय्यनुरागं कपोलेन।। शाक. ३-१२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहाँ श्लोक की पदरचना करती हुई शकुन्तला के विचार मग्न होने के कारण मुख की एक भृकुटि को ऊपर उठा तथा कपोल को रोमाञ्चित देखकर दुष्यन्त उसके स्वविषयक अनुराग का ज्ञान कर लेता है।

निर्वहण के चौदह सन्ध्यङ्गों में एक परिभाषण भी है। यह निन्दायुक्त वाक्य का नाम है—वदन्ति परिभाषणं परिवादकृतं वाक्यम्। शाकुन्तल का यह संवाद परिभाषण का उदाहरण है—

राजा—आर्ये ! अथ सा तत्र भवती किमाख्यस्य राजर्षेः पत्नी ?

तापसी—को तस्सधम्म- दारपरिट्टाइणोणामं गेण्हिस्सयद ॥

नायक-नायिकादि के व्यापार विशेष को रूपकों में वृत्ति कहते हैं। नाट्यशास्त्रियों ने वृत्तियां चार मानी हैं।कैशिकी-वृत्ति का प्रयोग श्रृंगार में होता है। सात्वती—इसका प्रयोग वीर रस में—आरभटी का रौद्र और वीभत्स रस में व्यवहार होता है और भारती कहीं भी प्रयुक्त हो सकती है। ये चार वृतियाँ सारे नाट्य की मातृका या उपजीव्य होती है। कैशिकी को यों परिभाषित किया गया है—

यालक्ष्म- नेपथ्य- विशेष चित्रा स्त्री संकुलापुष्कलनृत्यगीता।

कामोपभोग- प्रभवोपचारा सा कैशिकी चारूविलास- युक्ता।

सा. द.६.१२४

मनोरजंक नेपथ्य, नृत्य और गीत से पूर्ण, स्त्री-बहुल, कामोपभोग सुख की जनक, रमणीयविलासों से युक्त और श्रृंगार रस को व्यक्त करने वाली वृत्ति का नाम कैशिकी है। कैशिकी के चार अंग होते है—नर्म, नर्म- स्फूर्ज, नर्म- स्फोट और नर्भ- गर्भ। इनमें चतुरता पूर्ण क्रीडा (वैदग्ध्य क्रीडित) नर्म कहलाती है। शाकुन्तल में श्रृंगार युक्त हास्य। यथा—

शकुन्तला (राजानं प्रति) असंतुहो उण किं करिस्सदि। राजा-इदम् (इतिव्यसितः) शकुन्तला वस्त्रं ढौंकते।

नर्म वचस्, वेष, क्रिया, आत्मोपक्षेप, संभोग और मानआदि में किसी के द्वारा हो सकता है। वाच्य- हास्य नर्म देखिये—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्युः शिरश्चन्द्रकलामनेन स्पृशेति सख्या परिहासपूर्वम्।
सा रञ्जयित्वा चरणौ कृताशीर्माल्येन तां निर्वचनं जघान ।।

कुमार. ७-१९

यहां प्रसाधिका द्वारा पार्वती के चरणों में लाक्षा लगा कर, इससे पति के सिर पर विराजमान चन्द्रकला का स्पर्श करना अर्थात् पति को अपने चरणों पर झुका लेना—यह कहकर नर्म की सृष्टि की गयी है। नर्म स्फिञ्ज या नर्मस्फूर्ज आरम्भ में सुखकर और अन्त में भयदायक समागम की संज्ञा है। जैसे मालविकाग्निमित्र में प्रिय से मिलने के लिये संकेत स्थान पर अभिसरण कर आयी हुई मालविका के प्रति अग्निमित्र की उक्ति—

विसृज सुन्दरि संगम-साध्वसं ननु चिरात् प्रभृति प्रणयोन्मुखे
परिगृहाण गते सहकारतां त्वमतिमुक्त लताचरितं मयि।।

माल. ४-१३

और इसके उत्तर में मालविका की उक्ति-"देवी ए भएण अत्तणोवि पिअं का दुंण पारेमि।"

भारती वृत्ति में संस्कृत बहुल वाग्व्यापार रहता है। इसके चार अंग हैं—प्ररोचना, वीची, प्रहसन और आमुख। इनमें प्रथम है उद्घात्य जिसमें गूढ़ार्थ पद और उसका पर्याय या प्रश्नोत्तर रहते हैं। यह दो पात्रों के बीच उक्ति प्रत्युक्ति रूप में रहता है। यथा विक्रमोर्वशीय में—

विदूषकः—भो वअस्स, को एसो कामोजेण तुमंपि इमिज्जसे। सो किं पुरिसो आदु इत्थि अत्ति।

राजा-सखे—

मनो जातिरनाधीना सुखेष्वेव प्रवर्तते।
स्नेहस्य ललितो मार्गः काम इत्यभिधीयते ।।

विदू.—एवं पि ण जाणे।

राजा—वयस्य इच्छा- प्रभवः सः

विदू.—किं जो जं इच्छादि सो तं कामेदित्ति।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजा—अथ किम् ।

विदू.—ता जाणिदं जह अहं सूअआर सालाए भोअणं इच्छामि ॥

यहाँ गूढ़ार्थ पद तथा तत्पर्याय को लेकर उक्ति प्रत्युक्ति है ।

उद्घात्य का एक भेद त्रिगत भी है । उच्चारण-साम्य के कारण जहाँ एकाधिक अर्थों का बोध होता है वहाँ त्रिगत माना जाता है । यह प्रायेण नटादि के मध्य वार्तालाप में होता है । यथा—

मत्तानां कुसुम रसेन षट्पदानां शब्दोऽयं परभृतनाद एषधीरः ।

कैलासे सुरगण सेविते समन्तात् किं नर्यः कलमधुराक्षरं प्रगीताः ।

माल. १-३

यहाँ किन्नर्यः पद से किन्नरियों तथा किं नर्यः (स्त्रियः) का बोध होता है । एक ही श्रुति या शब्द भ्रमर गुञ्जन, कोकिलकूञ्जन और किन्नरी- शब्द या नारी गीत का सन्देह उत्पन्न करता है—

त्रिगतं स्यादनेकार्थ-योजनं श्रुति-साम्यतः ।

वीथी का एक अङ्ग असत्प्रलाप भी है जिसमें पात्र असम्बद्ध बातें बोलता है । उत्स्वप्नायित, मद, उन्माद आदि की स्थिति में असम्बद्ध प्रलपित होता है । यथा—

हंस प्रयच्छ मे कान्तां गति स्तस्यास्त्वया हृता ।

विभावितैकदेशेन देयं यदभियुज्यते ॥ विक्रमो. ४-३३

और मृदव भी वीथ्यङ्ग है । इसमें दोष को गुण और गुण को दोष निरुपित किया जाता है । यथा—

मेदश्छेदकृशोदरं लघुभवत्युत्थानयोग्यं वपुः ।

सत्त्वानामुपलक्ष्यते विकृतिमच्चित्तं भयक्रोधयोः ॥

उत्कर्षः स च धन्विनांयदिषवः सिध्यन्ति लक्ष्ये चले,

मिथ्यैव व्यसनं वदन्ति मृगयामीदृग् विनोदः कुतः । शाकु. २-५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहां प्रथम श्लोक में पुरुरवा का प्रलाप है जिसका कारण उसकी विरहोन्पादित अवस्था है और प्रस्तुत श्लोक में मृगया के दोषों को भी गुण वता कर प्रदर्शित किया गया है। पुरुरवा की उन्मादावस्था निम्नश्लोक में भी व्यञ्जित है। यह एक प्रकार की अप्रेक्षाकारिता होती है जिसमें मनुष्य व्यर्थ ही रोता, गाता या हँसता है। कहा है—

अप्रेक्षाकारितोन्मादः सन्निपातग्रहादिभिः।

अस्मिन्नस्थान-रुदित-गीत-हासासितादयः। दश. ३-३०

यथा—आः क्षुद्र राक्षस। तिष्ठ तिष्ठ क्वमे प्रियतमामादाय गच्छसि। कथम्

नवजलधरः सन्नद्धोऽयं दृप्त-निशाचरः,

सुरधनुरिदं दूराकृष्टं न तस्य शरासनम्।

अयमपि पटुर्धारासारो न वाण-परम्परा,

कनक निकष-स्निग्धा विद्युत्प्रिया मम नोर्वशी। विक्रमो. ४-७

इसका उल्लेख संचारी भावों के अन्तर्गत भी हुआ है।

नाटक में रसपोष के अनुसार छत्तीस लक्षण, तैंतीस नाट्यालंकार, तेरह वीथ्यङ्ग और दस लास्याङ्गों का प्रयोग भरत ने बतलाया है। उपयोगिता की दृष्टि से उनका प्रयोग यथास्थान करना चाहिये। इनमें वीथ्यङ्गों में जो कालिदास में मिलते हैं उनकी चर्चा नमूने के रूप में ऊपर की गयी है। लक्षणों में अक्षर- संघात, शाकुन्तल में देखा जा सकता है—

राजा—कच्चित् सखीं वो नातिबाधते शरीर- संतापः?

प्रियंवदा—संपदं उअसमं गमिस्सदि। शाकु. ३-१५ के नीचे। अक्षर संघात विचित्र अर्थ वाले परिमित अक्षरों के द्वारा की गयी वर्णना का नाम है—वर्णनाक्षर संघातश्चित्रार्थै रक्षरैर्मितैः। सा.द. ६-१७६

ऐसे ही संचय नामक लक्षण अर्थ के अनुकूल पदों के गुम्फन को कहते हैं। यह भी नाट्य लक्षणों में एक है। निम्न श्लोक में इसका लक्षण घटित होता है--

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधरः किसलय रागः कोमल विटपानुकारिणौ बाहू।

कुसुममिव लोभनीयं यौवनमङ्गेषु संनद्धम्॥ शाकु. १-१९

इस श्लोक के सारे पदमसृण और कोमल है। अर्थ या कथ्य के सर्वथा अनुरुप सादृश्य के कारण असम्भव वस्तु की कल्पना करने को अभिप्राय कहते हैं "अभिप्रायस्तु सादृश्यादभूतार्थस्य कल्पना।" अभिप्राय भी छत्तीस नाट्य लक्षणों में एक है। निम्न श्लोक इसका उदाहरण है—

इदं किलाव्याज-मनोहरं वपुस्तपः-क्षमं साधयितुं य इच्छति।

ध्रुवं स नीलोत्पल-पत्रधारया समिल्लतां छेत्तुमृषिर्व्यवस्यति॥

शाकु. १-१७

तात्पर्य यह कि जिस प्रकार नीलकमल के पत्र की धार से समिधाओं के वृक्ष का काटना असम्भव है वैसे ही निसर्ग- सुन्दरी शकुन्तला के मनोहर शरीर को तप के योग्य बनाना।

शास्त्रानुकूल मनोहर वाक्य को उपदिष्ट कहते हैं। जैसे महर्षि कण्व द्वारा शकुन्तला को यह उपदेश—

शुश्रूषस्व गुरुन् कुरु प्रियसखी-वृत्तिं सपत्नी जने,

भर्तुर्विप्रकृताऽपि रोषणतया मास्म प्रतीपं गमः।

भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी,

यान्त्येवं गृहिणी-पदं युवतयो वामाः कुलस्याधयः॥

शाकु. ४-१८

अपना अभीष्ट सिद्ध करने के लिये अनेक अर्थों (कार्यों) का कथन माला कहलाता है—

मालास्याद् यदभीष्टार्थं नैकार्थ-प्रतिपादनम्॥

यथा—

किं शीकरैः क्लम-विमर्दिभिरार्द्रवातं

संचारयामि नलिनीदल-तालवृन्तम्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अङ्के निवेश्य चरणावुत पद्मताम्रौ

संवाहयामि करभोरु यथासुखं ते ॥ शाकु. ३-१८

प्रसिद्धि नामक लक्षण वहाँ होता है जहाँ लोकप्रसिद्ध उत्कृष्ट पदार्थों के द्वारा वस्तु का परिचय कराया गया हो—प्रसिद्धि र्लोकसिद्धार्थैरुत्कृष्टैरर्थ साधनम् ।। जैसे—

सूर्याचन्द्रमसौ यस्य मातामहपितामहौ ।

स्वयं वृतः पति र्द्वाभ्यामुर्वश्या च भुवा च यः ॥ विक्रमो. ४-३८

हर्ष भाषण नामक लक्षण वहां होता है जहां पूजनीय व्यक्तियों के प्रति आदरातिशय व्यक्त करने के लिये प्रियवचन कहे जाते है—स्यात् प्रमाणयितुं पूज्यं प्रियोक्तिर्हर्षभाषणम् ॥ यथा—

उदेति पूर्वं कुसुमं ततः फलं घनोदयः प्राक् तदनन्तरं पयः ।

निमित्त-नैमित्तिकयोरयं विधिस्तव प्रसादस्य पुरस्तु संपदः ॥

शाकु. ७-३०

उपर कहा जा चुका है कि भरत के अनुसार तैंतीस नाट्यालंकार होते हैं । इनमें प्रथम आशीः है जो प्रियजनों के आशीर्वाद का नाम है । यथा—

ययातेरिव शर्मिष्ठाभर्तुर्वहुमता भव ।

पुत्रं त्वमपि सम्राजं सेव पूरुमवाप्नुहि ॥शाकु. ४-७

यह कण्व की शकुन्तला के प्रति आशीर्वादोक्ति है । स्वल्प से भी अपमान को न सहने का नाम अक्षमा है । शाकुन्तल की निम्नोक्ति इसका उदाहरण है—

राजा—भोः सत्यवादिन् । अभ्युपगतं तावदस्माभिः । किं पुनरिमामतिसन्धाय लभ्यते ?

शारङ्गरवः—विनिपातः

राजा—विनिपातः पौरवैर्लभ्यते इति अश्रद्धेयमेतत् ॥ शाकु. ५-२६ से पूर्व । गर्भ नामक नाट्यालंकार अवलेप के द्वारा कहे गये वाक्य में होता है । जैसे—

राजा—ममापि नाम सत्त्वैरभिभूयन्ते गृहाः । शाकु.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वयं को सज्जन मानने वाले असज्जन के उपहास को उत्त्रासन कहते हैं—

जैसे शाकुन्तल में शारङ्गरव—राजन् अथ पुनः पूर्व- वृत्तान्तमन्य- सङ्गाद् विस्मृतो भवान्। तत्कथमधर्म- भीरोर्दार- परित्यागः। शाकु. ५-२९ के उपर। स्पृहा अलंकार वहाँ होता है जहाँ अतिरमणीयता के कारण वस्तु की आकाङ्क्षा हो। यथा—

चारुणा स्फुरितेनायमपरिक्षत-कोमलः।

पिपासतो ममानुज्ञां ददातीव प्रियाधरः॥ शाकु. ३-२१

यहाँ रमणीय शकुन्तलाऽधर में दुष्यन्त की स्पृहा व्यक्त है। कार्य निर्देश करना उल्लेख कहलाता है— कार्य- दर्शन मुल्लेखः। यथा दुष्यन्त से तपस्वियों का कहना।

तापसौ—समिदाहरणाय प्रस्थितावावाम्। इहचास्मद्गुरोः साधिदैवत इव शकुन्तलयाऽनुमालिनी तीरमाश्रमो दृश्यते। न चेदन्य- कार्यानिपातः, प्रविश्य गृह्यतामतिथि सत्कारः।

रम्यास्तपोधनानां प्रतिहतविघ्नाः क्रियाः समवलोक्य।

ज्ञास्यसि कियद्भुजो मे रक्षति मौर्वी-किणाङ्क इति॥

शाकु. १-१३

यहाँ तपस्वियों ने अपने कार्य का निर्देश किया है। उनके कथन का तात्पर्य यह है कि यदि समिधा लाना आवश्यक न होता तो हम दोनों भी आप के साथ ही आश्रम तक चलते। नीति भी नाट्यालंकारों के अन्तर्गत है। शास्त्रानुसार व्यवहार करना नीति कहलाता है। जैसे शाकुन्तल के प्रारम्भ में कण्वाश्रम जाते समय दुष्यन्त कहता है—विनीत- वेषेण प्रवेष्टव्यानि तपोवनानि।

अर्थ विशेषण वहाँ माना जाता है जहाँ उपालम्भ करने के लिये किसी की बात का अनेक प्रकार से आलोचन या कथन किया जाय—

उक्तस्यार्थस्य यत्तु स्यादुत्कीर्तनमनेकधा।

उपालम्भ विशेषेण तत् स्यादर्थविशेषणम्॥ सा.द. ६-२०६

जैसे शाकुन्तल में शारङ्गरव दुष्यन्त से कहता है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आ: कथमिदं नाम । किमिदमुपन्यस्तम् ? ननु भवानेव नितरां लोक वृत्तान्त निष्णातः—

सतीमपि ज्ञातिकुलैक-संश्रयां जनोऽन्यथा भर्तृमतीं विशङ्कते।

अतः समीपे परिणेतुरिष्यते प्रियाऽप्रिया वा प्रमदा स्वबन्धुभिः ।।

शाकु. ५-१७

विनयपूर्वक अनुगमन का नाम है अनुवृत्तिः । जैसे शाकुन्तल में राजा का यह कथन—(शकुन्तलां प्रति) अपि तपो वर्धते ? और इस पर अनसूया की यह उक्ति—दाणिं अदिहि विसेस लाहेण— प्रथम अंक श्लोक २२ के नीचे ।। आनन्द के आधिक्य का नाम प्रहर्ष है । यथा शाकुन्तल में राजा—तत् किमिदानीमात्मानं पूर्णमनोरथं नाभिनन्दामि । इसी प्रकार शिक्षादेने का नाम उपदेशन है । जैसे इसी प्रसंग में—

अनसूया- णजुत्तंते अकिद सक्कारं अदिहि विसेसं विसज्जिअ सच्छंददो गमणं । शाकु. १-२५ के नीचे ।

यद्यपि लक्षण (३६) और नाट्यालंकार सामान्यतया एक ही हैं फिर भी भरत ने रुपकों में इनकी अवश्य- कर्तव्यता मानी है । कहा है—

पञ्चसन्धि चतुर्वृत्ति चतुःषष्ठ्यङ्ग- संयुतम्।

षट्त्रिंशल्लक्षणोपेत मलंकारोपशोभितम्।।

सुश्लिष्ट-सन्धियोगं च सुप्रयोगं सुखाश्रयम्।

मृदुशब्दाभिधानं च कविः कुर्यात्तु नाटकम्।।

कालिदास की कृतियों में इनका समावेश कहाँ तक और कहाँ- कहाँ हुआ है, यह प्रदर्शित करने के उद्देश्य से ही उपर्युक्त चर्चा की गयी है ।

कालिदास के रुपकों में काव्य-सौन्दर्य

कालिदास संस्कृत के कवियों में मूर्धन्य माने जाते हैं । भारत के अनेक श्रेष्ठ कवियों ने उसकी प्रशंसा में कुछ-न-कुछ कहा है । 'उपमा कालिदासस्य'तो प्रसिद्ध ही है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वयं को सज्जन मानने वाले असज्जन के उपहास को उत्प्रासन कहते हैं—

जैसे शाकुन्तल में शारङ्गरव—राजन् अथ पुनः पूर्व- वृत्तान्तमन्य- सङ्गाद् विस्मृतो भवान्। तत्कथमधर्म- भीरोर्दार- परित्यागः। शाकु. ५-२९ के उपर। स्पृहा अलंकार वहाँ होता है जहाँ अतिरमणीयता के कारण वस्तु की आकाङ्क्षा हो। यथा—

चारुणा स्फुरितेनायमपरिक्षत-कोमलः।

पिपासतो ममानुज्ञां ददातीव प्रियाधरः।। शाकु. ३-२१

यहाँ रमणीय शकुन्तलाऽधर में दुष्यन्त की स्पृहा व्यक्त है। कार्य निर्देश करना उल्लेख कहलाता है— कार्य- दर्शन मुल्लेखः। यथा दुष्यन्त से तपस्वियों का कहना।

तापसौ—समिदाहरणाय प्रस्थितावावाम्। इहचास्मद्गुरोः साधिदैवत इव शकुन्तलयाऽनुमालिनी तीरमाश्रमो दृश्यते। न चेदन्य- कार्यानिपातः, प्रविश्य गृह्यतामतिथि सत्कारः।

रम्यास्तपोधनानां प्रतिहतविघ्नाः क्रियाः समवलोक्य।

ज्ञास्यसि कियद्भुजो मे रक्षति मौर्वी-किणाङ्क इति।।

शाकु. १-१३

यहाँ तपस्वियों ने अपने कार्य का निर्देश किया है। उनके कथन का तात्पर्य यह है कि यदि समिधा लाना आवश्यक न होता तो हम दोनों भी आप के साथ ही आश्रम तक चलते। नीति भी नाट्यालंकारों के अन्तर्गत है। शास्त्रानुसार व्यवहार करना नीति कहलाता है। जैसे शाकुन्तल के प्रारम्भ में कण्वाश्रम जाते समय दुष्यन्त कहता है—विनीत- वेषेण प्रवेष्टव्यानि तपोवनानि।

अर्थ विशेषण वहाँ माना जाता है जहाँ उपालम्भ करने के लिये किसी की बात का अनेक प्रकार से आलोचन या कथन किया जाय—

उक्तस्यार्थस्य यत्तु स्यादुत्कीर्तनमनेकधा।

उपालम्भ विशेषेण तत् स्यादर्थविशेषणम्।। सा.द. ६-२०६

जैसे शाकुन्तल में शारङ्गरव दुष्यन्त से कहता है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आ: कथमिदं नाम । किमिदमुपन्यस्तम् ? ननु भवानेव नितरां लोक वृत्तान्त निष्णातः—

सतीमपि ज्ञातिकुलैक-संश्रयां जनोऽन्यथा भर्तृमतीं विशङ्कते ।

अतः समीपे परिणेतुरिष्यते प्रियाऽप्रिया वा प्रमदा स्वबन्धुभिः ॥

शाकु. ५-१७

विनयपूर्वक अनुगमन का नाम है अनुवृत्तिः । जैसे शाकुन्तल में राजा का यह कथन—(शकुन्तलां प्रति) अपि तपो वर्धते ? और इस पर अनसूया की यह उक्ति—दाणिं अदिहि विसेस लाहेण– प्रथम अंक श्लोक २२ के नीचे ॥ आनन्द के आधिक्य का नाम प्रहर्ष है । यथा शाकुन्तल में राजा—तत् किमिदानीमात्मानं पूर्णमनोरथं नाभिनन्दामि । इसी प्रकार शिक्षादेने का नाम उपदेशन है । जैसे इसी प्रसंग में—

अनसूया- णजुत्तंते अकिद सक्कारं अदिहि विसेसं विसज्जिअ सच्छंददो गमणं । शाकु. १-२५ के नीचे ।

यद्यपि लक्षण (३६) और नाट्यालंकार सामान्यतया एक ही हैं फिर भी भरत ने रुपकों में इनकी अवश्य- कर्तव्यता मानी है । कहा है—

पञ्चसन्धि चतुर्वृत्ति चतुःषष्ठ्यङ्ग- संयुतम् ।

षट्त्रिंशल्लक्षणोपेत मलंकारोपशोभितम् ॥

सुश्लिष्ट-सन्धियोगं च सुप्रयोगं सुखाश्रयम् ।

मृदुशब्दाभिधानं च कविः कुर्यात्तु नाटकम् ॥

कालिदास की कृतियों में इनका समावेश कहाँ तक और कहाँ- कहाँ हुआ है, यह प्रदर्शित करने के उद्देश्य से ही उपर्युक्त चर्चा की गयी है ।

कालिदास के रुपकों में काव्य-सौन्दर्य

कालिदास संस्कृत के कवियों में मूर्धन्य माने जाते हैं । भारत के अनेक श्रेष्ठ कवियों ने उसकी प्रशंसा में कुछ-न-कुछ कहा है । 'उपमा कालिदासस्य'तो प्रसिद्ध ही है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"पुरा कवीनां गणना-प्रसंगे कनिष्ठिकाधिष्ठित-कालिदासा।

अद्यापि तत्तुल्य-कवेरभावादनामिका सार्थवती बभूव ॥"

एवं

"वैदर्भी कविता स्वंय वृतवती श्रीकालिदासं वरम् ।" इत्यादि न जाने कितने प्रशस्ति-पद काव्य-मर्मज्ञों की जिह्वा पर हैं। भारत में ही क्यों, विदेशों में भी उनका बड़ा सम्मान है। वे कवि थे और नाटककार भी। जिस प्रकार उनकी काव्यत्रयी सरस लोगों का कण्ठहार है उसी प्रकार उनकी नाटकत्रयी भी रसज्ञ लोगों का शताब्दियों से मनोरंजन करती आ रही है। अभिज्ञान शाकुन्तल, विक्रमोर्वशीय और मालविकाग्निमित्र उनके सुप्रसिद्ध नाटक हैं जिनमें शाकुन्तल सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। इसका अनुवाद भी अनेक देशी-विदेशी भाषाओं में हुआ है।

कालिदास सफल नाटककार हैं, यह बात सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं, पर उससे भी पूर्व वे कवि हैं। प्राचीन काल में प्रत्येक नाटककार के लिये सफल कवि होना आवश्यक था। नाटक काव्य का ही एक अंग माना जाता था इसलिए नाटककार की गणना भी कवियों में ही की जाती थी। नाटक का उद्देश्य भी काव्य के समान मनोरंजन ही था। अन्तर केवल इतना माना जाता था कि काव्य परिष्कृत रूचि के लोगों के लिये लिखे जाते थे और नाटक सब प्रकार के लोगों के लिये। स्वयं कालिदास ने कहा है :— "नाट्यं भिन्नरूचेर्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधनम्"। ऐसी स्थिति में यदि कालिदास के नाटक काव्य-सौन्दर्य से ओत-प्रोत हों, तो स्वाभाविक ही है।

कालिदास के नाटक प्रणय-कथाओं पर आधारित हैं और उनकी पृष्ठभूमि है प्रकृति का उन्मुक्त क्षेत्र। अभिज्ञान-शाकुन्तल की सम्पूर्ण क्रीड़ाभूमि तपोवन और उपवन है। राजदरबार का कोई घण्टे भर के लिए दर्शन मात्र करा दिया गया है, मानों प्राकृतिक सौन्दर्य की अनुभूति में और तीव्रता लाने के लिये। मालविकाग्निमित्र के भी सारे दृश्य वसन्तोत्सव, चित्रशाला, नाट्यशाला एवं उद्यानों के बीच सम्पन्न हुए हैं। यही स्थिति विक्रमोर्वशीय की है जिसमें राज दरबार में प्रवेश करने की आवश्यकता ही नही पड़ती। प्रमदवन, हेमकूटशिखर आदि के ही दृश्य एक के बाद एक नेत्रों के समक्ष उपस्थित रहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकृति के इस रमणीय लीला-वितान ने कालिदास की प्रत्येक उक्ति को मादक सौरभ से सुरभित बना दिया। उनकी नायिकायें दिव्यावदात हो उठी हैं। ऐसा लगता है मानों वे फूलों की बनी हुई हों। कालिदास को यों भी नारी के देखते ही लता का स्मरण हो आता था। कुमारसम्भव में उन्होनें पार्वती को "संचारिणी पल्लविनी लतेव" अर्थात चलती-फिरती पल्लवों वाली लता कहा हैं। शाकुन्तल में भी उन्होने प्राप्तयौवना शकुन्तला की उपमा कुसुमित लता से दी है :—

अधरः किलसय-रागः कोमल-विटपानुसारिणौ बाहू।

कुसुममिव लोभनीयं यौवनमङ्गेषु संनद्धम्॥

अर्थात ओंठ किलसय के समान अरूण हैं, भुजायें कोमल शाखाओं का अनुकरण कर रही हैं और यौवन फूलों के समान सारे अंगों में छिटक रहा है।

विक्रमोर्वशीय में भी सखियों के साथ बैठी उर्वशी की उपमा राजा लताओं के बीच माधवी श्री से देता है :—

यावत्पुनरियं सुभ्रूरूत्सुकाऽपि समुत्सुका।

सखीभिर्याति सम्पर्कं लताभिः श्रीरिवार्तवी॥

और मालविकाग्निमित्र में जब मालविका धीरे-धीरे मुस्कराती है तो राजा को अधखिले कमल का स्मरण हो जाता है—

स्मयमानमायताक्ष्याः किचिदव्यक्तदशनशोभि मुखम्।

असमग्र-लक्ष्य-केशरमुच्छ्वसदिव पङ्कजं दृष्टम्॥

अर्थात मालविका का कुछ-कुछ हँसता हुआ मुख जिसके दाँत थोड़े-थोडे दिखाई पड़ रहे हैं ऐसा लगता है जैसे कोई विकसता हुआ कमल हो जिसके केसर अभी पूरे-पूरे दिखायी न पड़ रहे हों।

ऐसे दिव्य सौन्दर्य का निर्माण यों ही नहीं हो सकता। इसकी सृष्टि में विशेष साधनों का, नवीन कला और पूर्वाधिक चातुर्य का उपयोग किया गया होगा। उर्वशी की अलौकिक रुपमाधुरी को देखकर पुरुरवा कल्पना करता है—

अस्याः सर्गविधौ प्रजापतिरभूच्चन्द्रो नु कान्तिप्रदः,

शृङ्गारैकरसः स्वयन्नु मदनो मासो नु पुष्पाकरः;

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेदाभ्यास-जडः कथन्नु विषय-व्यावृत्त-कौतूहलो,

निर्मातुं प्रभवेन्मनोहरमिदं रूपं पुराणो मुनिः ।

इसको बनाने वाला प्रजापति चन्द्र रहा होगा, चन्द्र ने स्वयं इसे कान्ति प्रदान की होगी । और शायद इसे चैत्र मास में बनाया होगा जब चारों ओर फूल महमँहाते रहते हैं । नहीं तो भला वेद रट- रट कर जड़ बन हुआ, वीतराग बुड्ढा ब्रह्मा ऐसा मनोरम रूप बना सकता था ?

शकुन्तला का निर्माण भी इसी प्रकार लोकोत्तर विधि से हुआ । उसे ब्रह्मा ने बिना हाथ से स्पर्श किये मन से ही सम्पूर्ण रूप सामग्री से बनाया । इसीलिये वह अनुपम हैः—

"चित्ते निवेश्य परिकल्पित-सत्त्व-योगा रुपोच्चयेन मनसाविधिना कृतानु ।"

इसीलिये कालिदास की शकुन्तला अलौकिक है । मानवियों में ऐसा रूप कहीं मिलता है ?

मानुषीषु कथं वा स्यादस्य रूपस्य सम्भवः ?

न प्रभातरलं ज्योतिरुदेति वसुधातलात् ।

मिले भी तो कैसे ? भला कभी उषा रानी वसुधा के नीचे से प्रकट हुई है ? कालिदास की ये कला-सृष्टियाँ सर्वांग सुन्दर है । उनके नेत्र युगल 'दीर्घा-पाङ्गविसारि' है, वदन 'शरदिन्दुकान्ति' है । उनके अधर 'दन्तान्तः परिकीर्णहास-किरण-ज्योत्स्ना-विलिप्त' है ।

कालिदास की सौन्दर्य-दृष्टि बाह्य रूप तक सीमित नहीं रही । उन्होंने रूप सौन्दर्य के साथ सर्वत्र सात्त्विकता का वातावरण उपस्थित किया है । उनका सौन्दर्य एक विचित्र मानसिक सन्तोष और शान्ति प्रदान करता है, क्षोभ, लिप्सा और संवेग नहीं बढ़ाता :—

सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यम्

मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति

इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी

किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम् ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शकुन्तला को आभूषणों की क्या आवश्यकता? वह जो कुछ पहन लेती है वही उसका भूषण बन जाता है। वल्कलों में भी वह आकर्षक दिखायी देती है। और दिखायी क्यों न दे? कमल क्या शैवाल से लिपटा रहने पर सुन्दर नहीं दिखाता? चन्द्रमा क्या कृष्ण चिह्न से कुछ कम सुन्दर मालूम होता है?

सौन्दर्य के चारों ओर दिव्य वातावरण बनाये रखने के लिये कवि ने उसी प्रकार के दिव्य उपमानों का प्रयोग किया है—

अनाघ्रातं पुष्पं, किसलयमलूनं कररुहै,

रनाविद्धं रत्नं, मधु नवमनास्वादितरसम्।

अखण्डं पुण्यानां फलमिव च तद्रूपमनघम्।

उसका निर्दोष रूप बिना सूँघे हुए फूल के समान, बिना तोड़े हुये किसलय के समान, बिना विंधे हुये रत्न के समान और बिना चखे हुये ताजे मधु के समान है। वह तो पुण्यों का अखण्ड फल है।

ऐसे रूप में किसी दिव्य आत्मा का ही निवास हो सकता है। इसीलिये मालविका को देखकर नायक कहता है "आकृति प्रत्ययादेनामनून-वस्तुकां सम्भावयामि।" और शकुन्तला को देखकर दुष्यन्त सोचता है—"न तादृशा आकृति-विशेषा गुण-विरोधिनो भवन्ति।"

टेम्पेस्ट की नायिका को लक्ष्य कर शेक्सपियर का नायक भी तो ऐसा ही कुछ कहता है—

"There's nothing ill can dwell-in such a temple:

If the ill spirit have so fair a house,

Good things will strive to dwell with't-"

और कालिदास को और कोई उपमान जब ढूँढे नहीं मिला तो उन्होंने कह दिया—

आभरणस्याभरणं प्रसाधन-विधेः प्रसाधन-विशेषः;

उपमानस्यापि सखे प्रत्युपमानं वपुस्तस्याः ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उर्वशी का सुन्दर शरीर आभूषणों का आभूषण है, सज्जा को सजाने वाला और उपमानों का भी उपमान है।

इस प्रकार कालिदास की सब नायिकायें एक अलौकिक वासन्ती श्री से स्नात हैं। उनका बाह्य अन्तर सब कुछ अवदात है। उषा द्वारा अमृत-घट से नहलायी, बालारुण की हैम किरणरज्जुओं द्वारा मरकतपत्रदोल पर झुलायी हुई नवल-नवल अर्द्धविकसित कलिकाओं के समान उनकी नायिकायें कुछ पार्थिव, कुछ अपार्थिव-सी लगी है और पाठक या दर्शक को कुछ क्षणों के लिये आत्म विस्तृत कर जाती हैं।

कालिदास की प्रतिभा ने कल्पना के प्रकृति-रंजित तट पर ये दृश्य नहीं उतारे, प्रकृति की गोद में बैठ कर उन्होंने कला का शृंगार किया है। इसीलिये उनकी कला जीवन का अंग है, उसकी बिलकुल समीपिनी। वह ऊपर से लादी हुई नहीं। उनके नाटकों में प्राकृतिक सौन्दर्य के अनेक नयनाभिराम चित्र हैं जिनका आकर्षण बढ़ाने के लिये उपमानों को निमन्त्रण नहीं देना पड़ता। चित्र ज्यों के त्यों उतारे गये हैं। आनन्द की सृष्टि अनुभूति की तीव्रता और गम्भीरता के कारण होती है। वर्णनीय वस्तु, अलंकार-सज्जा, वाक्यावली सभी में शरद् गंगा के जल की निर्मलता, मिठास और ताज़गी है—इसीलिये मध्याह्न का यह चित्र भी प्राणवान् दिखता है:—

पत्रच्छायासु हंसा मुकुलित-नयना दीर्घिका-पद्मिनीनाम्

सौधान्यत्यर्थ–तापाद्वलभि-परिचय-द्वेषि पारावतानि,

विन्दुक्षेपान् पिपासुः परिसरति च शिखी भ्रान्तिमद् वारियन्त्रम्,

सर्वैरुस्रैः समग्रैस्त्वमिव नृपगुणैः दीप्यते सप्तसप्तिः।

दोपहर हो गया। सूर्य अपने सम्पूर्ण तेज से तप रहा है। हंस आँख बन्द किये बावड़ी की कमलिनियों के पत्तों की छाया में पड़े हैं। मकानों के छज्जे इतने तप उठे हैं कि कबूतर उन पर बैठ नहीं पाते। मोर प्यास में व्याकुल होकर फव्वारों से उछली हुयीं पानी की बूंदें पकड़ने की चेष्टा कर रहे हैं।

इसी प्रकार सन्ध्या और रात्रि के मनोरम चित्र विक्रमोर्वशीय में हैं। चन्द्रोदय के समय की यह कल्पना कैसी सुन्दर है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उदयगूढ़-शशाङ्क-मरीचिभिस्तमसि दूरतरं प्रतिसारिते।

अलकसंयमनादिव लोचने हरति मे हरिवाहन-दिङ्मुखम्।

उदित होते हुए चन्द्रमा की किरणों ने अन्धकार को दूर हटा दिया है। ऐसा लग रहा है कि उत्तर दिशा ने मुँह पर बिखरे हुए केशों का जूड़ा बाँध लिया है। बिखरे हुये अन्धकार का सिमट कर पीछे चला जाना, चन्द्रमा को उत्तर दिशा का मुख मान लेना, सब कितनी स्वाभाविक कल्पनायें हैं। ऋतुओं का प्रभाव मन पर उसकी विभिन्न स्थितियों के अनुसार पड़ता है। कभी वे हमारी पीड़ा को सहलातीं, कभी और दुखातीं, कभी सौन्दर्य से होड़ लगातीं और कभी उसके सम्मुख आत्म-समर्पण करती मालूम होती है। मालविकाग्निमित्र के नायक को वसन्त-श्री सुन्दरियों का गर्व-हरण करती-सी प्रतीत हो रही है। रक्त अशोक उनके बिम्बा जैसे लाल अधरों और महावर की हँसी उड़ा रहा है। श्याम, श्वेत और अरुण रंगों से मिश्रित कुरवक के सामने उनका विशेषक (पत्ररचना) फीका पड़ जाता है और तिलक वृक्ष के सामने उनका तिलक कुछ जँचता नहीं। तिलक के फूलों पर लदे भौंरों के सामने उनकी काजलशोभा टिक नहीं पाती।

वसन्त-श्री की तो बात ही क्या? कालिदास की लेखनी का स्पर्श पाकर ग्रीष्म भी स्पृहणीय हो उठता है:—

सुभग-सलिलावगाहाः पाटल-संसर्गि-सुरभिवनवाताः।

प्रच्छाय-सुलभनिद्राः दिवसाः परिणाम-रमणीयाः॥

ईषच्चुम्बितानि भ्रमरैः सुकुमारतर-केसर-शिखानि,

अवतंसयन्ति दयमानाः प्रमदाः शिरीष-कुसुमानि॥

ठंढे जल में स्नान कितना भला मालूम होता है। गुलाब खिलते हैं। वायु बगीचों से उनकी सुगन्ध चुरा लाती है। घनी छाया में नींद का आनन्द मिलता है। दिन शाम के समय आनन्ददायक लगता है। उधर सिरस पर फूल खिलते हैं। कितनी कोमल केसर शिखायें हैं इन फूलों की! भौंरें इन्हें थोड़ा चूम कर छोड़ देते हैं और युवतियाँ कोमल-कोमल हाथों से मसल जाने के डर से धीरे-धीरे उन्हें बालों में खोसती है!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कालिदास शिरीष की कोमलता और मादकता से अतीव प्रभावित है। अपने काव्य-ग्रन्थों में भी उन्होंने शिरीष की बार-बार प्रशंसा की है।

कालिदास के नाटकों में प्रथम दर्शनानुराग, गुणरूपस्मरण, प्रतीक्षा, मिलन, वियोग आदि के बड़े हृद्य वर्णन है। शकुन्तला दुष्यन्त को देखकर उस पर मुग्ध हो जाती है। सहेलियों के आग्रह पर वह जाती तो है पर जाने को मन नहीं करता। किसी-न-किसी व्याज से वह रह-रह कर अटक जाती है। कवि ने दुष्यन्त के मुख से उस स्थिति का वर्णन यों किया है:—

दर्भाङ्कुरेण चरणः क्षत इत्यकाण्डे तन्वी

स्थिता कतिचिदेव पदानि दत्वा।

'आसीद्विवृत्त-वदना च विमोचयन्ती

शाखासु वल्कलमसक्तमपि द्रुमाणाम्।

शकुन्तला दो डग चली कि दर्भ की नोक पाँव में चुभ जाने का बहाना लेकर रुक गयी। पेड़ की डाल में वस्त्र फँसा नहीं, पर फँसने का बहाना कर उसे छुड़ाने का ढोंग करती खड़ी रही। इसी तरह—

अभिमुखे मयि संहृतमीक्षितं हसितमन्य-निमित्त-कृतोदयम्।

विनय-वारित-वृत्तिरतस्तया न विवृतो मदनो न च संवृत्तः।

सामने देखते ही नजर झुका ली। मुस्कराहट ओठों में न समायी तो हँसने का झूठा निमित्त बना लिया। इस प्रकार के विभावानुभाव वर्णनों से नाटक भरे पड़े हैं। कहीं नायक आँखें मूँदे प्रेयसी के आने की कल्पना कर रहा है:—

गूढं नूपुर-शब्दमात्रमपि मे कान्तं श्रुतौ पातयेत्।

पश्चादेत्य शनैः करोत्पलवृते कुर्वीत वा लोचने,

हर्म्येऽस्मिन्नवतीर्य साध्वसवशान्मन्दायमाना बलात्,

आनीयेत पदात्पदं चतुरया सख्या ममोपान्तिकम्।

कहीं उसकी चतुर सखी एक-एक कदम आगे बढ़ाती उसे मेरे पास तक ले आये और उसके पायल की झनकार ही मेरे कानों में पड़ जाय या पीछे से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चुपके-चुपके आकर दोनों करकमलों से मेरी आँखें ही मींच ले अथवा इस महल में घुसकर भय के मारे ठिठक कर खड़ी हो जाय।

अभिज्ञान शाकुन्तल में कालिदास ने प्रेमावस्था की सभी मार्मिक स्थितियों का मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है। कालिदास का प्रेम कहीं भी एकपक्षीय नहीं है! "कनक-वलयं स्रस्तं स्रस्तं मया प्रतिसार्यते" यदि दुबलेपन के कारण दुष्यन्त का कंगन बार-बार सरक जाता है तो शकुन्तला भी "पत्राणामिव शोषणेन मरुता स्पृष्टा लता माधवी" अर्थात् हेमन्त की वायु से सूखी माधवी लता की तरह दिखायी देती है।

कालिदास के नाटकों में जीवन और प्रकृति दोनों इस तरह घुल-मिल गये हैं कि पुरुष की हर क्रिया में प्रकृति उसकी सहचरी दिखायी देती है। शकुन्तला की विदाई होती है तो लतायें उस पर पुष्प-वर्षा करती हैं। वृक्ष हाथ हिलाकर एवं कोयल रो-रोकर उसे विदा करती है। और वह हरिणशावक! जो उसका आँचल ही नहीं छोड़ना चाहता। कण्व जैसे वीतराग जहाँ द्रवित हो उठे, वहाँ साधारण जन का तो कहना ही क्या!

पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या,

नादत्ते प्रियमण्डनाऽपि भवतां स्नेहेन या पल्लवम्,

आद्ये वः कुसुमप्रसूति-समये यस्या भवत्युत्सवः,

सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम्।

वनवृक्षो! जब तक तुम्हें नहीं पिला लेती तक यह शकुन्तला मुँह में पानी का बूँद नहीं डालती थी। इसके मन में अनेक बार इच्छा होती कि नये-नये पल्लवों से अपना शृङ्गार करे किन्तु तुम्हारा मन दुख जाने के डर से इसने कभी तुम्हारे पल्लव नहीं तोड़े। जब-जब तुममें नयीं कलियाँ फूटतीं तो यह उत्सव मनाती रही। आज वही तुम्हारी प्यारी शकुन्तला पति के घर जा रही है। तुम सब इसे अनुमति दो।

शाकुन्तल का यह दृश्य इतना अधिक भावोद्रेककारी बन पड़ा है कि जरठ तार्किक (cold and calculating) लोगों का भी हृदय एक बार इसे पढ़ कर द्रवित हो जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसे सरस स्थल शाकुन्तल में तो पृष्ठ-पृष्ठ पर हैं ही, अन्य नाटकों में भी कुछ कम नहीं है। विक्रमोर्वशीय का पूरा चतुर्थ अंक वियोग की विक्षिप्त स्थिति के चित्रणों से भरा हुआ है। इस अंक को महाकवि वाल्मीकि के रामविलाप की पृष्ठभूमि अथवा भवभूति के उत्तर-रामचरित के साथ मिला कर पढ़ने से इसका काव्य-सौष्ठव स्पष्ट हो सकता है।

इन शृङ्गार-वर्णनों को—जिनके लिये कालिदास विश्व-विश्रुत है—छोड़कर देखें तो भी उनकी काव्यप्रतिभा का अबाध प्रसार सर्वत्र देखा जा सकता है। उनकी पैनी दृष्टि सूक्ष्म-से-सूक्ष्म रंगो को ग्रहण कर लेती है और उनके सहारे भव्य चित्र खड़ा कर देती है। पुरुरवा का रथ उड़ा जा रहा है और कवि देखता है कि :

अग्रे यान्ति रथस्य रेणु-पदवीं चूर्णीभवन्तो घना-
श्चक्रभ्रान्तिररान्तरेषु वितनोत्यन्यामिवारावलीम्,
चित्रारम्भ-विनिश्चलं हरि-शिरस्यायामवच्चामरम्,
यन्मध्ये समवस्थितो ध्वजपटः प्रान्ते च वेगानिलात्।

पर्वत के ऊपर उड़ते हुये मेघ जो रथ के आगे पड़ जाते हैं वे पहियों की रगड़ से पिस कर चूर-चूर हो जाते हैं। पहिये इतनी तेजी से घूमते हैं कि अरदण्डों के भीतर दूसरे अरदण्ड दिखायी पड़ते हैं। घोड़ों के सिर पर शोभा के लिये बाँधा हुआ चँवर रथ की गति के कारण चित्र-लिखा-सा निश्चल दिख रहा है और एक किनारे लगा हुआ झण्डा उड़कर रथ के बीच में फहरा रहा है।

शाकुन्तल का भी रथवेग-वर्णन कितना अधिक स्वाभाविक और मनोरम है।

यदालोके सूक्ष्मं व्रजति सहसा तद्विपुलताम्,
यदर्धे विच्छिन्नं भवति कृतसन्धानमिव तत्
प्रकृत्या यद्वक्रं तदपि समरेखं नयनयो-
र्न मे दूरे किञ्चित् क्षणमपि न पार्श्वे रथ-जवात्।

पहली नजर में जो चीज छोटी दिखायी देती है वही झट से बड़ी बन जाती है। जो चीजें अभी बीच में टूटी या अलग-अलग दीखती हैं वे ही थोड़ी देर में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जुड़ी दिखने लगती हैं। जो वस्तुतः टेढ़ा है वह आँखों को सीधा रेखाकार प्रतीत होता है। रथ की तेजी के कारण न कोई वस्तु पास ठहर पाती है और न दूर रह पाती है।

इसी प्रकार शाकुन्तल में भागते हुये हिरन का जो चित्र कवि ने उपस्थित किया है वह जितना करुण है उतना ही सजीव और यथार्थ भी—

ग्रीवा-भङ्गाभिरामं मुहुरनुपतति स्यन्दने बद्धदृष्टिः,
पश्चार्धेन प्रविष्टः शरपतन-भयाद् भूयसा पूर्वकायम्,
दर्भैरर्द्धावलीढैः श्रमविवृत-मुखभ्रंशिभिः कीर्णवर्त्मा,
पश्योदग्रप्लुतत्वाद् वियति बहुतरं स्तोकमुर्व्यां प्रयाति।

शिकारी को पीछा करते देख हिरन भाग रहा है। भागते-भागते वह गर्दन टेढ़ी करके रथ की ओर देखता जाता है। बाण लगने के डर से वह पिछला धड़ सिकोड़े आगे धँसा जा रहा है। दौड़ते-दौड़ते थक कर उसका मुँह फैल गया है और उससे अधचबायी घास निकल कर रास्ते में बिखरती जा रही है। वह इतना उछलता है कि जमीन पर कम और आकाश में ज्यादा चलता है।

कालिदास अपनी उपमाओं के लिये प्रसिद्ध हैं। उनकी उपमायें दूर से लायी हुई नहीं, अपितु दैनन्दिन जीवन के बिलकुल समीप की होती हैं। इसीलिये वे वर्ण्य वस्तु का उत्कर्ष बढ़ातीं और मन में एक आह्लाद-भावना उत्पन्न कर जाती हैं। कालिदास के नाटकों में भी उनकी यह विशेषता सर्वत्र दृष्टि-गोचर होती है। देखिये—

न तथा नन्दयसि मां सख्या विरहिता तया,
संगमे दृष्टपूर्वेव यमुना गंगया यथा। विक्रमो. २-१४

पुरुरवा कहता है कि चित्रलेखा, उर्वशी के बिना तुम अकेली अच्छी नहीं लगतीं। जैसे किसी ने प्रयाग में गंगा-यमुना के संगम को देखा हो और फिर वह अकेली यमुना को देखे तो उसे यमुना अच्छी नहीं लगेगी। यमुना की धारा संगम पर अधिक चौड़ी, गहरी तथा नीलिमामयी होने के कारण शुभ्र गंगा के सामने अच्छी लगती है। गंगा का माहात्म्य तो यमुना के बिना भी वैसा ही रहता है। उसकी धारा भी पहले ही उज्जवल, स्वच्छ और अधिक पवित्र है। इसी प्रकार उर्वशी तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्रलेखा के बिना ही स्पृहणीय हो सकती पर चित्रलेखा का मान उसके उर्वशी की सहचरी के रूप में ही है।

इसी प्रकार विदूषक को लक्ष्य कर काशिराज- पुत्री की परिचारिका कहती है, 'तृणाग्रलग्नमिवावश्याय-सलिलं न तस्मिन् राजरहस्यं चिरं तिष्ठतीति तर्कयामि' जब तक बात किसी श्रोता के कानों में ढुलक न पढ़े, विदूषक को चैन कहाँ ! उसकी इस वृत्ति की उपमा दूब की नोक पर पड़ी ओस की बूँदों से कितनी संगत है !

कालिदास की उपमायें प्रकृति से गृहीत हैं और पूर्णपरिचित । इसीलिये वे पाठक पर यथेष्ट प्रभाव डालती हैं। कालिदास के नाटकों की अनेकों उक्तियाँ सूक्तियों के समान वार्तालाप में उद्धृत की जाती हैं । इसीलिये कहा जाता है—

निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु,
प्रीतिर्मधुरसार्द्रासु मञ्जरीष्विव जायते।

ध्वनिवादी आचार्यों ने ध्वनि काव्य को श्रेष्ठ माना है और गुणीभूत व्यङ्ग्य काव्य को मध्यम । उन्होंने गुणीभूतव्यङ्ग्य काव्य के आठ भेद स्वीकार किये हैं। इनमें एक भेद है सन्दिग्ध प्राधान्य । इसमें यह ठीक ठीक पता नहीं चल पाता कि यहाँ वाच्यार्थ प्रधान है अथवा व्यङ्ग्यार्थ । जैसे—

हरस्तु किञ्चित्परिवृत्त धैर्यश्चन्द्रोदयारम्भ इवाम्बु-राशिः ।
उमामुखे विम्वफलाधरोष्ठे व्यापारयामास विलोचनानि ।।

कुमार. ३-६७

इस श्लोक में कहा है कि शिव का धैर्य कुछ कुछ ढीला पड़ गया । वह ऐसे ही क्षुब्ध हो गये जैसे चन्द्रोदय से समुद्र की जलराशि चञ्चल हो जाती है और तब उन्होंने विम्बाफल के समान उमा के रक्त अधर पर अपने नेत्रों को सक्रिय कर दिया । यहाँ कवि को चुम्बन करने की इच्छा व्यक्त करना अभीष्ट है अथवा केवल नेत्र गड़ा देने की इच्छा, जो कि वाच्यार्थ है । इस प्रकार यहाँ यह निश्चय करना कठिन है कि श्लोक में वाच्यार्थ प्रधान है, अथवा व्यङ्ग्यार्थ ।

व्यञ्जना वृत्ति का एक अन्य उदाहरण जिसे प्रायः व्यञ्जना के रूप में प्रस्तुत किया जाता है, यह है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वयं गतं सम्प्रति शोचनीयतां समागम-प्रार्थनया कपालिनः ।

कला च सा कान्तिमती कलावतस्त्वमस्य लोकस्य च नेत्रकौमुदी ।

कुमार. ५-७१

यहाँ कुछ प्रतियों में 'पिनाकिनः' पाठ मिलता है जिसे काव्य मर्मज्ञों ने अस्वीकार कर 'कपालिनः' पाठ ही उपयुक्त माना है। वैसे कपालिनः और पिनाकिनः दोनों का अभिधेयार्थ शिव ही है । किन्तु यहाँ तात्पर्य है शिव निन्दा से । जो कपालिनः शब्द से ही सिद्ध हो सकती है । कपालिनः का व्यंग्यार्थ है अशुचि, वीभत्स, खप्पर धारण करने वाला। व्यङ्ग्यार्थ यह निकलता है कि शिव तो अमङ्गली है—दर्शन के भी अयोग्य, हेय । अतः यह पद शिव के प्रति पार्वती के प्रेमभाव को निवृत्त करने में समर्थ है । पिनाकी शब्द पिनाक धारी शिव का वाचक है और वीरता का द्योतक । यह निन्दा का व्यञ्जक न होकर अनुराग का संवर्धक हो जायगा । कपाली में व्यञ्जना है

दिशि मन्दायते तेजो दक्षिणस्यां रवेरपि।

तस्यामेव रघोः पाण्ड्याः प्रतापं न विषेहिरे ॥ रघु. ४-३९

यहाँ रघु के दिग्विजय का वर्णन है । यहाँ कवि कहना चाहता है कि रघु का प्रताप सूर्य से भी बढ़कर है । यह बात व्यतिरेक अलंकार के द्वारा कही गयी है । अतः यहाँ रवि- तेजरूप स्वतः- संभवी वस्तु से व्यतिरेकालङ्कार व्यङ्ग्य है ।

असंलक्ष्य क्रमव्यङ्ग्य ध्वनि, अभिधामूलक ध्वनि या विवक्षितान्यपरवाच्य ध्वनि का ही भेद है । इसे असंलक्ष्य क्रम व्यङ्ग्य ध्वनि कहने का कारण यह है कि रस, भाव, आदि की प्रतीति सामान्यतया विभावादि के ज्ञान पूर्वक ही होती है । अतः कार्यकारण का पौर्वापर्य रहता तो अवश्य है किन्तु वह अति शीघ्रता से होने के कारण परिलक्षित नहीं हो पाता । विभावादि की प्रक्रिया शीघ्रता के कारण पृथक् पृथक् प्रतीत नहीं होती । असंलक्ष्यक्रम ध्वनि प्रकृति, प्रत्यय, उपसर्ग, निपात, वर्ण और रचना आदि में रहती है और इसलिये अनेक प्रकार की होती है । कालिदास के निम्न श्लोक में प्रकृति मूलक ध्वनि है—

चलापाङ्गां दृष्टिं स्पृशसि वहुशो वेपथुमतीं

रहस्याख्यायीव स्वनसि मृदु कर्णान्तिक-चरः ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करौ व्याधुन्वन्त्याः पिबसि रति सर्वस्वमधरं

वयं तत्त्वान्वेषान्मधुकर हतास्त्वं खलु कृती ॥ शाकु. १-२१

यहाँ 'दुःखं प्राप्तवन्तः' के स्थानपर हताः कहकर दुःखातिशय की व्यञ्जना की गयी है । और व्यञ्जक हन् धातु प्रकृति-मात्र है ।

निपात की अभिव्यञ्जकता निम्न श्लोक में है—

मुहुरङ्गुलि-संवृताधरोष्ठं प्रतिषेधाक्षर-विक्लवाभिरामम् ।

मुखमंसविवर्ति-पक्ष्मलाक्ष्याः कथमप्युन्नमितं न चुम्वित नु ।

शाकु. ३-२२

इस श्लोक में 'तु' इस निपात से अनुताप व्यञ्जित होता है ।

कालिदास को जहाँ वस्तु का विशेष रूप से प्रतिपादन करना होता है, वहाँ वह विशेष का अभिधान करने वाले शब्द का ही प्रयोग करते हैं । जैसे उन्होंने भिक्षु रूपधारीशंकर के द्वारा पार्वती से कहलाया है—

द्वयं गतं सम्प्रति शोचनीयतां
समागम-प्रार्थनया कपालिनः ।

कला च सा कान्तिमती कलावत
स्त्वमस्य लोकस्य च नेत्र-कौमुदी । कुमार ५-७१

इस श्लोक में कपालिनः पद के प्रयोग के महत्त्व की चर्चा ऊपर हो चुकी है । इसमें संप्रति और द्वयम् पद भी विशेष महत्त्व रखते हैं क्योंकि अब तक एक चन्द्रकला ही कपाली के समागम के कारण शोचनीय थी किन्तु अब (सम्प्रति) तुम्हारे भी उसमें जुड़ जाने से दो दो कुलीन और अभिराम व्यक्तित्व शोच्यावस्था को प्राप्त हो गये हैं । 'प्रार्थना' शब्द का भी अलग महत्त्व है क्योंकि यों ही काक- तालीय न्याय से परिस्थितिवश कोई शोचनीयता को प्राप्त हो जाय तो अलग बात है किन्तु तुमने तो अत्यन्त कुलीन होकर भी माँगकर स्वेच्छा से इस कलंक का वरण किया है । 'सा च' और 'त्वम्' पद परस्पर- स्पर्धिलावण्यातिशय की ओर ध्यान खींचने के लिये हैं । ऐसे ही 'कलावतः' और 'कान्तिमयी' ये दोनों मत्वर्थीय पद पार्वती और चन्द्रमा दोनों की प्रशंसार्थ प्रयुक्त हुए हैं । इस प्रकार कवि ने श्लोक में प्रत्येक पद को विशेषाभिधान की दृष्टि से चुना है । एक अन्य श्लोक—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भर्तुर्मित्रं प्रियमविधवे विद्धि मामम्वुवाहं,
तत्संदेशाद्धृदयनिहितादागतं त्वत्समीपम्।
यो वृन्दानि त्वरयति पथि श्राम्यतां प्रोषितानां
मन्द्रस्निग्धै र्ध्वनिभिरवलावेणि-मोक्षोत्सुकानि॥ मेघ. २-३६

इस श्लोक में 'अविधवे' यह सम्बोधन आश्वासन देने के लिये है कि तुम्हारा पति जीवित है। यह प्रथम आवश्यकता भी थी क्योंकि इसके बिना सन्देशहर की ओर देखने का उत्साह ही यक्षी में न होता। 'मित्रं' पद मेघ की अपनी उपादेयता को सिद्ध करने के लिये है। 'अम्बुवाह' पद यह सूचित करने के लिये है कि मेरा काम ही वहन करना है। यह मेरी प्रकृति है। जब मैं इतने भारी अम्वुकोष का वहन करता हूँ तो फिर सन्देह की बात ही क्या? सन्देश का विशेषण 'हृदयनिहितात्' भी विशेष अर्थ की व्यञ्जना के लिये है कि मैं इस सन्देश को इतना महत्त्व देता हूँ कि मैंने उसे सबसे कोमल और गुह्य स्थान में छिपाकर रखा है और किसी अन्य को उसकी भनक तक नहीं लगने दी है। उत्तरार्ध में भी कवि ने प्रत्येक पद विशेष दृष्टि से रखा है। मेघ प्रवासी पतियों में घर लौटने के लिये त्वरा उत्पन्न करता है। एक दो पतियों में नहीं, उनके वृन्दों में— उन पतियों में जो मार्ग! में ढीले पड़कर विश्राम करने लगते हैं। मेघ उन्हें जगा देता है। किन्तु कर्कश तीव्र शब्दाघात से नहीं, मन्द्र और स्निग्ध ध्वनि से, जिससे वे हड़बड़ा कर नहीं, अति माधुर्य और स्निग्ध भाव से भरित होकर यक्षी के समान ही पति-वियोग में बँधी हुई वेणियों को खोलने के लिये चल पड़ें। यक्षी भी वेणिमोक्ष के लिये आतुर है। अतः उसे धैर्य देने के लिये मेघ का यह कथन अवसरोपयुक्त है। 'अबला' वियोगिनी की असमर्थता द्योतित करने के लिये है। 'उत्सुक' पद वियोगी जनों की पत्नी में अनुरक्ति को प्रकट करता है। इस प्रकार कवि ने यहाँ मेघ के स्वभाव का जो चित्रण किया है वह मेघदूत खण्ड काव्य के मेघदूतत्व का प्राणभूत हो गया है। कवि कौशल का एक अन्य उदाहरण—

तामभ्यगच्छद् रुदितानुसारी मुनिः कुशेध्माहरणाय यातः।
निषाद-विद्धाण्डज-दर्शनोत्थः श्लोकत्वमापद्यत यस्य शोकः।

रघु. १४-७०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस श्लोक में कवि ने मुनि का नाम नहीं लिया, यद्यपि वैसा करना सरल था। वाल्मीकि का नाम भिन्न ढंग से लेने के पीछे कवि की कुशल दृष्टि है। जो मुनि पक्षी के मारे जाने पर इतना भाव- विह्वल हो गया कि उसके मुख से करुणा श्लोक बनकर फूट पड़ी, उसकी स्थिति इस गर्भवती और क्रौञ्ची सी दीन नारी को देखकर क्या हुई होगी ! कवि ने करुण रस के परिपोष के लिये वाल्मीकि का इतने बड़े विशेषण के द्वारा परिचय कराया है।

काव्य के तीन मार्ग सुप्रसिद्ध हैं—सुकुमार, विचित्र और मध्यम। सत्कवियों ने प्रायः सुकुमार का अनुसरण किया है। वे उत्फुल्ल कुसुमों वाले कानन से होकर निकलने वाले षट्पदों के समान हैं—

सुकुमाराभिधः सोऽयं येन सत्कवयो गताः।
मार्गेणोत्फुल्लकुसुम-काननेनेव षट्पदाः। वक्रोक्ति. १-२९

यथा—

बालेन्दुवक्राण्यविकाश-भावाद् वभुः पलाशान्यति लोहितानि।
सद्यो वसन्तेन समागतानां नखक्षतानीव वनस्थलीनाम्॥

कुमार.३-२८

यहाँ 'बालेन्दुवक्राणि' 'अतिलोहितानि' और 'सद्यः वसन्तेन समागतानाम्' ये पद सुकुमार होने के कारण केवल स्वभाव का वर्णन करने के लिये प्रयुक्त होकर भी अनायास रूप से 'नखक्षतानीव' इस उपमारूप अलंकार की योजना के कारण चमत्कारपूर्ण हो गये हैं। यद्यपि बालेन्दुवक्राणि आदि पद पलाश पुष्प की स्वाभाविकता का वर्णन करते हैं तथापि नखक्षत भी टेढ़ा और रक्त होता है जिसकी संभावना नायक और नायिका के समागम-काल में ही हो सकती है। अतः नायक-नायिका रूप में वसन्त एवं वनस्थली के साथ सामञ्जस्य स्थापित करते हुये ये पद विशेष चमत्कार की सृष्टि करते हैं। एक अन्य श्लोक देखें—

तस्य स्तन-प्रणयिभिर्मुहुरेण शावै
र्व्याहन्यमान-हरिणी-गमनं पुरस्तात्।
आविर्बभूव कुशगर्भ-मुखं मृगाणां
यूथं तदग्रसर-गर्वित-कृष्णसारम्॥ रघु. ९-५५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहाँ मृगों के स्वभाव का इतना चामत्कारिक चित्रण है कि उसके आगे आहार्य या व्युत्पत्तिजन्य कौशल का कोई महत्त्व नहीं रह जाता। परमार्थ स्वभाव का वर्णन ही उससे अधिक सहृदय-हृदयावर्जक है। सुकुमार मार्ग की एक विशेषता पदार्थों के स्वभाव की प्रधानता के सामने कल्पना- जनित सौन्दर्य का फीका पड़ जाना भी है। ऐसे ही- 'काष्ठागत- स्नेहरसानुविद्धं द्वन्द्वानिभावं क्रियया विवव्रुः।' कुमार ३-३५। अर्थात वसन्तु ऋतु के आगमन का प्रभाव यह हुआ कि पशु पक्षियों के जोड़े अपने भावों को क्रिया के द्वारा व्यक्त करने लगे। यथा

शृङ्गेण च स्पर्श-निमीलिताक्षीं मृगीमकण्डूयत कृष्णसारः।

वही. ३६

ददौ मुखात् पड्कजरेणुगन्धि गजाय गण्डूषजलं करेणुः।

वही ३७

यहाँ भी प्राणियों के स्वभाव का वर्णन इतना मनोमुग्धकारी है कि उसके सामने कवि का कौशलजन्य वर्णन टिक नहीं सकता। काव्य मर्म की ऐसी पकड़ विरले ही कवियों में होती है। इसे कुन्तक ने 'भाव-स्वभाव-प्राधान्य न्यक्कृताहार्य कौशलः' कहा है। इसका तात्पर्य यह कि पक्षियों के कलरव, वृक्ष, जल, कुसुमार्तव आदि पदार्थ अपने समृद्ध, सहज स्वभाव चित्रण से युक्त होकर विभावादि रूप से रस के अङ्ग बनते हैं। किन्तु सुर, गन्धर्व, मानव आदि शृङ्गारादि रसों की परिपूर्णता के साथ वर्णित किये जाने पर ही रसिक जनों के मन को आनन्दित करने में समर्थ होते हैं। इसे वक्रोक्तिकार ने "रसादि- परमार्थ- ज्ञान मनः- संवाद- सुन्दर" कहा है।

कालिदास के अनेकशः ऐसे वर्णन है जिनकी सौन्दर्य- संपत् को शब्दों के द्वारा व्याख्यायित या विश्लेषित नहीं किया जा सकता। वह केवल अतिशय- युक्त रूप में हृदय में स्फुरित होता है और केवल अनुभव- संवेद्य होता है। यथा—

ज्याबन्ध-निष्पन्द-भुजेन यस्य विनिश्वसद्-वक्त्र-परम्परेण।
कारागृहे निर्जित-वासवेन दशाननेनोषितमाप्रसादात्॥

रघु. ६-४०

इन्दुमती-स्वयंवर का प्रसंग है। सुनन्दा माहिष्मती के राजा प्रतीप का परिचय इन्दुमती को दे रही है कि यह उस कार्तवीर्य अर्जुन के वंशज हैं जिनके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारागार में तब तक दशानन बन्दी रहा जब उन्होंने कृपा कर उसे छोड़ नहीं दिया। उन्होंने दशानन को धनुष की डोरी से बाँध दिया था जिससे वह हिलडुल तक नहीं सकता था और कष्ट से निःश्वास छोड़ा करता था। यह स्थिति उन्होंने उस रावण की बना दी थी जिसके दश मुख थे और जिसने इन्द्र तक को पराजित किया था। इस श्लोक में कवि ने रावण के लिये जिन विशेषणों का प्रयोग किया है उन्हें अब अन्य किसी शब्द द्वारा व्यक्त करने की अपेक्षा नहीं है। "निर्जित वासवेन" कहकर इस बात की ओर ध्यान खींचा है कि कहाँ इन्द्रजयी रावण और कहाँ उसकी यह दशा! 'विनिःश्वसद्वक्त्रपरम्परेण' के द्वारा यह आश्चर्य उद्‌घाटित किया है कि एक के बदले दशमुख होने पर भी निःश्वास की पीड़ा और 'ज्यावन्ध निःस्पन्दभुजेन' से यह स्पष्ट किया है कि सामान्य ज्या से बाँध देने पर भी उसमें भुजाओं को हिलाने डुलाने का सामर्थ्य नहीं रहा था। इस प्रकार अन्य विशेष कथन के बिना कवि ने केवल तीन विशेषणों से इतना कह दिया है कि उसे किसी अन्य व्यपदेश की आवश्यकता नहीं रह गयी। यह कवि की सहज प्रतिभा का प्रमाण है।

समस्तपदों से हीन, मनोहर पदों के विन्यास वाली माधुर्यमयी रचना सुकुमार मार्ग का प्राण होती है। माधुर्य ऊपर के श्लोकों में सुतरां स्पष्ट है। इसी प्रकार प्रसाद गुण देखिये—

हिमव्यपायाद् विशदाधराणामापाण्डुरीभूत-मुखच्छवीनाम्।

स्वेदोद्‌गमः किंपुरुषाङ्गनानां चक्रे पदं पत्रविशेषकेषु॥

कुमार. ३-३३

ग्रीष्म का प्रारम्भ हुआ। शीत और हिमपात की समाप्ति हुई। फटे सूखे अधरों पर कान्ति फूटी और मुख की गौरता वापिस लौटी। तब किन्नरियों के पलाश के तिलकों से सजे मस्तकों पर स्वेद बिन्दु झलकने लगे। यहाँ असमस्त पदों और तात्पर्य- विच्छित्ति से प्रसाद गुण स्पष्ट है। ऐसे ही—

अनेन सार्धं विहराम्बुराशे स्तीरेषु तालीवन-मर्मरेषु।

द्वीपान्तरानीत लवङ्ग-पुष्पैरपाकृत-स्वेदलवा मरुद्भिः॥

रघु. ६-५७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहाँ पर भी प्रचुर समासों का अभाव आदि प्रसाद गुण की समस्त सामग्री विद्यमान है। साथ ही 'अपाकृतस्वेदलवा' इस पद से जो सुरत- श्रम- जन्य स्वेद विन्दुओं की ओर संकेत किया गया है, वह भी स्पष्ट है। प्रसाद के समान लावण्य भी काव्य को विशेष शोभा प्रदान करता है। इसमें अक्षरों की विचित्र, मनोरम संघटना से युक्त पदों की योजना रहती है और उसकी शोभामयी वाक्यरचना का सौन्दर्य लावण्य का लक्षण होता है। इसमें वाक्य की विशेष- संघटना- जन्य रमणीयता होती है। विचित्र संघटना अर्थात् उसकी विदग्धता- पूर्ण भङ्गिमा। सुबन्त और तिङन्त पदों की भव्य योजना और उससे लक्षित बन्ध- सौन्दर्य अर्थात् शब्द और अर्थ की सुकुमारता से रमणीय संघटना की शोभा लावण्य कहलाती है। यथा—

स्नानार्द्रमुक्तेष्वनुधूप-वासं विन्यस्त-सायन्तन-मल्लिकेषु।
कामो वसन्तात्ययमन्दवीर्यः केशेषु लेभे वलमङ्गनानाम्॥

रघु. १६-५०

तथा—

चकार वाणैरसुराङ्गनानां गण्डस्थलीः प्रोषित-पत्रलेखाः॥

रघु. ६-७८

यहाँ प्रथम श्लोक में केशों के विशेषण के रूप में प्रयुक्त पदों की संघटना का सौन्दर्य केवल सहृदय जनों के द्वारा अनुभव- संवेद्य है। वर्ण- विन्यास की विच्छित्ति अर्थात् सुकुमार वर्णों का मनोहर विन्यास और पदों की रम्य योजना की शोभा शब्दों के द्वारा व्यक्त नहीं की जा सकती। दूसरे श्लोक में भी सुकुमार वर्ण- सन्निवेश- जन्य पदों की सुचारू योजना स्पष्ट प्रतीत होती है। काव्य में आभिजात्य गुण भी कम महत्त्व का नहीं होता। स्पर्श की योग्यता विद्यमान रहने पर किसी अपूर्व स्पर्श- सुख को हृदय में उत्पन्न करने की क्षमता का नाम अभिजात्य है। यह स्वभाव से ही मसृण छायावाला, बिना व्युत्पत्ति के उत्पन्न स्निग्ध कान्ति से युक्त होता है। यथा—

ज्योतिर्लेखा-वलयि गलितं यस्य वर्हं भवानी,
पुत्रप्रीत्या कुवलयदलप्रापि कर्णे करोति॥ मेघ. १-४४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहाँ पर श्रुतिरमणीयतादि तथा स्वाभाविक स्निग्ध- कान्ति- युक्तता किसी अपूर्व अनिर्वचनीय और सहृदय संवेद्य तत्त्व का स्फुरण करती है । इस 'अतितराम्' विशेषत: 'तराम्' प्रत्यय ने वाक्य की शोभा द्विगुणित कर दी है ।

औचित्य भी काव्य का महत्त्वपूर्ण गुण है । जिसके द्वारा भली भाँति स्पष्ट ढंग से पदार्थ का महत्त्व या उत्कर्ष परिपोष को प्राप्त कराया जाता है अर्थात् जिससे पदार्थ का औचित्य कथन रूप उत्कर्ष परिपुष्ट होता है और उसके अनुरूप ही अलंकारों का विन्यास सुशोभित होता है, वह औचित्यगुण माना जाता है । अथवा जहाँ वक्ता या श्रोता के अतिशययुक्त स्वभाव के द्वारा अभिधेय वस्तु को आच्छादित कर लिया जाता है वहाँ भी औचित्य गुण होता है । यथा—रघुवंश में रघु के समीप भिक्षार्थ गये हुए कौत्स का यह कथन—

शरीरमात्रेण नरेन्द्र तिष्ठन्नाभासि तीर्थ-प्रतिपादितर्धिः ।

आरण्यकोपात्त-फलप्रसूतिः स्तम्बेन नीवार इवावशिष्टः ।

रघु. ५-१५

यहाँ प्रशंसनीय ढंग से महाराज रघु के स्वभाव का सातिशय वर्णन करते समय कौत्स के द्वारा अपने ज्ञात व्यवहार के अनुसार प्रस्तुत उपमालंकार की योजना अत्यन्त औचित्य का परिपोषण करती है । मुनि ने राजा की उपमा नीवार के डण्ठल से दी है, वह उन्हें अपने अनुभव से ज्ञात है । वह नीवार काटते ही थे । काटने के बाद नीवार के डण्ठलों में विशिष्ट प्रकार का सौन्दर्य दिखता था । ऐसा सब कुछ दान कर देने के बाद रघु में भी था । उपमा देने वाले मुनि की दृष्टि से यह सर्वथा उचित लगता है । और वक्ता के स्वभाव से अभिधेय का स्वभाव आच्छादित सा प्रतीत होता है ।

यह औचित्य अलंकारादि से युक्त होने के कारण उज्जवल और अत्यन्त भ्राजिष्णु हो कर पद, वाक्य और प्रबन्ध में व्यापक होकर विद्यमान रहता है—अर्थात् सकलावयव को व्याप्त कर प्रतिष्ठित होता है । त्वरित गति से वर्ण्य का स्फुरण और रस परिपाक ही औचित्य का लक्ष्य है । सम्पूर्ण वाक्य के एक अंश में भी औचित्य का अभाव होने पर काव्य की आह्लादकारिता में हानि होने लगती है । यथा—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरं निषादाधिपतेस्तदेतद् यस्मिन् मया मौलिमणिं विहाय।
जटासु वद्धास्वरूदत् सुमन्त्रः कैकेयि कामाः फलितास्तवेति ॥

रघु. १३-५९

महान् उदात्त गुणों से परिपूर्ण आदर्श पुत्र के रूप में वर्णित राम का "कैकेयि कामाः फलितास्तवेति" इस वाक्य का इतने वर्षों तक न केवल स्मरण, अपितु पत्नी के समक्ष उसे दोहरा भी देना अति अनौचित्य पूर्ण है। कभी कभी प्रकरण के एक अंश में भी औचित्य का अभाव हो जाने से सारा प्रकरण इस प्रकार दूषित हो जाता है जैसे थोड़े से भी भाग के जल जाने पर सम्पूर्ण वस्त्र। इसका उदाहरण सिंह-दिलीप संवाद के ये श्लोक है—

अथैक-धेनोरपराधचण्डाद् गुरोः कृशानु-प्रतिमाद् विभेषि।
शक्योऽस्य मन्युर्भवता विनेतुंगाः कोटिशः स्पर्शयता घटोघ्नीः ॥

रघु. २-४९

सिंह का यह कथन राजा का उपहास करने के लिये होने के कारण औचित्य पूर्ण है क्योंकि गोरक्षा में तत्पर होने के कारण दिलीप को अपने प्राणतृणवत् तुच्छ प्रतीत होते हैं किन्तु राजा का उत्तर—

कथन्नुशक्योऽ नुनयो महर्षे र्विश्राणनाच्चान्य-पयस्विनीनाम्।
इमामनूनां सुरभेरवेहि रुद्रौजसा तु प्रहृतं त्वयाऽस्याम् ॥

रघु. २-५४

अनौचित्य पूर्ण है क्योंकि अन्य किसी गाय के प्रदान से ऋषि को प्रसन्न कर सकता, तो उसे तुम्हारे लिये छोड़ देता। किन्तु सरभि के तुल्य है यह, और इसके समान अन्य कोई गाय प्रस्तुत नहीं है, अतः विवश होकर मैं इसके लिये अपना बलिदान करने को तत्पर हूँ। यदि अन्य कोई गाय देकर गुरु को प्रसन्न कर सकता तो इसे तुम्हारे भक्षण के लिये छोड़ देता। उपर्युक्त कथन का पर्यवसान इस अर्थ में होता है जो दिलीप जैसे पूर्व वर्णित उदात्त चरित्र की दृष्टि से अनौचित्य पूर्ण है। और यही बात प्रबन्धकाव्य के विषय में है। एक निम्न श्लोक ने यहाँ सारे प्रकरण को दूषित कर दिया है। श्लोक है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कामेकपत्नीव्रत-दुःख-शीलां
लोलं मनश्चारुतया प्रविष्टाम्।
नितम्विनीमिच्छसि मुक्त-लज्जां
कण्ठे स्वयंग्राह-निषिक्त-बाहुम्॥ कुमार. ३-७

यह शंकर की समाधि को भंग करने के लिये इन्द्र द्वारा बुलाये जाने पर कामदेव की उक्ति है। यहाँ स्वर्ग के महान् आधिपत्य के स्वामी इन्द्र के प्रति इस प्रकार पतिव्रतानारी के शीलभंग का प्रस्ताव गर्हणीय है, विशेषत: तब और भी जब इन्द्र इसके प्रति घृणा या विरोध नहीं व्यक्त करता। एकपत्नीव्रत-तपस्विनी के लिये 'नितम्बिनी' 'मुक्तलज्जा' आदि विशेषण देवराज इन्द्र की गरिमा की दृष्टि से अनौचित्यपूर्ण है और कालिदास जैसे महाकवि को शोभा नहीं देते।

सिद्ध कवि कभी कभी किसी एक शब्द का इस प्रकार प्रयोग करते हैं कि वह अपने निष्पत्ति- मूलक अर्थ, और यदि वह शब्द विशिष्ट संज्ञा वाचक हो तो अपने द्वारा बोधित अर्थ का परित्याग कर या उसमें सातिशय प्रभावोत्पादकता उत्पन्न कर काव्य में अत्यधिक रमणीयता उत्पन्न कर देता हैं। यथा रघुवंश में—

ततः प्रहस्यापभयः पुरन्दरं पुनर्वभाषे तुरगस्य रक्षिता।
गृहाण शस्त्रं यदि सर्ग एष ते न खल्वनिर्जित्य रघुं कृतीभवान्।

रघु. ३-५१

यहाँ रघु शब्द व्यक्ति मात्र का बोधक न होकर अनिरुद्ध प्रभाव वाले महेन्द्र के उत्साह को भंग करने वाले लोकोत्तर-सामर्थ्य सम्पन्न व्यक्ति का बोधक बन गया है। जिसकी परिपुष्टि में श्लोक का 'प्रहस्य' पद अद्भुत रूप से सहायक सिद्ध हुआ है। इसी प्रकार—

गुर्वर्थमर्थी श्रुतपारदृश्वा रघोः सकाशादनवाप्य कामम्।
गतो वदान्यान्तरमित्ययं मे माभूत् परीवादनवावतारः।

रघु. ५-२४

यहाँ भी रघु शब्द सामान्य राजा का नाम न रहकर त्रिभुवनातिशायी औदार्यतिरेक का बोधक बन गया है। काव्य में ऐसे प्रयोग सम्पूर्ण श्लोक में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शोभातिशय की सृष्टि करते हैं। शब्दों के उपचरित एवं लाक्षणिक प्रयोग का एक उदाहरण—

गच्छन्तीनां रमण- वसतिं योषितां यत्र नक्तं,

रुद्धालोके नरपतिपथे सूचिभेद्यैस्तमोभिः।

सौदामिन्या कनकनिकष- स्निग्धया दर्शयोर्वीं,

तोयोत्सर्ग-स्तनित- मुखरो मास्म भूर्विक्लवास्ताः॥ मेघ. १-३७

यहाँ तमस् को सूचिभेद्य कहा है किन्तु सूचि के द्वारा भेदन तो किसी मूर्त वस्तु का ही हो सकता है। फिर भी यहाँ कवि ने अमूर्त को भी भेद्य कह दिया है। यह इसलिये कि बाहुल्य के कारण अन्धकार भी घना प्रतीत होता है। अतः सघनता मात्र के साम्य के कारण यहाँ सूचीभेद्य विशेषण का प्रयोग उपचार से हुआ है। इसी प्रकार 'स्निग्ध' यह शब्द सौदामिनी का विशेषण भी केवल लक्षणया ही है क्योंकि स्निग्ध वह मूर्त वस्तु होती है जो दर्शन-स्पर्शन-संवेद्य-स्नेहन-गुण से युक्त हो। किन्तु यहाँ कान्ति को भी स्निग्ध कह दिया गया है। कवि की विदग्धता निम्न श्लोक से भी स्पष्ट है।

दर्पणे च परिभोग- दर्शिनी पृष्ठतः प्रणयिनो निषेदुषः।

वीक्ष्यबिम्बमनुबिम्बमात्मनः कानि कानि न चकार लज्जया।

कुमार. ८-११

यहाँ लज्जा प्रकाशन के विविध रूपों को संवृत कर कवि ने चातुर्य के साथ गोपनीयता- जन्य सौन्दर्य को उत्कर्ष की कोटि तक पहुँचाकर उसका पर्यवसान किया है।

तस्यापरेष्वपि मृगेषु शरान् मुमुक्षोः

कर्णान्तमेत्य विभिदे निविडोऽपि मुष्टिः।

त्रासातिमात्र चटुलैः स्मरयत्सु नेत्रैः प्रौढ-

प्रिया-नयन-विभ्रम-चेष्टितानि॥ रघु. ९-५८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दशरथ मृगया में तन्मय है। वह मृगों पर बाण चलानें के लिये मुष्टि को दृढ़कर प्रत्यञ्चा खीचे और बाण को दृढ़ता से पकड़े थे। किन्तु भय से चञ्चल मृग-नेत्रों ने उन्हें जैसे ही उनकी प्रिया के नेत्रों की याद दिला दी कि दशरथ की मुट्ठी अपने आप ढीली पड़ गयी। यहाँ कवि 'मुष्टिं बिभेद या शिथिलयायांचका भी कह सकता था किन्तु उसने काव्य में चमत्कारातिशय और शरीर पर होने वाली झटिति प्रतिक्रिया को व्यक्त करने के लिये कर्तृ- कर्म- प्रक्रिया का आश्रय लेकर मुष्टि को कर्ता और भिद् को आत्मनेपद में प्रयुक्त कर यह कहना चाहा है कि मृग- नेत्रों का राजा पर ऐसा तीव्र प्रभाव पड़ा कि उसे सोचने और प्रत्यञ्चा को ढीला करने की चेष्टा ही नहीं करनी पड़ी। सद्यः स्फुरित क्रिया की शीघ्रता को व्यक्त करने के लिये यहाँ 'स्वयं ही मुट्ठी ढीली पड़ गयी' यह प्रयोग किया है।

उपमाः कालिदासस्य

कालिदास की ख्याति उपमाओं के लिये भी है। यों तो शायद ही कोई महाकवि है जिसने अपनी कृति को उपमाओं से मण्डित नहीं किया है। फिर भी कालिदास की बात कुछ और है। उपमायें उनके चारों ओर मधु के छत्ते के इर्द गिर्द मधुमक्षिकाओं के समान मँडराती हैं और वह उनमें से जहाँ जैसी आवश्यकता होती है किसी को भी पकड़कर अपनी रचना में जड़ देते हैं। उपमा यों भी काव्य का प्राण है। उसका प्रयोग कथ्य में स्पष्टता लाने और उसे अधिक प्रभावी बनाने के लिये होता है। काव्यालंकारों में प्रमुख और अधिकांश उपमा मूलक ही हैं। उपमा तुलना या सादृश्य के लिये वर्ण्य वस्तु से भिन्न किसी तत्सदृश वस्तु पर निर्भर करती है। यदि यह सादृश्य वास्तविक अर्थ में- यथा लिङ्ग, वचन, पुरुष और काल की समानता के साथ साथ काव्य की रसमयता, शोभा और प्रभाव की सातिशयता का संवर्धक हुआ तो उपमा सार्थक होती है किन्तु यदि उसने वर्ण्य को आच्छादित कर उसे गौण बना डाला और स्वयं प्रतिपाद्य बन बैठी या किसी घटक अंग की न्यूनता या प्रकर्ष के कारण वर्ण्य से पूरी तरह मेल न खां सकी तो वह दोषग्रस्त मानी जायगी। इन सब बातों को ध्यान में रख कर देखें तो संस्कृत कवियों में वह मूर्धन्य दिखेंगे। काव्यों के समान उनके नाटक भी श्रेष्ठ उपमाओं से भरे पड़े हैं। नीचे कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१) **रेवां द्रक्ष्यस्युपल- विशदां विन्ध्यपादे विशीर्णां**
भक्तिच्छेदैरिव विरचितां भूतिमङ्गे गजस्य। मेघ. १-१९

रेवा (नर्मदा) विन्ध्य श्रेणी के अमरकण्टक पर्वत से नीचे उतरती है तो बड़े बड़े शिलाखण्डों से टकराती हुई वह अनेक पतली रेखाओं में विभक्त हो जाती है। तब अमरकण्टक शैल गज जैसा लगता है और रेवा की शुभ्र पतली धारायें उसे सजाने के लिये सम्पूर्ण शरीर पर बनायी हुई भंगिमापूर्ण श्वेत रेखायें। हाथी के शरीर पर भूति (शृंङ्गार) के लिये विविध धवल रेखायें बनायी जाती हैं।

यहाँ गिरि और गज तथा रेवा-धारा और भूति में वर्ण (धवलिमा) तथा दोनों में ऊपर से नीचे अवतरण में साम्य है।

(२) पर्वत पर ही आधारित एक श्रौती पूर्णोपमा—

उत्पश्यामि त्वयि तटगते स्निग्धभिन्नाञ्जनाभे,

सद्यः कृत्तद्विरदशनच्छेद-गौरस्य तस्य।

शोभामद्रेः स्तिमित-नयन प्रेक्षणीयां भवित्री-

मंसन्यस्ते सति हलभृतो मेचके वाससीव॥ मेघ. १-२२

यहाँ कैलासपर्वत उपमेय है और हलधर उपमान। स्तिमित- नयन-प्रेक्षणीय शोभा सामान्य धर्म है और इव वाचक शब्द। इस प्रकार यहाँ चारों उपमांगों के विद्यमान होने से श्रौती पूर्णोपमा है। कैलास और हलधर दोनों का धवलोज्वल वर्ण और कैलास पर छाया स्निग्ध तथा पिसे सुरमें जैसा काला मेघ और बलराम के कन्धों पर पड़ा मेचक (कृष्ण) वर्ण का वस्त्र, साथ ही इसके लिये प्रयुक्त वाक्यों में विभक्ति- साम्य ये सब मिलकर सुखद प्रभाव उत्पन्न करते हैं। इस उपमा में दो अन्य उपमायें अन्तर्भूत है—स्निग्धभिन्नाञ्जनाभे तथा सद्यः- कृत्तद्विरद... आदि में। कुल मिलाकर इनसे कथन में प्रभावातिशय उत्पन्न हुआ है।

(३) **चक्षुः खेदात् सलिल-गुरुभिः पक्ष्मभिश्छादयन्तीं,**
साभ्रेऽह्नीव स्थलकमलिनीं न प्रबुद्धां न सुप्ताम्॥ मेघ. २-२७

अमृत के समान शीतल चन्द्र किरणें वातायन की जाली से होकर कक्ष के भीतर घुसती हैं तो यक्षी के नेत्र पूर्ववत् उनका स्वागत करने आगे बढ़ते हैं किन्तु फिर उनसे दाह की अनुभूति कर तुरन्त पीछे लौट आते हैं। वह तब खेद से नेत्रों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में आँसू भर लाती है और उन्हें पलकों से ढँक लेती हैं। कवि ने यहाँ यक्षी की उपमा स्थल कमलिनी (Hibiscus Mutabilis) लता से दी है जिसके पुष्प-स्थल कमल दिन में खिलते हैं सूर्य का प्रकाश पाकर। यदि आकाश में बादल छाये रहे तो वह खिलकर भी खिल नहीं पाती। दिन होने से खिलने का उपक्रम करती है किन्तु छाया के कारण अनखिली या अर्धमुकुलित रह जाती है। यहाँ यक्षी का उपमान स्थल- कमिलिनी है और चक्षुष् का उपमान उसका पुष्प विरह- व्यथा काल साभ्र अहन् है। अभ्र और पक्ष्म दोनों आच्छादक हैं।

(४) त्वय्यासन्ने नयनमुपरि-स्पन्दिशङ्के मृगाक्ष्या
मीन-क्षोभाच्चल-कुवलय-श्रीतुलामेष्यतीति ॥ मेघ. २-३२

यहाँ भी अंजन शून्य, अपाङ्ग रहित और भ्रूविलास हीन आँखों का मेघ को देखकर ऊपर की ओर स्पन्दित होना मीन के उछलने से शान्त पुष्कर में कुवलय दल के उर्ध्व स्पन्दन के सदृश बतलाया है। शान्त नील गगन में मेघ का अवसर्पण स्थिर पुष्करिणी जल में मीन का तैरना और उसके क्षोभ से कमलदल के समान नेत्र का ऊपर उठ जाना साम्य का विषय है। नेत्र उपमेय और कुवलय उपमान है। उपरि- स्पन्दन सामान्य धर्म है। यहाँ आर्थी उपमा है।

(५) सा भूधराणामधिपेन तस्यां समाधिमत्यामुदपादि भव्या।
सम्यक् प्रयोगादपरिक्षतायां नीताविवोत्साह-गुणेन संपत् ॥

कुमार. १-२२

यहाँ समाधिमती मेनका और अपरिक्षत नीति ये आधार या क्षेत्र हैं। भूधर और उत्साहगुण कर्ता है। पार्वती और नीति फल हैं। इन तीनों में उपमेयोपमान भाव है और उत्पादन क्रिया सामान्य धर्म है एवं इव वाचक शब्द है जैसे ठीक प्रयोग के कारण स्वस्थ नीति उत्साह के साथ मिल कर संपत् को जन्म देती है ऐसे ही समाधिमती मेना ने भूधरराज के द्वारा भव्य पार्वती को जन्म दिया।

(६) तेषा माविरभूद् ब्रह्मा परिम्लान-मुख-श्रियाम्।
सरसां सुप्तपद्मानां प्रातर्दीधितिमानिव। कुमार. २-२

यहाँ ऋषिगण और देवता परिम्लान- मुखश्री है। उनकी उपमा सुप्तपद्म-सरों से दी है जो सर्वदा उचित है। रात्रि वेला में जब कमल सो जाते हैं तो सरों की मुखश्रीम्लान हो जाती है। इधर देवगण तारकासुर के भय से हृतमुखश्रीक हैं। प्रातः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उदित होता सूर्य जैसे कमलों को विकसित कर सरों को उनकी शोभा से भर देता है, ऐसी ब्रह्मा के आविर्भाव ने देवों को उत्फुल्ल कर दिया। ब्रह्मा का उपमान सूर्य है। विकसन सामान्य धर्म है, जो गम्य है।

(७) **लब्ध-प्रतिष्ठा यूयं प्रथमं किं वलवत्तरैः।**
अपवादैरिवोत्सार्गाः कृतव्यावृत्तयः परैः। कुमार २-२७

इस श्लोक में कहा गया है कि पहले देवों को जो प्रतिष्ठा प्राप्त थी उसे अब शत्रुओं ने भंग कर दिया है जैसे कि—व्याकरण में अपवाद नियम सामान्य नियमों का बाध करते हैं। यहाँ यूयम् (देवों) का उपमान उत्सर्ग (सामान्यशास्त्र) है। पहले सामान्य शास्त्र या सूत्र के समान वे लब्ध- प्रतिष्ठ (सम्मानित एवं सावकाश) थे किन्तु अब उन्हें परों (शत्रुओं) ने प्रतिष्ठाहीन बना दिया है। यहाँ पराः उपमेय है और अपवादाः उपमान। व्यावृत्ति करण सामान्यधर्म है। कृत- व्यावृत्ति का अर्थ भग्न प्रतिष्ठा और संकुचित सीमा दोनों है। यह उपमा कवि के मीमांसा, व्याकरण आदि के शास्त्रीय ज्ञान की परिचायक है।

(८) **अपेक्षते प्रत्ययमुत्तमं त्वां बीजाङ्कुरः प्रागुदयादिवाम्भः॥**

कुमार ३-१८

यहाँ कामदेव वसन्त को कार्यसिद्धि (शिवपरिणय) में चरम कारण बतलाता हुआ उसकी उपमा बीज को अंकुरित बनाने वाले जल से देता है। प्रणयाङ्कुर उपमेय और वीजाङ्कुर उपमान है। इसी प्रकार वसन्त उपमेय और अम्भस् उपमान है। उदय सामान्य धर्म, फल और उत्तम प्रत्यय सामान्य गुण एवं अपेक्षा सामान्य धर्म है।

(९) **आवर्जिता किंचिदिव स्तनाभ्यां वासोवसाना तरुणार्क रागम्।**
पर्याप्त-पुष्पस्तवकावनम्रा संचारिणी पल्लविनी लतेव॥

कुमार ३-५४

यहाँ पार्वती को लता के समान बतलाया है। पार्वती स्तनभार से अवनम्र है तो लता- पुष्प स्तवकों से। पार्वती लाल वस्त्र पहने हैं तो लता रक्त पल्लवों से आवृत है। दोनों संचारिणी हैं—एक गमन से तो दूसरी वायुवेग से। देह यष्टि भी दोनों की समान है। यहाँ भी उपमा पार्वती के सौन्दर्य को विशद करती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१०) क्वनु मां त्वदधीनजीवितां विनिकीर्य क्षणभिन्न-सौहृदः।
नलिनीं क्षत- सेनु- बन्धनो जलसंघात इवासि विद्रुतः।

कुमार. ४-६

पति के मरने पर रति विलाप कर रही है। वह प्रेत काम की उपमा जल-संघात से देती है जो सहसा आता है और सेतुबन्ध को क्षणमात्र में तोड़ता हुआ और खिली हुई कमलिनियों को इधर उधर फेंक कर तेजी से निकल जाता है। यहाँ कवि ने पूरा चित्र ही प्रस्तुत कर दिया है। जलपूर और काम में पूर्ण औपम्य है। सेतु- बन्ध के कारण शान्त प्रवाह में पुष्पित नलिनी लता को जलपूर विकीर्ण कर जाता है। वह सेतु को तोड़ देता है। पूर के समान काम भी रति के जीवन के स्थैर्य और सुख रूपी बन्ध को भग्न कर उसे निराश्रित भटकने के लिये छोड़ गया है। पूर भी सहसा आता है और क्षणभर में सब कुछ ध्वस्त कर तेजी के साथ निकल जाता है और काम भी 'क्रोधं प्रभो संहर संहरेति' के अनुसार सहसा क्षण भर में दग्ध होकर चला गया। श्लोक के क्षण और विद्रुत शब्द स्थिति को ठीक स्पष्ट करते हैं। भिन्न सौहृदः विशेषण भी महत्त्वपूर्ण है। रति- काम के समान ही नलिनी और जल का सौहृद भी स्वभावसिद्ध है।

(११) ऊपर श्लोक में रति की उपमा नलिनी से दी थी। प्रस्तुत श्लोक में पार्वती की उपमा पद्मिनी से दी गयी है—

सपदि मुकुलिताक्षीं रुद्र-संरम्भभीत्या

दुहितरमनुकम्प्यामद्रि रादाय दोर्भ्याम्।

सुरगज इव विभ्रत् पद्मिनीं दन्तलग्नां

प्रतिपथगतिरासीद् वेग-दीर्घीकृताङ्गः। कुमार. ४-७६

यहाँ अद्रिराज और सुरगज में साम्य हैं—दोनों विशालकाय और शुभ्रवर्ण हैं। अद्रि के भुजों और सुरगज के दो दन्तों में वर्ण, दैर्घ्य और स्थौल्य में गत सादृश्य है। भय के कारण मुकुलितनेत्रा पार्वती एवं अविकसित पुष्पों वाली नलिनी के भी शैत्य, मार्दव आदि सभी गुणों में सादृश्य है। दोनों में पथानुसारिणी गति और वेग के कारण अङ्गो का फैलाव समान है। पूरी उपमा चित्रात्मकता लिये है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१२) तं वीक्ष्य वेपथुमती सरसाङ्गयष्टिर्निक्षेपणाय पदमुद्धृतमुद्वहन्ती।
मार्गाचल-व्यतिकराकुलितेव सिन्धुः शैलाधिराजतनया न ययौ न तस्थौ।

कुमार. ५-८५

यह उपमा भी चित्रमयता लिये है। शिव को देख कर पार्वती का शरीर पसीने पसीने हो गया। उसका आगे जाने के लिये उठा हुआ चरण जहाँ का तहाँ रह गया। वह न आगे बढ़ सकी और न पीछे लौट पायी, ठीक वैसे ही जैसे कि नदी की बहती धारा मार्ग में शैल आ जाने से होती है। यहाँ पार्वती का उपमान सरित, और शिव का अचल है। सामान्य धर्म है, न ययौ न तस्थौ और वाचक शब्द है इव।

(१३) सा मङ्गल-स्नान-विशुद्धगात्री गृहीत-प्रत्युद्गमनीय वस्त्रा।
निर्वृत्त-पर्जन्य-जलाभिषेका प्रफुल्लकाशा वसुधेवरेजे॥

कुमार. ७-११

यहाँ पार्वती की उपमा वसुधा से दी गयी है। पार्वती कृत- स्नाना है तो वसुधा निर्वृत्त- जलाभिषेका। पार्वती धृतशुभ्रवस्त्रा है तो वसुधा प्रफुल्ल- काशा। दोनों ही लोक धात्री हैं। रेजे यह सामान्य धर्म अवसरोचित है। प्रभाव तथा रूप के साम्य का यह श्रेष्ठ उदाहरण है।

(१४) उन्नतावनतभाव-वत्तया चन्द्रिका सतिमिरा गिरेरियम्।
भक्तिभिर्वहुविधाभिरर्पिता भातिभूतिरिव मत्तहस्तिनः॥

कुमार. ८-६९

पर्वत कहीं ऊँचा है, कहीं नीचा। कहीं सघन वृक्ष- राजि है तो कहीं अनावृत स्थली। उस पर चन्द्रिका किसी स्थल को प्रकाशित करती है तो कहीं अंधेरा ही बना रहता है। कवि ने उसकी उपमा मत्तगज के शरीर पर सज्जा शृंङ्गार के लिये बनायी गयी शुभ्र रेखाओं से दी है। कालिदास ने मेघदूत में इसी उपमा का आश्रय अनेक धाराओं में प्रवाहित रेवा के वर्णन में भी लिया है।

(१५) तत्र हंस-धवलोत्तरच्छदं जाह्नवी-चारु-पुलिन-दर्शनम्।
अध्यशेत शयनं प्रियासखः शारदाभ्रमिव रोहिणीपतिः॥

कुमार. ८-८२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस श्लोक में उपमा की सहायक दो अन्य उपमायें भी हैं। शिव सर्वतः हरित-नील परिवेश में धवल शयन पर धवल चादर के ऊपर प्रिया के साथ सो रहे हैं। कवि को लगता है हरित-नील प्रवाह वाली (जलधारा दूर से ऐसी दिखती है रात्रि में) जाह्नवी के बीच पुलिन के समान शुभ्र शय्या है और पुलिन पर सोये हँसों के समान धवल चादर है। और ये सब मिलकर ऐसा दृश्य उपस्थित करते हैं जैसा शरत्कालीन आकाश के बीच श्वेत बादल। और उमा के साथ सोये शिव उस पर रोहिणी के साथ चन्द्र जैसे प्रतीत होते हैं। कितना भव्योज्वल चित्र है यह। यहाँ शय्या का उपमान पुलिन, उत्तरच्छद का हंस, नीलाकाश का जाह्नवीधारा, शारदाभ्र का पर्यङ्क; उमा का रोहिणी और शिव का चन्द्र है। अधिशयन सामान्य धर्म है।

(१६) **अथवा कृत-वाग्द्वारे वंशेऽस्मिन् पूर्वसूरिभिः।**
मणौ वज्रसमुत्कीर्णे सूत्रस्येवास्ति मे गतिः। रघु. १-४

यहाँ पूर्व सूरियों द्वारा वाग्द्वार बना दिये जाने के कारण कवि ने सूर्य वंश में अपनी पहुँच संभव बतलायी है जैसे वज्र के द्वारा छेद बना दिये जाने पर मणि के भीतर सूत्र का भी प्रवेश हो जाता है। यहाँ पूर्व सूरि और वज्र, रघुवंश और मणि तथा कवि और सूत्र में उपमेयोपमान भाव है। और गति सामान्य धर्म है।

(१७) **काप्यभिख्या तयोरासीद् व्रजतोः शुद्धवेषयोः।**
हिमनिर्मुक्तयोर्योगे चित्राचन्द्रमसोरिव॥ रघु. १-४६

दिलीप और सुदक्षिणा उज्जवल वेश धारण किये हुए वन मार्ग में जा रहे हैं और शिशिर की समाप्ति के पश्चात् प्रकाशमान चन्द्रमा और चित्रा के समान प्रतीत हो रहे हैं। यहाँ तयोः का उपमान है चित्राचन्द्रमसोः। इन दोनों की विशेषता है शुद्ध वेषता और हिमनिर्मुक्तता। का ऽप्यभिख्या दोनों का गुण है। कालिदास अपनी उपमाओं से पूर्ण साम्य का रूप खड़ा करते हैं जिसमें उपमेय और उपमान सब प्रकार से 'तुल्य- बल- प्रभाव' दिखायी देते हैं।

(१८) **विधेः सायन्तनस्यान्ते स ददर्श तपोनिधिम्।**
अन्वासितमरुन्धत्या स्वाहयेव हविर्भुजम्॥ रघु. १-५६

सायन्तन होम के पश्चात् वशिष्ठ बैठे हैं और पीछे उनकी पत्नी अरुन्धती है। कवि की दृष्टि में वे दोनों अग्नि और उनकी पत्नी स्वाहा के समान हैं। यहाँ कवि ने उपमान भी उपमेय के समान पावन चुना है। व्यक्तित्व की समता के साथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनके आसन अन्वासन में भी साम्य है । सायन्तन हवन के पश्चात् जैसे ऋषि और उनकी पत्नी को विश्राम के लिये अवकाश है, वैसे ही अग्नि और स्वाहा को भी तो है ।

(१९) तस्याः खुरन्यास-पवित्र पांसु मपांसुलानां धुरि कीर्तनीया।
मार्गं मनुष्येश्वर-धर्म-पत्नी श्रुतेरिवार्थं स्मृति रन्वगच्छत्॥ रघु. २-२

जैसे स्मृति श्रुति के अर्थ (प्रतिपाद्य) का अनुगमन करती है वैसे ही सुदक्षिणा नन्दिनी के मार्ग का अनुगमन कर रही थी । यहाँ सुदक्षिणा का स्मृति और नन्दिनी का श्रुति के साथ साम्य कितना मनोहर है । और मार्ग शब्द ने उसमें जान डाल दी है । इसी प्रकार २-१६ में दिलीप के साथ नन्दिनी ऐसे शोभित बतलायी गयी है जैसे विधि के साथ श्रद्धा । इसमें दिलीप को विधि (याज्ञिक विधान) और गो को साक्षात् श्रद्धा कहना कितना उपयुक्त है ।

(२०) पुरस्कृता वर्त्मनि पार्थिवेन प्रत्युद्गता पार्थिव-धर्म-पत्न्या।
तदन्तरे सा विरराज धेनुर्दिन-क्षपामध्यगतेव सन्ध्या॥ रघु. २-२०

यह कवि की उत्कृष्ट उपमाओं में एक है । दिनभर गोचारण के पश्चात् दिलीप आश्रम को लौट रहे हैं । राजा पीछे चल रहे हैं, गाय उनके आगे है । इतने में रानी उन्हें देखकर स्वागतार्थ आगे बढ़ती है । तब रानी आगे, राजा पीछे और गाय मध्य में हो जाती है । कवि को लगता है जैसे आगे आगे क्षपा मध्य में सन्ध्या और पीछे पिछे दिन चल रहा है ।

राजा दिन के समान तेजस्वी ही नहीं, नियामक भी हैं और महिषी रात्रि के समान शान्ति, विश्रान्ति की प्रतीक हैं । धेनु सान्ध्य पवित्रता की प्रतीक होने के साथ पाटलवर्णा होने के कारण भी सन्ध्या से मेल खाती हैं । इस प्रकार कालिदास महान् के लिये महान्, सुदर्शन के लिये सुदर्शन और पवित्र के लिये पूज्य उपमान प्रस्तुत करते हैं और उपमान और उपमेय में न केवल बाह्य रूप रंग, प्रत्युत उनके प्रत्यय और परिवेश में भी सादृश्य का ध्यान रखते हैं । इस प्रसंग में उनका प्रत्येक शब्द अर्थ को विशिष्टता प्रदान करने के लिये प्रयुक्त होता है । उदाहरणार्थ इस श्लोक का विरराज शब्द । यहाँ इसके अतिरिक्त अन्य कोई क्रिया सार्थक नहीं होती ।

रघु. २-२१ में गो के शृङ्गान्तर को 'द्वारमिवार्थ सिद्धेः' कहना भी उक्त कथन का ही परिपोषक है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२१) तदाननं मृत्सुरभि क्षितीश्वरो रहस्युपाघ्राय न तृप्तिमाययौ।
करीव सिक्तं पृषतैः पयोमुचां शुचिव्यापाये वनराजि-पल्वलम्॥

३-३ रघु.

गर्भवती स्त्री के मुख से मिट्टी जैसी सुगन्ध आती है। दिलीप अपनी गर्भवती पत्नी के मुख को सूँघ कर अपूर्व तृप्ति लाभ करते थे। जैसे ग्रीष्मान्त की पहली बूँदों के साथ जंगल में पोखर से फूट निकलती मिट्टी को सोंधी गन्ध को सूँघकर गज मस्त हो जाता है। यहाँ राजा गज का, रानी का आनन छोटे पोखर का और आघ्राण, आघ्राण का सादृश्य सूचित करता है। तृप्ति की अप्राप्ति उभय व्यापी धर्म है। यह उपमा कवि के विशिष्ट ज्ञान का भी परिचय देती है।

(२२) संचारिणी दीप शिखेव रात्रौ यं यं व्यतीयाय पतिंवरा सा।
नरेन्द्र-मार्गाद् इव प्रपेदे विवर्णभावं स स भूमिपालः॥

रघु. ६-६७

कालिदास को इस उपमा ने इतनी ख्याति दी कि लोग उन्हें 'दीपशिखा कालिदास' कहने लगे। इन्दुमती वरमाला लिये है। सुनन्दा सभा में वरण-कामना से पधारे राजाओं के पास क्रमशः उसे ले जाती है और प्रत्येक की विशेषताओं का बखान करती हैं। इन्दुमती की स्वीकृति लेकर वह आगे बढ़ जाती हैं। जिस राजा को छोड़कर वह आगे बढ़ती हैं, उसी के मुख पर मलिनता छा जाती है। कवि उपमा प्रस्तुत करता है—जैसे रात्रि वेला में जब कोई दीप को ऊँचा उठाये राजमार्ग पर चलता है तो चलने वाले के आगे की अट्टालिकायें प्रकाशित होती जाती हैं किन्तु दीपालोक जब आगे बढ़ता है तो वे फिर अँधेरी दिखने लगती है। अनुभव पर आधारित इस उपमा में इन्दुमती का उपमान दीपशिखा और पंक्तिबद्ध बैठे भूपालों का उपमान मार्गाद् है। विवर्णता सामान्य धर्म है।

(२३) तस्मादपावर्तत कुण्डिनेशः पर्वात्यये सोम इवोष्णरश्मेः। रघु. ७-३३

भोज अपने बहनोई अज के साथ तीन दिन रह कर लौट आया। कवि ने भोज की उपमा सोम से और अज की सूर्य से दी है। पर्व या अमावस्या को चन्द्र सूर्य के अत्यधिक समीप होता है तो सूर्य की छाया उसे ढँक लेती है और उसका प्रकाश अवरुद्ध हो जाता है। फिर जैसे जैसे वह सूर्य से दूर हटता जाता है, सूर्य की छाया हटना प्रारम्भ होती है। इसी प्रकार भोज जो अब तक अज के तेज से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभिभूत था, अब अपना प्रकाश प्राप्त करेगा। यह उपमा कालिदास के ज्योतिष ज्ञान को प्रमाणित करती है।

(२४) प्रत्यग्रहीत् पार्थिव-वाहिनींतां
ज्योतीरथां शोण इवोत्तरङ्गः। रघु. ७-३६

यह उपमा भी साभिप्राय है। शोण बड़ा नद है और ज्योतीरथा छोटी सरित् जो शोण से मिलकर नामशेष हो जाती है। कवि अज की सेना की उपमा शोण से तथा शत्रु वाहिनी की उपमा ज्योतीरथा से देता है। यह उपमा कवि के भौगोलिक ज्ञान की साक्षी है।

(२५) व्यूहावुभौ तावितरेतरस्माद् भङ्गं जयं चापतुरव्यवस्थम्।
पश्चात्-पुरोमारुतयोः प्रवृद्धौ पर्यायवृत्त्येव महार्णवोर्मी॥

रघु. ७-५४

अज तथा उसके शत्रुओं के सैन्य- व्यूह आमने सामने लड़ रहे हैं। कभी एक पक्ष दूसरे को पीछे ढकेल देता है तो कभी दूसरा उसे पीछे घकेल कर आगे बढ़ जाता है। कवि इस स्थिति की उपमा महासागर की लहरों से देता है जो आगे और पीछे दो विरुद्ध दिशाओं की ओर से बहने वाले पवन के थपेड़े खाकर कभी आगे तो कभी पीछे जाती हैं। यह कवि की निरीक्षण शक्ति का चमत्कार है।

(२६) हृष्टापि सा ह्रीविजिता न साक्षात् वाग्भिः सखीनां प्रियमभ्यनन्दत्।
स्थली नवाम्भः-पृषताभिवृष्टा मयूर-केकाभिरिवाभ्रवृन्दम्॥

रघु. ७-६९

अज ने शत्रुओं को पराजित कर दिया। इससे उनकी नवोढा इन्दुमती का प्रसन्न होना स्वाभाविक था और यह भी कि विजय के लिये वह उनका अभिनन्दन करे। किन्तु लज्जावश वह स्वयं पति के समक्षबोलने का साहस नहीं कर सकी तो उसने अपनी सखियों के मुख से अज का अभिनन्दन करवा दिया। कालिदास इस अवसर के लिये सुन्दर उपमा प्रस्तुत करते हैं—जैसे स्थली वर्षा की नयी बूँदों से हर्षित होती है तो अभ्र- वन्द का स्वयं अभिनन्दन न कर मयूर-केका के द्वारा कृतज्ञता ज्ञापित करती है। स्थली उपमान है 'सा' (इन्दुमती) का और मयूर-केका उपमान हैं सखी वाक् का। सामान्य धर्म है अभिनन्दन।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२७) इदमुच्छ्वसितालकं मुखं तव विश्रान्त-कथं दुनोति माम्।
निशि सुप्तमिवैक-पङ्कजं विरताभ्यन्तर-षट्पद-स्वनम् ॥

रघु. ८-५५

रति अपने पति काम देव के मुख की, जिस पर अलक हिल रहे हैं, उपमा रात्रि वेला में निमीलित पङ्कज से देती है जिसके भीतर बैठे भ्रमरों ने गुंजन बन्द कर दिया है। मृत काम के मुख के लिये यह उपमा कितनी उपयुक्त है ! इसीलिये निशि को (मृत्यु के तमस् की ओर भी संकेत है) सुप्त एक पंकज कहा है। नेत्र मुँदे, निश्चेष्ट, स्थिर, जिसके लिये मुख को 'विरता... षट् पदम्' विशेषण दिया गया है।

(२८) सुतौ लक्ष्मण-शत्रुघ्नौ सुमित्रा सुषुवे यमौ।
सम्यगाराधिता विद्या प्रवोधविनयाविव ॥ रघु. १०-७१

प्रथम दृष्ट्या सामान्य सी दिखने वाली यह उपमा कितनी महत्त्वपूर्ण है। श्लोक का प्रत्येक शब्द अर्थ गाम्भीर्य लिये हुए है। सुमित्रा का उपमान है विद्या। उसके साथ 'सम्यक् आराधिता' यह विशेषण लगा है जो विद्या के साथ सुमित्रा द्वारा गर्भ के सम्यक् पोषण की ओर भी संकेत करता है। 'यमौ' विशेषण प्रबोध और विनय के साहचर्य का द्योतक है।

(२९) स हत्वा वालिनं वीरस्तत्पदे चिरकाङ्क्षिते।
धातोः स्थान इवादेशं सुग्रीवं सन्न्यवेशयत् ॥ रघु. १२-५८

वालि के स्थान पर सुग्रीव को बिठा देना ऐसा ही है जैसा धातु के स्थान पर आदेश को बिठा देना। व्याकरण में अस् धातु के स्थान पर भू तथा ब्रू के स्थान पर आह एवं वच् आदेश होता है। अस्तेर्भूः (२-४-५२) तथा 'व्रुवः पञ्चानामादित आहोब्रुवः (३-४-८४) एवं 'व्रुवो वचिः' (२-४-५३) ये सूत्र आदेश का विधान करते हैं। इससे कवि का व्याकरण शास्त्र पर अधिकार सिद्ध होता है।

(३०) मन्दाकिनी भाति नगोपकण्ठे मुक्तावली कण्ठ-गतेव भूमेः।

रघु. १३-४८

चित्रकूट पर मन्दाकिनी शिखर भूमि से नीची किन्तु सामान्य भूमि से काफी ऊँचाई पर गोल- सा बनाती बहती है। अतः यह उपमा यथार्थ है।

अत्यन्त सीधी सुपरिचित समयानुकूल उपमा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३१) अपश्यतां दाशरथी जनन्यौ छेदादिवोपघ्नतरोर्व्रतत्यौ ।। रघु. १४-१

राम लक्ष्मण द्वारा विधवा माताओं (कोसल्या और सुमित्रा) से मिलने का दृश्य है । कितनी सुन्दर उपमा है । दशरथ तरु और रानियाँ व्रतति है ।

(३२) आनन्दजः शोकजमश्रु-वाष्पस्तयोरशीतं शिशिरोविभेद् ।
गङ्गा-सरय्व्योर्जलमुष्ण-तप्तं हिमादि-निष्यन्द इवावतीर्णः ।

रघु. १४-३

माताओं के नेत्रों से वेदना जन्य उष्ण अश्रु बह रहे थे किन्तु रामलक्ष्मण को देखकर उनके स्थान पर स्नेह जन्य शीतल आँसुओं का प्रवाह प्रारम्भ हो गया । उस समय व्यथा के उष्ण और आनन्द के शीतल आँसू अलग अलग पहचाने जा सकते थे । कवि उनकी उपमा गंगा और सरयू के ग्रीष्म कालीन तप्त जल में हिमालय की बर्फ के गलने से आकर मिले शीतल जल से करता है । कोसल्या और सुमित्रा गंगा और सरयू हैं । व्यथा जन्य अश्रु उनका ग्रीष्म तप्त जल, आनन्दज आँसू हिमनिस्यन्द । कितनी समर्थ और सर्वानुभूत उपमा है यह । व्याकरण सम्बन्धिनी ही दो उपमायें और

(३३) यः कश्चन रघूणां हि परमेकः परन्तपः—
अपवाद इवोत्सर्गं व्यावर्तयितुमीश्वरः । रघु. १५-७

अपवाद उत्सर्ग (सामान्य नियम) को बाधकर प्रवृत्त होते हैं । व्याकरण, मीमांसा आदि शास्त्रों में इसी पर बहुत सी प्रक्रिया निर्भर करती है । यहाँ उपमान है अपवाद 'रघूणां यः कश्चन एकः' और उपमेय उत्सर्ग है तारकासुर । एक अन्य उदाहरण—

(३४) रामादेशादनुगता सेना तस्यार्थ-सिद्धये—
पश्चादध्ययनार्थस्य धातोरधिरिवाभवत् ।। रघु. १५-९

राम के आदेश से शत्रुघ्न की अर्थसिद्धि (उद्देश्य की पूर्ति) के लिये सेना इस प्रकार पीछे पीछे चली जैसे अर्थ (अध्ययन) की सिद्धि के लिये 'इङ् अध्ययने' धातु के पीछे अधि उपसर्ग रहता है । इङ् धातु अध्ययनार्थक है अवश्य किन्तु उसका यह अर्थ तभी होता है जब अधि उपसर्ग उसके पीछे चलता है—अधि + ईते = अधीते । और अब एक ज्योतिष सम्बन्धिनी उपमा—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तं प्रीतिविशदैर्नेत्रैरन्वयुः पौरयोषितः

शरत्-प्रसन्नै ज्योतिर्भि र्विभावर्य इव ध्रुवम्॥ रघु. १७-३५

नगर वधुयें नेत्रों से किशोर सुदर्शन को इस प्रकार देखती है जैसे शरद की उज्जवल रात्रियाँ अपने ताराओं रूप स्निग्ध नेत्रों से ध्रुव को देखती हैं।

(३५) मङ्गलालंकृता भाति कौशिक्या यति-वेषया
त्रयी विग्रहवत्येव सममध्यात्मविद्यया। माल. १-१४

यहाँ सम्राज्ञी को त्रयी (वेद विद्या) तथा कौशिकी तापसी को अध्यात्मविद्या के सदृश बतलाया है। यह उपमा- मूलक उत्प्रेक्षा है—

(३६) पात्र-विशेषे न्यस्तं गुणान्तरं व्रजति शिल्पमाधातुः।
जलमिव समुद्रशुक्तौ मुक्ताफलतां पयोदस्य॥ माल. १-६

यहाँ शिल्प का उपमान जल, आधातुः का पयोद, पात्र विशेष का समुद्र-शुक्ति और गुणान्तर का मुक्ताफलता है। उपमान वाक्य में 'न्यस्तम्' गम्य है। व्रजति सामान्य क्रिया और इव वाचक शब्द होने से श्रौती पूर्णोपमा है। यह उपमा कवि की बहुज्ञता की सूचक है।

(३७) अचिराधिष्ठित-राज्यः शत्रुः प्रकृतिष्वरूढमूलत्वात्।
नव-संरोपण शिथिलस्तरुरिव शक्यः समुद्धर्तुम्॥ वही १-८

यहाँ शत्रु का उपमान तरु है। शत्रु का विशेषण अचिराधिष्ठित राज्यः तो तरु का नवसंरोपण- शिथिलः है। समुद्धर्तुं शक्यत्व सामान्य धर्म है। प्रकृतिषु श्लिष्ट पद है जिसका अर्थ शत्रुपक्ष में प्रजा और तरुपक्ष में मूलाधार भूत मृत्तिका है। अतः यहाँ श्लेषानुप्राणित उपमा है।

(३८) मन्दोऽप्यमन्दतामेति संसर्गेण विपश्चितः-
पङ्कच्छिदः फलस्येव निकषेणाविलं पयः॥ माल. २-७

मन्दजन भी विद्वान् के संसर्ग से चतुर हो जाता है। इस सामान्य सी बात के लिये वह कितनी सुन्दर और ज्ञान वर्धक उपमा प्रस्तुत करते हैं? जैसे गन्दा भी पानी निर्मली फल के द्वारा शुद्ध हो जाता है। आविलपय मन्द का और फल विपश्चित् का उपमान है। अमन्दतामेति सामान्य धर्म है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३९) चण्डी चण्डं हन्तुमभ्युद्यता मां
विद्युद्दाम्ना मेघराजीव विन्ध्यम्। माल. ३-२१

इरावती हेमकाञ्ची से राजा को मारने को उद्यत होती है। कवि उपमा प्रस्तुत करता हुआ है जैसे मेघराजी विद्युत् की रस्सी से विन्ध्य पर प्रहार करती है। यहाँ इरावती का उपमान है मेघराजी और काञ्ची गुण का विद्युद् दाम।

(४०) शर-काण्ड-पाण्डु-गण्डस्थलेयमाभाति परिमिताभरणा।
माधव-परिणत-पत्रा कतिपय-कुसुमेव कुन्दलता॥ माल. ३-८

मालविका कुन्दलता सी दिखायी देती है। मालविका परिमिताभरणा है तो कुन्दलता कतिपय- कुसुमा। मालविका पाण्डुकपोला है तो कुन्दलता परिणतपत्रा। आभाति उभयत्र सम्बद्ध है। इस प्रकार दोनों में पूर्ण सादृश्य है।

(४१) एताः सुतनु मुखं ते सख्यः पश्यन्ति हेमकूटगताः।
उत्सुकनयनालोकाश्चन्द्रमिवोपप्लवान्मुक्तम्॥ विक्रमो. १-१२

यहाँ उर्वशी के मुख को उसकी सखियाँ उत्सुक नयनों से देख रही हैं। मुख जैसे ग्रहण से मुक्त चन्द्रमा है। मुख भी केशी के अभिभव से तत्काल मुक्त हुआ है। चन्द्र को भी लोक इसी प्रकार उत्सुक नयनों से देखते हैं। सर्वाङ्ग सादृश्य कालिदास की विशेषता हैं। वह केवल एक वस्तु का दूसरी से सादृश्य बताकर सन्तुष्ट नहीं होते प्रत्युत सम्पूर्ण स्थिति में सादृश्य प्रस्थापित करते हैं।

(४२) सखीभिर्याति संपर्कं लताभिः श्रीरिवार्तवी।

विक्रमो. १-१४

उर्वशी अपनी सखियों से इस प्रकार मिलती है जैसे वासन्ती श्री लताओं से। वासन्ती श्री एक है और लतायें अनेक। ऐसे ही उर्वशी एक है और सखियाँ अनेक। ऊपर की पंक्ति में 'पुनरियं' शब्द का प्रयोग हुआ है जिसका आशय है कि वह फिर से सखियों से मिली है जैसे माधवी की शोभा वर्ष भर बाद लताओं से मिलती हैं।

(४३) अयञ्च गगनात् कोऽपितप्तचामीकराङ्गदः।
अधिरोहति शैलाग्रं तडित्वानिव तोयदः॥ विक्रमो. १-१५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्र रथ (गन्धर्व) शैल शिखर की ओर बढ़ रहा है। उसने बाहों में सुवर्ण के केयूर पहन रखे हैं। कवि उसकी उपमा तडित् से युक्त ऊपर उठते मेघ से देता है। अधिरोहण किया दोनों में समान है।

(४४) एक सुन्दर उपमा—पुरुरवा उर्वशी के मार्ग की ओर मुँह करके कहता है कि विष्णु लोक की ओर जाती हुई यह देवांगना मेरे मन को शरीर से इस प्रकार खींच कर लिये जा रही है जैसे राजहंसी मृणाल के टूटे पत्रदण्ड से विसतन्तु को खींच ले जाती है—

एषा मनो मे प्रसभं शरीरात् पितुः पदं मध्यममुत्पतन्ती।
सुराङ्गना कर्षति खण्डिताग्रात् सूत्रं मृणालादिव राजहंसी ॥

विक्रमो. १-२०

(४५) एक अन्य सर्वथा मौलिक उपमा। यह पूर्णोपमा है—

परिजन-वनिता-करार्पिताभिः परिवृत एष विभाति दीपिकाभिः।
गिरिरिव गतिमानपक्षसादादनुतटपुष्पित-कर्णिकार-यष्टिः।

विक्रमो. ३-३

राजा पुरुरवा हाथों में दीपिकायें सम्हाले वनिताओं से घिरा कुछ ऐसा लग रहा था जैसे पंख कटने से पहले का चलता हुआ गिरि हो और उसके किनारे किनारे फूली हुई कर्णिकार की यष्टियाँ (डण्डियां) हों। यहाँ राजा उपमेय है और गिरि उपमान। दोनों में साधर्म्य है दीपिकाओं से और पीतपुष्पों से परिवृत होना। दीपिकायें दण्डों पर और पुष्प कर्णिकार यष्टियों पर टिके थे। इव वाचक पद है।

(४६) **च्युतं रुषा भिन्नगतेरसंशयं शुकोदरश्याममिदं स्तनांशुकम् ॥**

विक्रमो. ४-१७

स्तनांशुक की उपमा शुकोदर से दी है। श्यामता सामान्य धर्म है। वाचक-लुप्ता उपमा है।

(४७) **आभाति मणि-विशेषो दूरमिदानीं पतत्रिणा नीतः।**
नक्तमिव लोहिताङ्गः परुषघनच्छेद-सम्पृक्तः ॥ विक्रमो. ५-४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पक्षी द्वारा दूर ले जाया गया रक्त मणि ऐसा लग रहा है जैसे रात्रि के समय घने मेघ खण्डों से घिरा मंगल ग्रह लगता है। मंगल रक्त वर्ण होता है, रत्न भी रक्त है। यह उपमा भी अत्यन्त चमत्कारमयी तथा मौलिक है।

(४८) **सर्वाङ्गीणः स्पर्शः सुतस्य किल तेन मामुपनते।**
आह्लादयस्व तावच्चन्द्रःकरश्चन्द्रकान्तमिव॥ विक्रमो. ५-११

चन्द्रकर सुतस्पर्श का और चन्द्रकान्त राजा का उपमान है। आह्लादन सामान्य धर्म है।

(४९) एक और मौलिक उपमा—

गच्छति पुरः शरीरं धावति पश्चादसंस्तुतं चेतः।

चीनांशुकमिव केतोः प्रतिवातं नीयमानस्य॥ शाकु. १-३०

यहाँ चेतस् की उपमा केतु के चीनांशुक से की गयी है। दोनों में लाघव और चाञ्चल्प समान है। शकुन्तला वात- संहति के समान, शरीर केतु के तुल्य और चित्त चीनांशुक के सदृश है।

(५०) **सुरयुवति- संभवं किल मुनेरपत्यं तदुज्झिताधिगतम्।**
अर्कस्योपरि शिथिलं च्युतमिव नवमालिकाकुसुमम्॥

शाकु. २-८

सुरयुवति मेनका द्वारा प्रसूत और उसके द्वारा परित्यक्त होने पर मुनि को मिली यह शकुन्तला नवमालिका के उस पुष्प के समान है जो वृन्त से टूटकर अर्क की डाल पर गिर गया है। अर्क और नवमालिका के पुष्प वर्ण और आकृति में समान होते हैं किन्तु अर्क पुष्प में मालिका की सुगन्ध और मादकता कहाँ। यहाँ मेनका और नवमालिका में, शकुन्तला और मालिकापुष्प में तथा मुनि और अर्क में साम्य है।

(५१) **कृत्ययोर्भिन्न- देशत्वाद् द्वैधीभवति मे मनः।**
पुरः प्रतिहतं शैले स्रोतः स्रोतोवहो यथा। शाकु. २-१७

दो कर्तव्यपालन है और दोनों का स्थान भिन्न है। इसलिये राजा का मन दुविधा में पड़ा है जैसे किसी बड़ी नदी का प्रवाह सामने शैल के आ जाने से दो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भागों में बँट जाता है और शैल के दोनों पार्श्वों से निकल जाता है। यहाँ द्वैधीभाव सामान्य धर्म है मन उपमेय और स्रोत: उपमान।

(५२) **स्मर एव ताप-हेतुर्निर्वापयिता स एव मे जातः।**
दिवस इवार्धश्यामस्तपात्यये जीवलोकस्य। शाकु. ३-९

प्रथम अवस्था में काम ताप का कारण रहा किन्तु उत्तरावस्था में प्रिया का भी अनुराग जानने से काम ही शान्ति दायक बन गया जैसे प्रावृट् के प्रारम्भ में दिन पूर्वार्ध में तो तपता है किन्तु अपराह्ण में प्राय: बादल छा जाने से वही दिन ताप का शामक बन जाता है। यहाँ काम और दिवस में उपमेयोपमान भाव है। तापकरत्व और ताप निर्वापयितृत्व सामान्य धर्म है। कैसी यथार्थानुभूति- परक उपमा है।

(५३) **प्रलोभ्य-वस्तु-प्रणय-प्रसारितः विभाति जाल-ग्रथिताङ्गुलिः करः।**
अलक्ष्यपत्रान्तर मिद्धरागया नवोषसा भिन्नमिवैक पङ्कजम्॥

शाकु. ७-१६

भरत के रक्तिमकर की, जो उसने क्रीडनक माँगते हुए फैलाया था उसमें हथेली तथा उँगलियों को जाल ग्रथित (जिसमें रेखायें अलग अलग स्पष्ट नहीं थीं) देखकर कवि ने उसकी उपमा नवोदित उषा से थोड़े थोड़े विकसित (जिसके दल अलग अलग नहीं हो पाये) एक रक्तिम कमल से दी है।

कालिदास की उपमाओं में ये कुछ निदर्शन मात्र है। इन्हें देख कर स्पष्ट पता चलेगा कि कालिदास की उपमायें जीवन के अत्यन्त निकट, सुपरिचित एवं कथ्य को और स्पष्ट तथा प्रभावशाली बनाने के लिये प्रयुक्त हुयी हैं। उन्होंने व्याकरण, ज्योतिष और मीमांसा शास्त्र से सम्बन्धित तथ्यों का बड़े सहज ढंग से उपमान के रूप में प्रयोग किया है। प्रकृति तो अनुरक्त प्रेयसी के समान उनके चतुर्दिक् घूमती है। वे उसकी विविध मुद्राओं और भंगिमाओं का उपमान के रूप में उपयोग करते हैं। उनकी उपमायें प्राय: पूर्णोपमायें हैं और कथ्य के सम्पूर्ण परिवेश तथा वैशिष्ट्यों के लिये पूर्णतया उपयुक्त प्रतिमान प्रस्तुत करती हैं। उपमानों की ऐसी विविधता, सहजता और जीवन से निकटता अन्य किसी कवि में दृष्टिगोचर नहीं होती।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थान्तरन्यास और सुभाषित

मेघदूत

(१) **मेघालोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथावृत्ति चेतः । १-३**

मेघों के छाने पर सुखी व्यक्ति का भी मन चंचल हो उठता है ।

(२) **कामार्ता हि प्रकृति-कृपणाश्चेतनाचेतनेषु । १-५**

कामातुर लोग चेतन-अचेतन (उचित अनुचित) के विषय में विचार नहीं कर पाते ।

(३) **याच्ञा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्ध-कामा । १-६**

श्रेष्ठ गुणवान् से की हुयी याचना व्यर्थ भी चली जाय तो भी वह नीच व्यक्ति से माँगी हुई वस्तु मिल जाने की अपेक्षा अच्छी होती है ।

(४) **आशावन्धः कुसुम- सदृशं प्रायशो ह्यङ्गनानां**
सद्यःपाति प्रणयि हृदयं विप्रयोगे रुणद्धि । १-१०

स्त्रियों का हृदय पुष्प के समान कोमल होता है । प्रेमी के वियुक्त हो जाने पर केवल पुनर्मिलन की आशा उसे टूटने से रोके रहती है ।

(५) **न क्षुद्रोऽपि प्रथम-सुकृतापेक्षया संश्रयाय**
प्राप्ते मित्रे भवति विमुखः किं पुनर्यस्तथोच्चैः ॥ १-१६

क्षुद्र व्यक्ति तक सहारे की आशा से आये हुए मित्र की ओर से, उसके पूर्वकृत उपकारों का ध्यान रखते हुये, मुँह नहीं फेरता । फिर उच्च चरित्र के व्यक्ति का तो कहना ही क्या ?

(६) **रिक्तः सर्वोभवति हि लघुः पूर्णता गौरवाय ॥ १-२०**

कोई भी पात्र या वस्तु भीतर से खाली होने पर हलकी रहती है किन्तु भरी होने से भारी हो जाती है । यही बात व्यक्तियों के विषय में भी सत्य है ।

(७) **स्त्रीणामाद्यं प्रणयवचनं विभ्रमो हि प्रियेषु ॥ १-२८**

स्त्रियाँ प्रेमियों के प्रति प्रणय की प्रथम अभिव्यक्ति विलास (चाञ्चल्ययुक्त) चेष्टाओं के द्वारा करती हैं ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(८) **मन्दायन्ते न खलु सुहृदामभ्युपेतार्थ-कृत्याः । १-३८**

मित्रों को उनका काम कर देने का वचन देने वाले काम में ढील नहीं देते ।

(९) **आपन्नार्ति-प्रशमनफलाः सम्पदो ह्युत्तमानाम् । १-५३**

उत्तम पुरुषों की सम्पत्तियाँ पीडितों के कष्ट निवारण के लिये ही होती हैं ।

(१०) **के वा न स्युः परिभवपदं निष्फलारम्भ-यत्नाः । १-५४**

निरर्थक कामों में उलझने वाले अपमान के ही भागी बनते हैं ।

(११) **प्रायः सर्वोभवति करुणा-वृत्तिरार्द्रान्तरात्मा ॥ २-३०**

कोमल मन के व्यक्ति प्रायः करुणामय होते हैं ।

(१२) **कान्तोदन्तः सुहृदुपनतः संगमात् किंचिदूनः । २-३७**

प्रियजन के मित्र के द्वारा लाया गया प्रिय का समाचार प्रिय के मिलन से कुछ ही कम होता है ।

(१३) **कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा,**
नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमि क्रमेण ॥ २-४६

किसी को न तो सदा अत्यन्त सुख ही मिलता रहता है और न अत्यन्त दुःख ही । सुख और दुः खकी अवस्था तो पहियों की नेमि के समान नीचे और ऊपर जाती आती रहती है ।

(१४) **इष्टे वस्तुन्युपचितरसाः प्रेमराशी भवन्ति । २-४९**

विरहकाल में प्रियजन के प्रति स्नेह बढ़ बढ़ कर प्रेमराशि का रूप ले लेता है ।

(१५) **प्रत्युक्तं हि प्रणयिषु सतामीप्सितार्थक्रियैव ॥ २-५१**

सज्जन अपने स्नेहियों की प्रार्थना का उत्तर शब्दों से नहीं, अपितु उनके इष्ट कार्य का सम्पादन करके ही देते हैं ।

कुमार संभव

(१) **एको हि दोषो गुण-सन्निपाते निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः । १-३**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुणों के समूह में एक दोष इसी प्रकार छिप जाता है जैसे चन्द्रमा की किरणों में उसका काला चिह्न ।

(२) क्षुद्रेऽ पि नूनं शरणं प्रपन्ने ममत्व मुच्चैः- शिरसां सतीव ॥ १-१२

क्षुद्र पुरुष के भी शरण में आ जाने पर महापुरुष उसके साथ श्रेष्ठ जन के समान अपनत्व प्रदर्शित करते हैं ।

(३) अनन्तपुष्पस्य मधोर्हि चूते द्विरेफमाला सविशेष सङ्गा । १-२७

वसन्त में खिलने वाले पुष्पों की संख्या अनन्त होती है, फिर भी भ्रमर गण आम्र पर विशेष मँडराते हैं ।

(४) ऋते कृशानोर्नहि मन्त्रपूतमर्हन्ति तेजांस्यपराणि हव्यम् । १-५१

अग्नि को छोड़कर अन्य कोई तेजस् मन्त्रपूत हव्य का अधिकारी नहीं होता ।

(५) अभ्यर्थना-भङ्ग-भयेन साधुर्माध्यस्थ्यमिष्टेऽ प्यवलम्बतेऽर्थे । १-५२

प्रार्थना की विफलता के डर से सत्पुरुष अपनी इष्ट वस्तु के विषय में भी तटस्थ भाव ग्रहण कर लेती है ।

(६) विकारहेतौ सति विक्रियन्ते येषां न चेतांसि त एव धीराः ॥ १-५९

धीर पुरुष वे ही होते हैं जिनके मन में विकार के कारण रहने पर भी, विकार उत्पन्न नहीं होता ।

(७) शाम्येत् प्रत्यपकारेण नोपकारेण दुर्जनः । २-४०

दुष्ट पुरुष उपकार करने से नहीं, बदला लेने से शान्त होता है ।

(८) विषवृक्षोऽपि संवर्ध्य स्वयं छेत्तुम साम्प्रतम् ॥ २-५५

विष के वृक्ष को पहले संवर्धित कर फिर अपने हाथों से काटना ठीक नहीं ।

(९) प्रयोजनापेक्षितया प्रभूणां प्रायश्चलं गौरवमाश्रितेषु ॥३-१

स्वामी लोगों के द्वारा अपने आश्रितों का आदर उनकी आवश्यकता के अनुसार घटता बढ़ता रहता है ।

(१०) व्यादिश्यते भूधरतामवेक्ष्य कृष्णेन देहोद्वहनाय शेषः । ३-१३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विष्णु ने जब देख लिया कि शेषनाग में पर्वतों को धारण करने की शक्ति है तो उन्होंने उसे अपनी देह का भारसम्हालने का काम सौंपा।

(११) अप्यप्रसिद्धं यशसे हि पुंसामनन्यसाधरणमेव कर्म। ३-१९

कोई काम, भले ही वह प्रसिद्ध न हो, किन्तु यदि साधारण जनों की शक्ति के बाहर है, तो उसे करने वाले को यश मिलता है।

(१२) समीरणो नोदयिता भवेति व्यादिश्यते केन हुताशनस्य। ३-२१

वायु से कौन कहता है कि वह अग्नि का प्रेरक बने, फिर भी वह उसके जलने में प्रेरक होता है।

(१३) प्रायेण सामग्र्यविधौ गुणानामवाङ्मुखी विश्वसृजः प्रवृत्तिः। ३-२०

विश्वस्त्रष्टा सारे गुणों को एक स्थान पर इकट्ठा कर देने के विरुद्ध है, ऐसा लगता है। वह एक न एक कमी सर्वत्र रहने देता हैं।

(१४) आत्मेश्वराणां नहि जातु विघ्नाः समाधिभेद-प्रभवो भवन्ति।। ३-४०

जिन का नियन्त्रण अपने चित्त पर होता है, उनके ध्यान की एकाग्रता विघ्नों से भंग नहीं होती।

(१५) नहीश्वर-व्याहृतयः कदाचित् पुष्णन्ति लोके विपरीतमर्थम्। ३-६३

महापुरुषों के वचन कभी लोक में विपरीत अर्थ के पोषक नहीं होते। वे जैसा कह देते हैं, वैसा ही होता है।

(१६) स्वजनस्य हि दुःखमग्रतो विवृतद्वारमिवोपजायते। ४-२६

आत्मीयजनों को सामने पाकर दुःख का बाँध टूट जाता है। दुःख बाहर फूट निकलता है।

(१७) दयितास्वनवस्थितं नृणां न खलु प्रेम चलं सुहृज्जने। ४-२८

स्त्रियों के प्रति पुरुषों का प्रेम अस्थिर होता है, किन्तु सुहृदों के प्रति नहीं।

(१८) अनपायिनि संश्रयद्रुमे खलु भग्ने पतनायवल्लरी।। ४-३१

जिस वृक्ष के विषय में यह विश्वास हो कि यह कभी गिरेगा नहीं, वह यदि टूट कर गिर जाय तो उस पर फैली हुई लता तो गिरेगी ही।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१९) प्रमदाः प्रतिवर्त्मगा इति प्रतिपन्नं हि विचेतनैरपि॥ ४-३३

स्त्रियाँ पति की अनुगामिनी होती हैं, इस तथ्य को अचेतन तक जानते हैं।

(२०) अशनेरमृतस्य चोभयो र्वशिनश्चाम्बुधराश्च योनयः। ४-४३

जितेन्द्रिय पुरुष भी मेघ के समान अशनि (वज्रपात तथा कोप) और अमृत (जीवनदायी जल तथा प्रसाद) दोनों के कारण होते हैं।

(२१) रविपीत-जला तपात्यये पुनरोघेन हि युज्यते नदी। ४-४४

नदी का जल ग्रीष्म काल में सूर्य पी अवश्य लेता है किन्तु ग्रीष्म के बाद वह फिर जलौघ से भर जाती है।

(२२) प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता

सुन्दरता की सफलता तब होती है, जब वह प्रेमी को अच्छी लगे।

(२३) पदं सहेत भ्रमरस्य पेलवं शिरीष- पुष्पं न पुनः पतत्रिणः। ५-४

शिरीष का पुष्प भ्रमर के कोमल पावों का भार भले सह ले, पक्षी का बोझ नहीं सह सकता।

(२४) क ईप्सितार्थ-स्थिर-निश्चलं मनः पयश्च निम्नाभिमुखं प्रतीपयेत्। ५-५

इष्ट वस्तु की प्राप्ति के लिये दृढ निश्चय वाले मन तथा नीचे की ओर गिरती जलधारा को भला कौन पलट सकता है।

(२५) न षट्पद-श्रेणिभिरेव पङ्कजं सशैवलासङ्गमपि प्रकाशते। ५-९

कमल केवल भ्रमर समूह के साथ रहने पर ही नहीं, शैवल से रूँधे रहने पर भी शोभित होता है।

(२६) न धर्म-वृद्धेषु वयः समीक्ष्यते। ५-१६

धर्मात्माओं की आयु नहीं देखी जाती। वे किसी भी आयु के हों, पूज्य होते हैं।

(२७) भवन्ति साम्येऽपि निविष्ट-चेतसां वपुर्विशेषेष्वति गौरवाः क्रियाः ५-३१

स्थिर चित्त के साधक अपने समान व्यक्तियों के प्रति भी आदर पूर्वक व्यवहार करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२८) **शरीरमाद्यं खलु धर्म- साधनम्।** ५-३३

धर्माचरण के लिये पहला साधन है स्वस्थशरीर।

(२९) **न रत्नमन्विष्यति मृग्यते हि तत्।**

रत्न किसी को (धारण करने वाले को) नहीं ढूँढता, उसे ही सब ढूँढते हैं।

(३०) **शशाङ्क लेखामपि पश्यतो दिवा सचेतसः कस्य मनो न दूयते।** ५-४८

किस सहृद का मन दिन में चन्द्र- लेखा को देखकर खिन्न नहीं हो जाता।

(३१) **मनोरथानामगतिर्न विद्यते।** ५-६४

इच्छाओं की कोई सीमा नहीं होती। वे कहीं भी पहुँच सकतीहैं।

(३२) **अपेक्ष्यते साधुजनेन वैदिकी श्मशान-शूलस्य न यूपसत्क्रिया।** ५-७३

श्मशान में गड़े वध्यशूल (यूप) का सत्कार और संस्कार (देखने में समान होने पर भी) यज्ञयूप के समान नहीं किया जाता।

(३३) **अलोक-सम्मान्यमचिन्त्य हेतुकं द्विषन्ति मन्दाश्चरितं महात्मनाम्** ५-७५

अल्पज्ञ लोग महापुरुषों को चरितो (कार्यों) की जो, लोक रीति से विलग होते हैं और जिनका कारण उनकी समझ में नहीं आता, निन्दा किया करते हैं।

(३४) **न सन्ति याथार्थ्य-विदः पिनाकिनः।** ५-७७

शिव के वास्तविक स्वरूप को जानने वाला कोई नहीं।

(३५) **न काम-वृत्तिर्वचनीयमीक्षते।** ५-८२

स्वेच्छाचारी व्यक्ति लोकनिन्दा की चिन्ता नहीं करता।

(३६) **न केवलं यो महतोऽ पभाषते श्रृणोति तस्मादपि यः स पापभाक्** ५-८३

केवल महापुरुषों की निन्दा करने वाला ही नहीं, निन्दा सुनने वाला भी पाप का भागी होता है।

(३७) **क्लेशः फलेन हि पुनर्नवतां विधत्ते।** ५-८६

कार्य की सिद्धि हो जाने पर उसके लिये उठाया गया क्लेश विस्मृत हो जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३८) स्त्री-पुमानित्यनास्थैषा वृत्तं हि महितं सताम्॥ ६-१२

महाजनों का चरित पूज्य होता है। उसमें स्त्री या पुरुष का विचार नहीं किया जाता।

(३९) क्रियाणां खलु धर्म्याणां सत्पत्न्यो मूलकारणम्। ६-१३

मनुष्यों की धार्मिक क्रियायें सत्पत्नियों पर आश्रित रहती हैं।

(४०) प्रायः प्रत्ययमाधत्ते स्वगुणेषूत्तमादरः। ६-२०

उत्तम लोगों के द्वारा किया गया सत्कार अपने गुणों के प्रति विश्वास को दृढ़ करता है।

(४१) विक्रियायै न कल्पन्ते सम्बन्धाः सदनुष्ठिताः। ६-२९

सत्पुरुषों द्वारा स्थापित सम्बन्धों में विकृति नहीं आती। वे सदा स्थिर रहते हैं।

(४२) यदध्यासितमर्हद्भिस्तद्धि तीर्थं प्रचक्षते॥ ५६

जिस स्थान पर अर्हन्त (श्रेष्ठ जन) रहते हैं वही तीर्थ कहलाता है।

(४३) विनियोग- प्रसादा हि किङ्कराः प्रभविष्णुषु। ६-६२

विशेष कार्य के लिये भेजना ही सेवकों पर स्वामी की प्रसन्नता का लक्षण होता है।

(४४) अशोच्या हि पितुः कन्या सद्भर्तृ- प्रतिपादिता॥ ६-७९

श्रेष्ठ पति को दी हुई पुत्री पिता के लिये शोचनीय नहीं रहती।

(४५) प्रायेण गृहिणी- नेत्राः कन्यार्थेषु कुटुम्बिनः। ६-८५

गृहस्थलोग कन्याओं के विषय में प्रायः पत्नी के नेत्रों से देखते हैं।

(४६) भवन्त्यव्यभिचारिण्यो भर्तुरिष्टे पतिव्रताः। ६-८६

पतिव्रता स्त्रियाँ पति के इष्ट कार्य में उसका विरोध नहीं करती।

(४७) स्त्रीणां प्रियालोक- फलोहि वेषः। ७-२२

पति के देखने के लिये ही स्त्रियाँ साज सिंगार करती हैं!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(४८) काल- प्रयुक्ता खलु काल विद्भिर्विज्ञापना भर्तृषु सिद्धिमेति। ७-९३

अवसर का महत्त्व समझने वाले लोगों के द्वारा उचित अवसर पर स्वामी से की गयी प्रार्थना अवश्य सिद्ध होती है।

(४९) भर्तृवल्लभतया हि मानसीं मातुरस्यति शुचं वधूजनः। ८-१२

विवाहिता बेटी यदि अपने पति की प्यारी हो तो उसके प्रति माता की चिन्ता दूर हो जाती है।

(५०) येन पूर्वमुदये पुरस्कृता नानु यास्यति कथं तमापदि॥ ८-४४

जिसे उत्कर्ष काल में सम्मानित किया जायगा, वह सम्मान देने वाले के संकट काल में उसका साथ क्यों न देगा?

(५१) लोक एष तिमिरौघवेष्टितोगर्भ- वास इव वर्तते निशि॥ ८-५६

रात्रि के समय अन्धकार में डूबा यह संसार ऐसा लगता है जैसे गर्भ में प्रविष्ट हो गया हो।

(५२) विक्रिया न खलु कालदोषजा निर्मल- प्रकृतिषु स्थिरोदया। ८-६५

निर्मल स्वभाव के लोगों में परिस्थिति वश कोई दोष या विकार आ भी गया तो वह स्थायी रूप से नहीं टिकता।

(५३) नूनमात्मसदृशी प्रकल्पिता वेधसा हि गुणोदोषयोर्गतिः। ८-६६

सचमुच ब्रह्मा ने गुणों और दोषों की चाल उनके अनुरूप ही ऊँचे और नीचे की ओर बनायी है।

रघुवंश—

(१) हेम्नः संलक्ष्यते ह्यग्नौ विशुद्धिः श्यामिकाऽपि वा। १-१०

सुवर्ण की विशुद्धता या मलिनता उसके अग्नि में डालने पर दिखायी देती है।

(२) सहस्रगुणमुत्स्रष्टुमादत्ते हि रसं रविः। १-१८

सूर्य यदि पृथिवी से रस खींचता है तो उसे सहस्र गुना बना कर लौटाने के लिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३) सन्ततिः शुद्ध-वंश्या हि परत्रेह च शर्मणे ॥ १-६९

शुद्ध वंश की सन्तान इस लोक और परलोक दोनों में कल्याण दायिनी होती है।

(४) प्रतिवध्नाति हि श्रेयः पूज्य-पूजा-व्यतिक्रमः। १-७९

पूज्यों की अर्चना या सेवा में आया हुआ व्यवधान अनिष्टकारी होता है।

(५) प्रसाद-चिह्नानिपुरः- फलानि। २-२२

फल मिलना पहले ही प्रारम्भ हो जाना आराध्य की प्रसन्नता का सूचक होता है।

(६) न पादपोन्मूलन-शक्ति रंहः शिलोच्चये मूर्च्छति मारुतस्य। २-३४

वायु के वेग में वृक्षों को उखाड़ने की शक्ति तो होती है किन्तु पर्वत पर उसका वश नहीं चलता।

(७) स्थातुं नियोक्तुर्नहि शक्यमग्रे विनाश्य रक्ष्यं स्वमक्षतेन। २-५६

किसी वस्तु की रक्षा के लिये नियुक्त व्यक्ति स्वयं चोट खाये बिना यदि रक्ष्य को नष्ट हो जाने दे तो वह स्वामी के सम्मुख कैसे खड़ा हो सकता है।

(८) क्रिया हि वस्तूपहिता प्रसीदति। ३-२९

उपयुक्त पात्र के प्रति किया गया प्रयत्न सफल होता है।

(९) पथः श्रुतेर्दर्शयितार ईश्वरा मलीमसामाददते न पद्धतिम् ॥ ३-४६

श्रुति का मार्ग दिखाने वाले महापुरुष स्वयं मलिन आचरण नहीं करते।

(१०) पदं हि सर्वत्र गुणैर्निधीयते। ३-६२

गुण अपने लिये सर्वत्र स्थान बना लेते हैं।

(११) आदानं हि विसर्गाय सतां वारिमुचामिव। ४-८६

सत्पुरुष मेघों के समान देने के लिये ही संग्रहण करते हैं।

(१२) सूर्ये तपत्यावरणाय दृष्टेः कल्पेत लोकस्य कथं तमिस्रा। ५-१३

सूर्य के तपने पर भला रात्रि का अन्धकार लोगों की दृष्टि को कैसे ढँक सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१३) पर्यायपीतस्य सुरै र्हिमांशोः कलाक्षयः श्लाध्यतरो हि वृद्धेः । ५-१६

कृष्णपक्ष में देवताओं के द्वारा एक एक कर अमृत कलाओं को पी लेने के कारण हुई चन्द्रमा की कृशता उसकी वृद्धि से अधिक अच्छी लगती है ।

(१४) उष्णत्वमग्न्यातप-संप्रयोगाच्छैत्यं हि यत्सा प्रकृतिर्जलस्य ॥ ५-५४

जल में अग्नि या आतप के कारण उष्णता भले ही उत्पन्न हो जाय किन्तु उसकी प्रकृति शीतलता ही है ।

(१५) नक्षत्रताराग्रह संकुलापि ज्योतिष्मती चन्द्रमसैव रात्रिः । ६-२२

रात्रि नक्षत्रों, ताराओं और ग्रहों से भरी रहती है किन्तु वह प्रकाशित चन्द्रमा से ही हो पाती है, इन सब से नहीं ।

(१६) भिन्नरुचिर्हि लोकः । ६-३० ।

लोगों की रुचि (पसन्द) अलग अलग होती है ।

(१७) नहि प्रफुल्लं सहकारमेत्य वृक्षान्तरं काङ्क्षति षट्पदाली । ६-६९

फूले या बौराये हुए आम के वृक्ष के पास पहुँचने के बाद भ्रमर अन्य वृक्ष की चाह नहीं करते ।

(१८) रत्नं समागच्छतु काञ्चनेन ६-७९

रत्न और सुवर्ण का संयोग हो जाए तो क्या बात !

(१९) मनो हि जन्मान्तर-संगतिज्ञम् । ७-१५

मन को पूर्व जन्मों की संगति का ज्ञान रहता है । वह पूर्व जन्म के साथियों को पहचान लेता है ।

(२०) प्रतिकार-विधानमायुषः सति शेषे हि फलाय कल्पते ।८-४०

सारे चिकित्सादि उपाय जीवन को बचाने में तभी सफल होते हैं जब आयु का भोगशेष रहता है ।

(२१) विषमप्यमृतं क्वचिद् भवेदमृतं वा विषमीश्वरेच्छया ।८-४६

ईश्वर की इच्छा से कहीं विष भी अमृत बन जाता है और कहीं अमृत भी विष ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२२) वसुमत्या हि नृपाः कलत्रिणः । ८-८३

राजाओं की पत्नी वसुन्धरा होती है ।

(२३) परलोकजुषां स्वकर्मभिर्गतयो भिन्न-पथा हि देहिनाम्। ८-८५

परलोक जाने वाले जनों के मार्ग उनके अपने कर्मों के अनुसार भिन्न भिन्न होते हैं ।

(२४) स्वजनाश्रु किलातिसन्ततं दहति प्रेतमिति प्रचक्षते। ८-८६

लोगों का कहना है कि स्वजनों द्वाराबहाये जाने वाले अधिक आँसू प्रेत को जलाते हैं ।

(२५) मरणं प्रकृतिः शरीरिणां विकृति र्जीवन मुच्यतेबुधैः ।८-८७

मरना देहधारियों का मूल स्वभाव है जीवन ही अस्वाभाविक है ।

(२६) द्रुमसानुमतां किमन्तरं यदि वायौ द्वितयेऽपि ते चलाः । ८-९०

यदि वायु के चलने से वृक्ष के समान पर्वत भी हिलने लगे तो उनमें और वृक्ष में अन्तर ही क्या रह जाएगा ?

(२७) अपथे पदमर्पयन्ति हि श्रुतवन्तोऽपि रजोनिमीलिताः ।९-७४

जैसे मार्ग के जानकार लोग भी धूल के कारण नेत्र बन्द हो जाने से अपथ पर चल पड़ते हैं उसी प्रकार शास्त्रज्ञ जन भी रजोगुण के प्रभाव से नासमझ बन कर कुमार्ग में पाँव रख देते हैं ।

(२८) कृष्यांदहन्नपि खलु क्षितिमिन्धनेद्धो
बीज-प्ररोह-जननीं ज्वलनः करोति ।९-८०

अग्नि कृषि की भूमि को जला देने पर भी उसे बीजों के अङ्कुर जमने के योग्य बना देती है ।

(२९) अव्याक्षेपो भविष्यन्त्याः कार्यसिद्धेर्हि लक्षणम्। १०-६

विघ्नों का न आना इस बात का संकेत होता है कि आगे कार्य सिद्ध होगा ।

(३०) स्वयमेव हि वातोग्नेः सारथ्यं प्रतिपद्यते। १०-४०

वायु बिना किसी की प्रेरणा के स्वयं ही अग्नि का सारथि बन जाता है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३१) **तेजसां हि न वयःसमीक्ष्यते ।११-१**

तेजस्वियों की आयु नहीं देखी जाती ।

(३२) **सद्यएव सुकृतां हि पच्यते कल्पवृक्षफलधर्मि काङ्क्षितम्।** ११-५०

जैसे कल्पवृक्ष से माँगने पर याचित वस्तु तुरन्त मिल जाती है, वैसे ही पुण्यात्मा लोगों की चाही बात तुरन्त पूर्ण हो जाती है ।

(३३) **पावकस्य महिमा स गण्यते कक्षवज्ज्वलति सागरेऽपि यः** ।११-७५

अग्नि की महिमा इस बात में है कि वह जैसे घर की कक्षा में जलता है, वैसे ही अथाह जल वाले सागर की भीतर (वाडवरूप में) भी ।

(३४) **खातमूलमनिलो नदी- रयैः पातयत्यपि मृदुस्तटद्रुमम्** ।।११-७६

नदी जब अपने जल वेग से तट पर खड़े वृक्ष की जड़ की मिट्टी खोद डालती है तो वायु का हलका वेग भी उसे उखाड़ डालता है ।

(३५) **केवलोऽपि सुभगो नवाम्वुदः किं पुनस्त्रिदशचाप-लाञ्छितः** ।११-८०

नवोदित मेघ अकेला भी सुन्दर लगता है किन्तु यदि उसके साथ इन्द्रधनुष भी हो, तब तो कहना ही क्या ।

(३६) **निर्जितेषु तरसा तरस्विनां शत्रुषु प्रणतिरेव कीर्तये** ।।११-८९

शक्ति द्वारा शत्रुओं को जीत लेने के पश्चात् उनके प्रति नम्रव्यवहार तेजस्वियों की कीर्ति को बढ़ाता है ।

(३७) **अत्यारुढो हि नारीणामकालज्ञो मनोभवः** ।१२-३३

काम, समय असमय का विचार किये बिना, नारियों को दबा कर वश में कर लेता है ।

(३८) **अपि स्वदेहात् किमुतेन्द्रियार्थाद् यशोधनानां हि यशोगरीयः** । १४-३५

यशः कामी लोग, अन्य सांसारिक वस्तुओं का तो कहना ही क्या, अपने शरीर से भी अधिक महत्त्व यश को देते है ।

(३९) **अमर्षणः शोणित-काङ्क्षया किं पदास्पृशन्तं दशति द्विजिह्वः** ।१४-४१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्प असहनशील होता है। वह पाँव लगाने वाले को काटता है तो क्या रक्त पीने की इच्छा से ?

(४०) आज्ञा गुरुणां ह्यविचारणीया ॥१४-४६

गुरुजनों की आज्ञा का पालन बिना विचारे करना चाहिए।

(४१) त्राणाभावे हि शापास्त्राः कुर्वन्ति तपसो व्ययम् ॥१५-३

शाप का अस्त्र के समान प्रयोग करने वाले तपस्वी शाप देकर अपने तप का व्यय तभी करते हैं जब आत्मरक्षा का अन्य उपाय शेष नहीं रहता।

(४२) धर्म-संरक्षणायैव प्रवृत्तिर्भुविशाङ्गिण। १५-४

विष्णु का पृथ्वी पर अवतरण धर्म की रक्षा के लिए ही होता है।

(४३) प्रह्वेष्वनिर्वन्ध-रूषो हि सन्तः। १६-८०

सत्पुरुष विनत लोगों के प्रति अपने क्रोध को दबा लेते हैं।

(४४) नहि सिंहो गजास्कन्दी भयाद् गिरि-गुहाशयः१७-५२

हाथियों को चीर कर फेंक देने वाला सिंह किसी के भय से गुहा के भीतर नहीं सोता।

(४५) वृद्धौ नदी-मुखेनैव प्रस्थानं लवणाम्भसः ॥१७-५४

जल के बढ़ जाने पर भी समुद्र इधर उधर से नहीं, नदियों के द्वारा ही आगे बढ़ता है। ऐसे ही महापुरुष उन्नत हो जाने पर भी! अपथ से नहीं चलते।

(४६) समीरण-सहायोऽपि नाम्भः-प्रार्थी दवानलः ।१७-५६

समीरण जैसे सहायक के रहने पर भी दवाग्नि जल पर धावा नहीं बोलती। ऐसे ही शक्ति रहने पर भी बुद्धिमान अशक्य कार्य नहीं प्रारम्भ करते।

(४७) अम्वुगर्भो हि जीमूतश्चातकैरभिनन्द्यते ।१७-६०

चातक उसी मेघ का स्वागत करते हैं जो जल से भरा होता है।

(४८) स्वादुभिस्तु विषयैर्हृत स्ततो दुःखमिन्द्रियगणो निवार्यते। १९-४९

आह्लाद्कारी पदार्थों के प्रति आकृष्ट इन्द्रियों को विषयों की ओर हटाना कठिन होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मालविकाग्निमित्र—

(१) **पुराणमित्येव न साधु सर्वं न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम् ।१-२**

प्राचीन होने से ही कुछ अच्छा नही हो जाता और न नवीन होने से काव्य दूषित माना जा सकता है ।

(२) **सन्तः परीक्ष्यान्यतरद् भजन्ते मूढः पर-प्रत्यय-नेयबुद्धिः ।१-२**

समझदार लोग परीक्षा के द्वारा दो में से किसी एक बात को स्वीकार कर लेते हैं किन्तु मूर्ख बिना ही विचार किए दूसरों के विश्वास के पीछे- पीछे चल देते हैं ।

(३) **नाट्यं भिन्न-रुचेर्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधनम् ।।१-४**

नाटय ऐसी वस्तु है जो भिन्न-भिन्न रुचि वाले लोगों का एक साथ समान मनोरंजन करती है ।

(४) **दृश्यं तमसि न पश्यति दीपेन बिना सचक्षुरपि ।१-९**

नेत्र रहने पर भी कोई बिना दीपक की सहायता के अन्धकार में नहीं देख पाता ।

(५) **अधिगच्छति महिमानं चन्द्रोऽपि निशापरि-गृहीतः ।१-१३**

चन्द्र यद्यपि ज्योत्स्ना वाला है फिर भी उसे महत्त्व तभी प्राप्त हो जाता है जब निशा उसका वरण करती है ।

(६) **यस्यागमः केवल जीविकायै तं ज्ञानं-पण्यं वणिजं वदन्ति ।१-९७**

जो ज्ञान केवल जीविका कमाने के लिए उपार्जित किया जाता है वह विक्रेय ज्ञान व्यापार की वस्तु होता है ।

(७) **प्रभवन्त्योऽपि हि भर्तृषु कारण-कोपाः कुटुम्बिन्यः१-१८**

पत्नियाँ अपने पतियों पर पूरा रोबदाब रखने पर भी बिना कोई कारण बताये क्रोध नहीं करती ।

(८) **प्रायः समानविद्याः परस्पर-यशः-पुरोभागाः ।१-२०**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समान विद्या वाले लोग परस्पर एक दूसरे के यश में दोष निकाला करते हैं।

(९) मन्दोऽप्यमन्दतामेति संसर्गेण विपश्चितः ।२-७

विद्वान् की संगति से मूर्ख भी समझदार बन जाता है।

(१०) पात्र-विशेषे न्यस्तं गुणान्तरं व्रजति शिल्पमाधातुः ।१-६

श्रेष्ठ शिष्य को प्रदान किया गया गुरु का शिल्प और भी गुणवत्ता को प्राप्त हो जाता है।

(११) अनिमित्तोत्कण्ठामपि जनयति मनसो मलयवातः ।३-९

मलय वात बिना कारण भी मन को चञ्चल बना देता है।

(१२) नहि कमलिनीं दृष्ट्वा ग्राहमपेक्षते मतङ्गजः ।३-९

हाथी कमलिनी को देख कर उसे लेने के लिये ह्रद में कूद पड़ता है तब यह नहीं सोच पाता कि जल में मकर और ग्राह जैसे भयंकर जन्तु उसे पकड़ लेंगे।

(१३) परस्पर-प्राप्ति-निराशयोर्वरं शरीर- नाशोऽपि समानुरागयोः ।३-१५

एक दूसरे पर समान प्रेम करने वाले प्रेमियों की परस्पर मिलने की आशा ही नष्ट हो जाए तो उनका मर जाना अच्छा।

(१४) न च प्रियेष्वायत-लोचनानां सम-ग्रवृत्तीनि-विलोचनानि। १४-८

सुन्दरियाँ अपने प्रेमपात्रों को खुल कर नहीं देखा करतीं।

विक्रमोर्वशीय

(१) वसुधाधर- कन्दरा-विसर्पी प्रतिशब्दोऽपि हरे र्हिनस्ति नागान्। १-१७

पर्वतों की गुफाओं में गुँजने वाली सिंह के गर्जन की प्रतिध्वनि से ही हाथी घबरा कर भाग जाते हैं।

(२) अनुत्सेकः खलु विक्रमालंकारः ।१-१७ के नीचे

निरहंकारता पराक्रम की शोभा है।

(३) स्त्रीषुकष्टोऽधिकारः ३-१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्त्रियों की नौकरी कष्ट प्रद होती है ।

(४) **विघ्नित-समागम-सुखो मनसिशयस्त्वनुगुणो भवति।** ३-८

समागम के सुख में विघ्न पड़ जाने पर काम रुकता नहीं, प्रत्युत तीव्र हो जाता है ।

(५) **अन्यसंक्रान्तप्रेमाणो नागरा भार्यायामधिकं दक्षिणाः भवन्ति।** ३-१४

जो नागर किसी अन्य स्त्री से प्रेम करने लगते हैं, उनका व्यवहार अपनी पत्नी के प्रति कुछ अधिक ही सरस हो जाता है ।

(६) **नोच्छ्वसिति तपन-किरणैश्चन्द्रस्येवांशुभि कुमुदम्।** ३-१६

कुमुद चन्द्र की किरणों के समान सूर्य की किरणों से नहीं खिलता । ३-१६

(७) **निर्वाणाय तरुच्छाया तप्तस्य हि विशेषतः।** ३-२१

वृक्ष की छाया यो तो सभी को शान्ति प्रदान करती है किन्तु धूप से तपे हुए को विशेष सुख देती है ।

(८) **सर्वथा नास्ति विधेरलङ्घनीयं नाम।** ४-२ के नीचे

भाग्य का लिखा कोई टाल नहीं सकता ।

(९) **परावृत्त-भागधेयानां दुःखं दुःखानुबन्धि।** ४-१०

उलटे भाग्यवालों का एक दुःख दूसरे से जुड़ा रहा है ।

(१०) **स्वार्थात् सतां गुरुतरा प्रणयि-क्रियैव।** ४-३१

सज्जनों के लिए याचक या प्रेमीजनों का कार्य अपने कार्य से बढ़ कर होता है ।

(११) **विभावितैक-देशेन देयं यदभियुज्यते।**।४-३३

जिसके पास चोरी गये माल का एक अंश भी देख लिया जाता है उसे चोरी का सारा माल देना पड़ता है ।

(१२) **सूर्यः संवर्धयत्यग्निमग्निः सूर्यं स्वतेजसा।** ५-२०

सूर्य अग्नि को संबर्धित करता है तो अग्नि भी अपने तेजस् से सूर्य का पोषण करता है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभिज्ञानशाकुन्तल

(१) **बलवदपि शिक्षितानामात्मन्यप्रत्ययं चेतः१-२**

बहुत अधिक शिक्षित लोगों के भी मन में अपनी विद्या या कला के प्रति आत्म- विश्वास नहीं होता।

(२) **भवितव्यानां द्वाराणि भवन्ति सर्वत्र। १-१५**

होनहार बातों के पूर्ण होने के लिए कही भी साधन मिल जाते हैं।

(३) **किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्।१-१८**

मधुर आकृति वाले जो भी पहन लेते हैं वही आभूषण बन जाता है।

(४) **सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तः करण-प्रवृत्तयः। १-२०**

जहाँ कर्तव्याकर्तव्य के विषय में सन्देह हो, वहाँ सत्पुरुषों के अन्तः करण का झुकाव प्रमाण होता है।

(५) **न प्रभा-तरलं ज्योति रुदेति वसुधातलात्।१-२३**

विजली कभी पृथ्वी तल से निकल कर नहीं चमकती है।

(६) **कामी स्वतां पश्यति। २-२**

कामी जन हर बात को अपने से ही सम्बन्धित देखता है, विशेषतः प्रिया की चेष्टाओं को।

(७) **लभेत वा प्रार्थयिता न वा श्रियं**
श्रियादुरापः कथमीप्सितो भवेत्। ३-११

श्री को माँगने वाला भले ही संपत्ति प्राप्त कर सके या न कर सके किन्तु श्री स्वयं जिसे चाहे वह उसके लिए कोई दुर्लभ कैसे हो सकता है?

(८) **ग्लपयति यथा शशाङ्कं न तथा कुमुद्वतीं दिवसः।३-१४**

समर्थ व्यक्ति अपने प्रत्यक्ष विरोधी को जितना सताता है, उतना उसके अनुचरों को नहीं। दिवस भी चन्द्र को जितना श्री विहीन बनाता है, उतना कुमुदिनी को नहीं।

(९) **इष्ट प्रवास-जनितान्यवलाजनस्य दुःखानि नूनमतिमात्र सुदुःसहानि।४-३**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इष्ट जन का परदेश चले जाना सचमुच अवलाओं के लिए असह्य दुख का कारण होता है ।

(१०) धूमाकुलित-दृष्टेरपि यजमानस्य पावक एवाहुतिः पतिता । ४-३ के नीचे

धुयें के कारण दृष्टि के आकुल रहने पर भी भाग्य से यजमान की आहुति अग्नि पर ही गिरी ।

(११) भाव-स्थिराणि जननान्तर-सौहृदानि । ५-२

पूर्वजन्म के मैत्री सम्बन्ध वर्तमान जन्म में भी भाव या वासना रूप में स्थिर बने रहते हैं, नष्ट नहीं होते ।

(१२) अविश्रमोऽयं लोकतन्त्राधिकारः ।५-३ के नीचे

लोक प्रशासन (लोक रक्षण) के कार्य में विश्राम के लिए अवकाश कहाँ ।

(१३) नातिश्रमापनयनाय न च श्रमाय
राज्यं स्वहस्तधृत दण्डमिवातपत्रतम् । ५-६

राज्य हाथ में पकड़े हुए छाते के समान छाया तो देता है किन्तु हाथ को पीड़ित भी करता है वह न तो पूरी तरह श्रम का निवारण करता है और न श्रम ही देता है ।

(१४) अनुद्धताः सत्पुरूषाः समृद्धिभिःस्वभाव एवैष परोपकारिणाम् । ५-१२

सत्पुरुषों का यह स्वभाव ही होता है कि समृद्धि पाकर भी उद्धत नहीं बनते ।

(१५) तमस्तपति धर्मांशौ कथमाविर्भविष्यति । ५-१४

भला सूर्य के तपते रहने पर अन्धकार कैसे प्रकट हो सकता है ।

(१६) स्त्रीणामशिक्षित-पटुत्वममानुषीषु संदृश्यते किमुत याः प्रतिबोधयः ।
१५-२२

अमानुष योनि तक की स्त्रियाँ बिना किसी के सिखाये चतुर हो जाती हैं फिर शिक्षित स्त्रियों की तो बात ही क्या ?

(१७) उपपन्ना हि दारेषु प्रभुता सर्वतोमुखी ।५-२६

पत्नी पर मनुष्य को सब प्रकार का अधिकार होता है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१८) वशिनां हि परपरिग्रह-संश्लेष-पराङ्मुखी वृत्तिः ।५-२८

मन को वश में रखने वाले सज्जन पर- सम्पत्ति और परस्त्री को हाथ नहीं लगाते ।

(१९) शहजे किल जे विणिन्दए णहु से कम्म विवज्जणीअए।६-१

कर्म भले ही निन्दित हो किन्तु यदि वह जन्म से ही प्राप्त है तो उसे छोड़ना ठीक नहीं ।

(२०) नन्ववसरोपसर्पणीया राजानः ।

स्वामियों के समीप अवसर देख कर जाना उचित होता है ।

(२१) हंसो हि क्षीरमादत्ते तन्मिश्रा वर्जयत्यपः । ६-२८

हंस क्षीर को ग्रहण कर लेता है किन्तु उसमें मिले हुए जल को छोड़ देता है ।

(२२) प्रसाद-सौम्यानि सतां सुहृज्जने पतन्ति चक्षूंषि न दारूणाः शराः । ६-२९

सज्जन अपने मित्र जनों को प्रसन्नता भरी सौम्य दृष्टि से देखते हैं । उन पर प्रहार नहीं करते ।

(२३) उच्छेत्तुं प्रभवति यन्न सप्त-सप्तिस्तन्नैशं तिमिरमपा करोति चन्द्रः ६-३०

रात्रि के जिस अन्धकार को सूर्य नहीं दूर कर पाता उसे चन्द्रमा नष्ट कर देता है ।

(२४) प्रायः स्वं महिमानं क्षोभात् प्रतिपद्यते हि जनः । ६-३१

प्रायः मनुष्य अपनी क्षमता को किसी से क्षुब्ध हो कर ही पहचानता है ।

(२५) किं वाऽभविष्यदरुणस्तमसां विभेत्ता
तं चेत्सहस्र-किरणो धुरि नाकरिष्यत् ।७-४

यदि सूर्य अरुण को आगे न करता तो क्या अरुण अन्धकार का विनाश कर पाता ?

(२६) अङ्काश्रय-प्रणयिन स्तनयान् वहन्तो
धन्यास्तदङ्ग-रजसा मलिनी भवन्ति । ७-१७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे लोग धन्य हैं जो गोदी में चढ़े रहने की इच्छा रखने वाले अपने पुत्रों को गोद में लिए रहते हैं और जिन के वस्त्र उन पुत्रों के शरीर में लगी धूल से मैले हुआ करते हैं।

(२७) स्रजमपि शिरस्यन्धः क्षिप्तां धुनोत्यहिशङ्कया। ७-२४

अन्धा व्यक्ति शिर पर डाली हुई माला को भी सर्प समझकर उतार फेंकता है।

(२८) छाया न मूर्च्छति मलोपहतप्रसादे शुद्धे तु दर्पण-तले सुलभावकाशा। ७-३२

दर्पण के ऊपर यदि मैल जम जाने से उसकी स्वच्छता नष्ट हो जाए तो उस पर प्रतिबिम्ब नहीं पड़ता किन्तु यदि उसका तल शुद्ध हो तो उस पर छाया (प्रतिबिम्व पड़ती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्लोकानुक्रमणिका

(पुस्तक में उद्धृत श्लोकों की वर्ण-क्रमानुसार सूची)

अ

श्लोक	ग्रन्थ सन्दर्	पृष्ठ
अधृष्यश्चाधि	(रघु. १-१६)	१
अवन्तिनाथोऽयम्	(रघु. ६-३२)	३
अस्याः सर्गविधौ	(विक्रमो, १-१०)	४, १४५, १७७, २११, २४५
अधरः किसलय	(शाकु. १-१९)	५, २४०, २४५
अनाघ्रातं पुष्पम्	(शाकु. २-११)	६, २२३
असम्भृतं मण्डनम्	(कुमार. १-३१)	७,१७०, २१४
अगुरु	(ऋतु ५-१२)	१०
अन्योन्यमुत्पीडयद्	(कुमार. १-४०)	२३, १४५
अभ्युन्नताङ्गुष्ठ	(कुमार. १-३३)	२९
अलिभिरञ्जन	(रघु. ९-४१)	४१
अमदयन्	(रघु.९-४२)	४१
अग्रेस्त्रीनख	(विक्रमो. २-७)	४३
अगस्त्य चिह्नात्	(रघु. १६-४४)	५४
अन्तर्हितेशशिनि	(शाकु. ४-३)	८०
अथ सा पुनरेव	(कुमार ४-४)	९५
अलिपङ्क्तिरनेकशः	(कुमार ४-१५)	९८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनेन यूना सह	(रघु. ६-३५)	१११
अपि तुरग	(रघु. ९-६७)	१११, १३७
अग्रेस्त्रीनखपाटलम्	(विक्रमो. २-७)	११९, १५७
अथ प्रजानामधिप:	(रघु. २-१)	१३०
अथात्मन: शब्द	(रघु. १३-१)	१३१
अध्याक्रान्ता वसति	(शाकु. २-१४)	१३७
अङ्गुलीभिरिव	(कुमार. ८-८३)	८६, १४४, २०२
अनन्तरत्न-प्रभवस्य	(कुमार. १-३)	१४६,१८५
अयमरविवरेभ्य:	(शाकु. ७-७)	१५१
अलं विवादेन	(कुमार. ५-८२)	१५२, २३३
अन्यत् कथमिव	(विक्रमो. ३-१६)	१६०
अनेन यूना सह	(रघु. ६-३५)	१६४
अत्रानुगोदं मृगया	(रघु. १३-३५)	१८१
अङ्गेनां प्रतनु	(मेघ.२-४३)	१८१
अरण्य वीजाञ्जलि	(कुमार. ५-१५)	१९४
अद्रे: शृङ्गं हरति	(मेघ. १-१४)	१९८
अग्रे यान्ति रथस्य	(विक्रमो. १-५)	९०, २०१, २५२
अमर-मुनिरिवात्रि	(विक्रमो. ५-२१)	२०५
असुलभा सकलेन्दु	(विक्रमो. २-९)	२०६
अहमेवमतो महीपते:	(रघु. ८-८)	२१२
असंशयं क्षत्र	(शाकु. १-२०)	२१९
अनेन कस्यापि	(शाकु. ७-१९)	२१९
अस्मान् साधु-	(शाकु. ४-१७)	२२०
अर्ध्यमर्घ्यमिति	(रघु. ११-६९)	२२१
अथाजिनाषाढ	(कुमार. ५-३०)	२३५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अशोक निर्भर्त्सित	(कुमार. ३-५३)	२२६
अभ्युन्नता पुरस्तात्	(शाकु. ३-६)	२३५
अभिमुखेमयि	(शाकु. २-१२)	२५०
अनेन सार्धं विहर	(रघु. ६-५७)	२६०
अथैकधेनोरपराध	(रघु. २-४९)	२६३
अथवा कृतवाग्द्वारे	(रघु. १-४)	२७२
अचिराधिष्ठित	(मालवि. १-८)	२७८

आ

आकार-सदृश	(रघु. १-१५)	१
आभरणस्याभरणम्	(विक्रमो. २-३)	८, ११४, २४७
आलोकमार्गं सहसा	(कुमार. ७-४७)	१२
आविल-पयोधर	(विक्रमो. ५- ८)	२४
आवर्तशोभानत	(रघु. १३-९३)	३२
आम्रीमञ्जुलमञ्जरी	(ऋतु, ६-३८)	३७
आताम्रहरित	(शाकु. ६-२)	४४
आलोकयति	(विक्रमो. ४-८)	५०
आपिञ्जराबद्ध	(रघु. १६-५१)	५५
आमेखलम्	(कुमार. १-५)	६५
आनन्दोत्थंनयन	(मेघ.२-२३)	७१
आसां जलस्फालन	(रघु. १६-६२)	७८
आवर्जिता	(कुमार. ३-५४)	१४२, २२७, २६९
आशास्यमन्यत्	(रघु. ५-३४)	१६५
आधिक्षामां विरल	(मेघ. २-२६)	१६९
आविर्भूते शशिनि	(विक्रमो. १-८)	१७५, २०५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आजन्मन:	(शाकु. ५-२५)	१७५
आदाय कर्णकिसलयम्	(मालवि. ३-१६)	१८८
आलक्ष्यदन्त	(शाकु. ७-१७)	२०९
आसीद्वर:	(रघु. ७-२२)	२१५
आनन्दज: शोकजम्	(रघु. १४-३)	२७७
आभाति मणि	(विक्रमो. ५-४)	२८०

इ

इदमसुलभ	(विक्रमो. २-६)	४५
इति चापि विधाय	(कुमार. ४-३७)	१०१,
इदमनन्य	(शाकु. ३-१६)	१३५
यं सर्वशैला: परि	(कुमार. १-२)	१५७
इशी चुम्बियाई	(शाकु. १-३)	१६३
इन्दीवर श्याम	(रघु. ६-६५)	१६४
इदं किलाव्याज	(शाकु. १-१६)	१८२, २४०
इयं ते जननी	(विक्रमो. ५-१२)	२०९
इत: प्रत्यादेशात्	(शाकु. ६-९)	२१७
इदं मसुलभवस्तु	(विक्रमो. २-६)	२२७
इदमुच्छ्वसिता	(रघु. ८-५५)	२७६
इह कश्चन	(रघु. १३-७)	२७७

ई

ईषच्चुम्बितानि	शाकु. १-४)	५१

उ

उन्मीलितं तूलिकया	(कुमार. १-३२)	७, २३२
उद्वेजयत्यङ्गुहिलि	(कुमार. १-१७)	२४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपययौ तनुताम्	(रघु. ९-३८)	४१
उन्मत्तानाम्	(मोल वि. ३-४)	४३
उष्णालु: शिशिरे	(विक्रमो.३-२२)	५६, १७३
उद्ग्रन्थकेशच्युत	(रघु. १६-६७)	७९
उत्तरन्ति विनिकीर्य	(कुमार. ८-३५)	८२
उत्कीर्णा इव वास	(विक्रमो. ३-२)	८७
उदमगूढशशाङ्क	(विक्रमो. ३-६)	८७, २४९
उपोढशब्दान्	(शाकु. ७-१०)	९०
उभे एवक्षमे	(कुमार. २-६०)	१५९
उत्सङ्गे वा मलिन	(मेघ. २-२३)	१७३, २१०
उत्पश्यामि द्रुतम्	(मेघ. १-५९)	१९६
उन्नमितैक भ्रूवद्	(शाकु. ३-१२)	११२, २०३, २३५
उपोढरागेण		२११
उत्पक्ष्मणोर्नयनयो:	(शाकु. ४-१५)	२१७
उदेति पूर्वम्	(शाकु. ७-३०)	२४१
उत्पश्यामि	(मेघ. १-२२)	२६७
उन्नतावनत	(कुमार. ८-६९)	२७१

ए

एतावतानन्वु	(कुमार. १-३७)	२८
एषाकुसुम	(शाकु. ६-२३)	२११
एवंवादिनि	(कुमार. ६-८४)	२१९, ११८
एता: सुतनु मुखम्	(विक्रमो. १-१२)	२७९
एषा मनो मे	(विक्रमो. १-२०)	२८०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क

कण्ठस्य तस्याः	(कुमार. १-४२)	२६, १५१
कदम्बसर्जार्जन	(ऋतु. २-१७)	४७
कर्तुं यच्च	(मेघ, १-११)	४९
कनक कनक-कान्तैः	(ऋतु. ५-१३)	६४
कपोलकण्डः	(कुमार. १-९)	६६
कल्पवृक्ष	(कुमार. ८-६८)	८६
कलमन्यभृतासु	(रघु. ८-५९)	९८
कश्चित् कान्ता	(मेघ. १-१)	१५३
कर्णार्पितो	(कुमार. ७-१७)	२२४
कथन्नुशक्योऽनुनयो	(रघु. २-५४)	२६३
क्व सूर्य प्रभवो	(रघु. १-२)	१६१
क्वा कार्यम्	(विक्रमो. ४-३३)	२२२
क्व नु माम् त्वद्	(कुमार. ४-६)	२७०
कालागुरुप्रचुर	(ऋतु. २-२१)	४८
काशांशुका	(ऋतु. ३-१)	५८
काशैर्मही	(ऋतु. ३-२)	५८
कास्विदवगुण्ठन	(शाकु. ५-१४)	११८
काप्याभिख्या	(रघु. १-६६)	१२४, २७२
कातर्यकेवला	(रघु. १७-४७)	१२६
कामं नृपाः सन्तु	(रघु.६-२२)	१५९
कात्वं शुभे	(रघु. १६-८)	२२४, २३१
कामं प्रिया	(शाकु. २-१)	२३५
कामेकपत्नीव्रत	(कुमार. ३-७)	२६४
कृतं न कर्णार्पित	(शाकु. ६-१८)	१३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृतवत्यसिनाव	(रघु. ८-४८)	१००
कृतवानसिविप्रयम्	(कुमार. ४-७)	१००
कृतं न कर्णार्पित	(शाकु. ६-१८)	१८४
कृत्ययोर्भिन्नदेश	(शाकु. ३-१७)	२८१
कृष्णसारेददत्	(शाकु. १-६)	१६७
किं तावद्	(शाकु. ५-९)	१३५
किं शीतलैः	(शाकु. ३-१८)	१६६, १६८, २४०
किसलयमिवमुग्धम्	(मालवि. ३-१८)	२२१
कुसुम्भरागारूण	(ऋतु. ६-५)	३७
कुसुम-जन्म	(रघु. ९-३६)	४०
कुसुममेव न केवलम्	(रघु. ९-२०)	४०
कुबेर-जुष्टां दिशम्	(कुमार. ३-२५)	३८, १४३
कुतोधर्मक्रिया	(शाकु. ५-१४)	१६०
कुमुदान्येव	(शाकु. ५-२८)	१६०
क्रोधं प्रभो संहर	(कुमार. ३-७२)	९४, १२९

ग

गणानमेरू प्रसवा	(कुमार. १-५५)	६७
गङ्गास्त्रोतः परि	(कुमार. ६-३८)	६८
गत एव न ते	(कुमार. ४-३०)	१०८
गतं भयं भीरू	(विक्रमो. १-६)	१५६
गच्छतिपुरः	(शाकु. १-३०)	२८१
गात्राणि कालीयक	(ऋतु. ४-५)	६२
गाहहन्तां महिषाः	(शाकु. २-६)	१०९, १२९
गाढंनूपुर शब्दमात्र	(विक्रमो.)	१८३, २५०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गृहीत-ताम्बूल	(ऋतु. ५-१०)	६३
गृहिणी सचिव: सखी	(रघु. ८-६७)	९७, २०७
गीतान्तरेषुश्रम	(कुमार. ३-३८)	२३०
ग्रीवाभंगाभिरामम्	(शाकु.)	२५३
गुरूणि वासांसिं	(ऋतु. ६-१३)	३२
गुरूवर्थमर्थीश्रुत	(रघु. ५-२४)	२६४
गोरोचना निकष	(विक्रमो. ५-१९)	२०५

घ

घूर्णमान नयनम्	(कुमार. ८-८०)	२२०

च

चन्द्रंगता पद्म	(कुमार. १-४३)	१९, १२८, १७८
चञ्चन् मनोज्ञ	(ऋतु. ३-३)	५८
चलापाङ्गाम्	(शाकु. १-२१)	१५५, १८२, २१२. २५५
चूतानां चिर	(शाकु. ६-४)	४४
चित्रगतायामस्याम्	(शाकु. २-२)	६
चित्रे निवेश्य	(शाकु. २-१०)	६, १९८, २१८

ज

ज्वलति पवन	(ऋतु. १-२५)	५३
ज्वलति चलितेन्धनो	(शाकु. ६-३१)	१६०
जाने तपसोवीर्यम्	(शाकु. ३-२)	१७२
जातं वशे भुवन	(मेघ. १-६)	१९१
जित: सिंहभया	(कुमार. ६-३९)	६८
जुगोपोत्मानम्	(रघु. १-२१)	१२२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त

तव हृतवत:	(माला. ५-२)	३
तन्वीश्यामा	(मेघ. २-१९)	८
तस्या: शलाकाञ्जन	(कुमार. १-४३)	१५
तस्या: सुजातोत्पल	(कुमार. ७-२०)	२५
तं पयोधर	(रघु. १९-४५)	३२
तवाधरस्पर्धिषु	(रघु. १३-१३)	७६
तव नि:श्वसिता	(रघु. ८-६४)	१०१
तदनु ज्वलनम्	(कुमार. ४-३६)	१०१
तद्गच्छ सिद्ध्यै	(कुमार. ३-१८)	१२७
तत: परमोम्	(कुमार. ६-३५)	१२९
तस्य संवृतमन्त्र	(रघु. १-२०)	१३०
तं शरै: प्रतिजग्राह	(रघु. ४-४०)	१३०
तस्मै हिमाद्रे:	(कुमार. ३-१६)	१३२
तस्या: खुरभ्यास	(रघु. २-२)	१३०, २७३
तव सुचरितमङ्गु	(शाकु. ६-११)	१५०
तत्रागारं धनपति	(मेघ. २-९२)	१५३
तद्वल्गुन: युगपत्	(रघु. ५६८)	१५४
तपति तनुगात्रि	(शाकु. ३-१४)	१६२
तव प्रसादात्	(कुमार. ३-१०)	१६३
तं वीक्ष्य वेपथु	(कुमार. ५-८५)	१६९, २७१
तव कुसुम शरत्वम्	(शाकु.३-३)	१७०
तस्योपान्ते रचित	(मेघ. २-१४)	१८०
तत्क्षणं परिवर्तित	(कुमार. ८-७९)	१८५, २२७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तन्मध्ये च	(मेघ. २-१६)	१९३
तस्या: पातुम्	(मेघ. १-५१)	१९७
तथेति शीर्षामिव	(कुमार. ३-२२)	२०३
तमङ्कमरोप्य	(रघु. ३-२६)	२१०
तयोरपाङ्गप्रवि	(रघु. ७-२३)	२१५
ततः सुनन्दा	(रघु. ६-८०)	२१६
तवास्मिगीतरागेण	(शाकु. १-५)	२३४
तस्यस्तनप्रणमिभि:	(रघु. ९-५५)	२५८
ततः प्रहस्याथ	(रघु. ३-५१)	२६४
तस्यापरेष्वपि	(रघु. ९-५८)	२६५
तत्रहंसधवलोत्तर	(कुमार. ८-२२)	२७१
तदाननं मृत् सुरभि	(रघु. ३-३०)	२७४
तम्प्रति विशदे	(रघु. १७-३५)	२७८
तां वीक्ष्य	(कुमार. ३-५७)	५
तामुत्तीर्यव्रज	(मेघ. १-४७)	१४
तारागण प्रकर	(ऋतु. ३-७)	५९
तां तामवस्थाम्	(रघु. १३-५)	७४
ताम्रोदरेषु	(रघु. ५-७०)	८१
तां प्रत्यभिव्यक्त	(रघु. ६-१२)	१८९
तां जानीथा:	(मेघ. २-२०)	२१३
तां प्राङ्मुखीं तत्र	(कुमार. ७-१३)	२२३
ता राघवं दृष्टिभि:	(रघु. ७-१२)	२२४
तां नारद:	(कुमार. १-५०)	२३१
तामभ्यगच्छद्	(रघु. १४-७०)	२५७
तृणोत्करैरूद्गत	(ऋतु. २-८)	४७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तिष्ठेत् कोपवशात्	(विक्रमो. ४-२)	१२४
तीरस्थली बर्हिभिः	(रघु. १६-६४)	७८
तीव्राभिषङ्ग	(कुमार. ३-७३)	२१७
तुषार संघातशिलाः	(कुमार. १-५६)	१७३
तुज्झण आणे	(शाकु. ३-१३)	११२
तु सि मए चु	(शाकु. ६-३)	११२
ते हिमालय मा	(कुमार. ६-९४)	११६, १२७
तेषां दिक्षु प्रथित	(मेघ. १-२४)	१७४
तेषामाविरभूद्	(कुमार. २-२)	२६८
त्यजतमानमलम्	(रघु. ९-४७)	४१
त्वमसि मया	(शाकु. ६-३)	४४
त्वामामनन्ति	(कुमार. २-१३)	१२४
त्वामालिख्य	(मेघ. २-४२)	१५७
त्वय्यादातुं जलम्	(मेघ. १-४६)	१९६
त्वमर्हतां प्राग्रहरः	(शाकु. ५-१५)	१७९

द

दधति वरकुचाग्रैः	(ऋतु. २-२६)	३१
ददौ रसात्पंकज	(कुमार. ३-३७)	३९
दर्भाङ्कुरेण चरणः	(शाकु. २-१३)	१३०,१९२, २५०
दर्शनपथमायातः	(शाकु. ६-२१)	१९८
दर्पणे च परिभोग	(कुमार. ८-११)	१९८, २६५
ददौ शरः	(कुमार. ३-३७)	२३०
दाहन्तां नैषः	(शाकु. २-६)	५६
दिनेषु गच्छत्सु	(रघु. ३-८)	२३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिने दिने	(रघु.१६-४६)	५४, १४२
दिवाकराद्रक्षति	(कुमार. १-१२)	१४६
दिशि मन्दायते	(रघु. ४-३९)	२५५
दीर्घाक्षंशरदिन्दु	(मालवि. २-३)	९, २९१
द्वयं गतं सम्प्रति	(कुमार. ५-६९)	१२६, २५५
दूरादयश्चक्र	(रघु. १३-१५)	७६

ध

धृतिरस्तमिता	(रघु. ८-६६)	१०२
ध्रुवमस्मिशठः	(रघु. ८-४९)	१००
धूपोष्मणा	(कुमार. ७-१४)	१०
धूमज्योतिः सलिल	(मेघ. १-५)	११४, १६९

न

नव प्रबलोद्गम	(ऋतु. ४-१)	६१
न चन्दनं चन्द्र	(ऋतु. ५-३	६३
नवजलधराः	(विक्रमो. ४-१)	१२१
न किलानुययुः	(रघु. १-२७)	१३१
नहि सुलभ	(विक्रमो. ५-१७)	१५४
नव कुसुम शरत्वम्	(शाकु. ३-३)	१६७
ना इव प्रवाह	(विक्रमो. ३-८)	१७१
नव जलधरः	(विक्रमो. ४-७)	२३९
न तथा नन्दयसि	विक्रमो. २-१४)	२५३
नागेन्द्र हस्ताः	(कुमार. १-३६)	२८, १४२, १५६
नाभिप्ररूढाम्बु	(रघु. ८-४)	१५२
नाभिप्ररूढाम्बु	(रघु. १३-६)	१९३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निवापबीजाञ्जलि	(कुमार. ५-१५)	१६
नितान्त लाक्षा	(ऋतु. १-५)	२८
नितान्त नीलोत्पल	(ऋतु. २-२)	४६
निपात यन्त्र:	(ऋतु. २-७)	४७
निरूद्ध वातायन	(ऋतु. ५-२)	६३
निषिञ्चन्माधवीम्	(विक्रमो. २-४)	१३८, १७४
नितान्त कठिनांरूजम्	(विक्रमो. २-११)	१७७
निवार्यतामालि	(कुमार. ५-४३)	२००
निशासुभास्वत्	(रघु. १६-१२)	१८७
नीवी बन्धोच्छ्वसित	(मेघ. २-५)	१९०
नेत्रेषु लोल:	(ऋतु. ६-१२)	३७
नोर्ध्वनिरीक्षणमति	(कुमार. ८-५६)	८५
न्यषिञ्चन्	(विक्रमो. २-४)	४४
न्यस्ताक्षरा:	(कुमार. १-७)	६५
नृत्यप्रयोग	(ऋतु. ३-१३)	६०

प

पत्यु: शिरश्चन्द्र	(कुमार. ७-१९)	२९
पर्याप्त पुष्पस्तवक	(कुमार. ३-३८)	३९
पटुतरदवदाह	(ऋतु. १-२२)	५२
पत्रछायासु हंसा:	(मालवि. २-१२)	५६
पश्यावरोध:	(रघु. १६-५६)	७८
परस्पराक्षि सादृश्यम्	(रघु. १-४०)	७३
परलोक विधौ च	(कुमार.४-३७)	१०२
पश्य पश्चिम दिक्	(कुमार. ८-३४)	८२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पशुपतिरपि	(कुमार. ६-९५)	१४९
परिग्रह बहुत्वेऽपि	(शाकु. ३-१७)	१५९
परिजन वनिता	(विक्रमो. ३-२)	२०६, २८०
पत्यु:शिरश्चन्द्र	(कुमार. ७-१९)	२२८, २३७
पाकं व्रजन्ति	(ऋतु. ४-१०)	६१
पाण्ड्योयमंसा	(रघु. ६-६०)	१३९
पातुं न प्रथमं	(शाकु. ४-९)	२५१
पात्र विशेषे	(मालवि. १-६)	२७८
पुनर्ग्रहीतुम्	(कुमार. ५-१३)	१६
पुष्पं प्रवालो	(कुमार. १-४४)	१९, १४५, १७६
पुष्पासवः मोदित	(ऋतु. ४-११)	६२
पुरस्कृता वर्त्मनि	(रघु. २-२०)	१३७, २७३
पुत्रस्य तेरण	(शाकु. ७-२६)	१९१
पुरं निषादाधिपतेः	(रघु. १३-५९)	२६३
प्रवात नीलोत्पल	(कुमार. १-४६)	१६
प्रसाधिकालम्बित	(कुमार. ७-५८)	३०, २१४
प्रफुल्ल चूताङ्कुर	(ऋतु. ६-१)	३६
प्रभिन्नवैदूर्य	(ऋतु. २-५)	४६
प्रवृद्धतापोदिवस	(रघु. १६-४५)	५४
प्रभूतशालिप्रसवैः	(ऋतु. ४-८)	६१
प्रचुरगुडविकारः	(ऋतु. ५-१६)	६४
प्रवृत्तमात्रेण	(रघु. १३-१४)	७६
प्रभामहत्या	(कुमार. १-२८)	१४०
प्रजानां विनयाधानात्	(रघु. १-२४)	१५०
प्रभालोपिनायम्	(विक्रमो. ४-६१)	१७८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रजा:प्रजा	(शाकु. ५-५)	२०१
प्रलोभ्यवस्तु	(शाकु. ७-१६)	२८२
प्राणानामलिनेन	(शाकु.७-१२)	१२०
प्राप्यावन्तीन्	(मेघ. १-३१)	१९१
प्रियङ्गुकालीयक	(ऋतु. ६-१२)	२३

ब

बहुतर इव	(ऋतु. १-२६)	५३
बहुगुण रमणीय:	(ऋतु. ४-१८)	६२
बद्धकोशमपि	(कुमार. ३-३९)	८३
बालेन्दु वक्राणि	(कुमार. ३-२९)	३८, १४३, १७५, २५८
बिबुधैरसि यस्य	(कुमार. ४-१९)	१०१

भ

भवति विरल	(रघु. ५-७४)	८१
भल्लापर्जितै:	(रघु. ४-६३)	१३९
भवन्ति नम्रास्तरव:	(शाकु. ५-१२)	१४६
भावभक्तिरथवा	(कुमार. ८-७७)	३५
भानु: सकृद्	(शाकु. ५-४)	१२३
भिन्नाञ्जन प्रचय	(ऋतु. ३-५)	५९
भुजे भुजगेन्द्र	(रघु. २-७४)	३
भ्रातुर्मित्रम्	(मेघ. २-३६)	२५७

म

महोक्षतां वत्सतर:	(रघु. ३-३२)	२, २३१
मध्येन सा	(कुमार. १-३९)	२७
मधुसुरभिमुख	(ऋतु. ६-३३)	३७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मधु द्विरेफः	(कुमार. ३-३६)	३९, २११, २३०
मन्दं मन्दं नुदति	(मेघ. १-९)	४९
मनोज्ञ गन्धं सह	(रघु. १६-५५)	५५
मन्दानिलाकुल	(ऋतु. ३-६)	५९
मनोरमैः चन्दन	(ऋतु. ४-२)	६१
मनोज्ञकूपसिक	(ऋतु. ५-८)	६१
मनीषिणः सन्ति	(कुमार. ५-४)	११०, १५४, १६०
मरणं प्रकृतिः	(रघु. ८-८७)	१०६
महीभृतः पुत्रवतः	(कुमार. १-२७)	१२८
मधुकर मदिरा	(विक्रमो. ४-४२)	१५०, १६३
मदकलयुवती	(विक्रमो. ४-४६)	२०७
मन्दाकिनी सैकत	(कुमार. १-२९)	२२८
मत्तानां कुसुमं	(विक्रमो. १-३)	२३८
मङ्गलालंकृतः	(मालवि. १-१४)	२७८
मानुषीषु कथम्	(शाकु. १-२३)	६१६२, १९३, २३१, २४६
मालाकदम्बनव	(ऋतु. २-२०)	४८
मातङ्गनक्रैः	(रघु. १३-११)	७५
मामाकाश प्रणिहित	(मेघ. २-४३)	१७२, २२२
मिथुनं परिकल्पितं	(रघु. ८-६१)	९९
मृदुपवन विभिन्नः	(विक्रमो. ४-१०)	१२, १२५
मृगाः प्रचण्डातप	(ऋतु. १-११)	५१
मृग्यश्च दर्भाङ्कुर	(रघु. १३-२५)	१५५
मुखार्पणेषु	(रघु. १३-९)	७५
मुक्तेषुरश्मिषु	(शाकु. १-९)	९१
मुनिसुता प्रणय	(शाकु. ६-८)	१८१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुहुरङ्गुलि	(शाकु. ३-२२)	२५६
मेदश्छेद कृशोदरम्	(शाकु. २-५)	१४८, २३८

य

यदृच्छयात्वम्	(विक्रमो. १-११)	५,१४८,१५६
यथा प्रसिद्धैः	(कुमार. ५-९)	८
यन्त्र प्रवाहैः	(रघु. १६-४९)	५४
यः पूरयन्	(कुमार. १-८)	६५
यज्ञाङ्गयोनित्वम्	(कुमार. १-१७)	६७
यदालोके सूक्ष्मम्	(शाकु. १-९)	९१, १७०, २५२
यश्चाप्सरो	(कुमार. १-४)	१२७
यमोऽपि विलिखन्	(कुमार. २-२३)	१६२
यत्रांशुकाक्षेप	(कुमार. १-१४)	१६५
यथा सुतं वेदविदाम्	(कुमार. ५-६४)	२३२
ययातेरिवशर्मिष्ठा	(शाकु. ४-७)	२४१
यात्येकतोस्त	(शाकु. ४-२)	८०
यामिनी दिवस	(कुमार. ८-५५)	८४
यास्यत्यद्य शकु.	(शाकु. ४-६)	२१८
यावत्पुनरियम्	(विक्रमो. १-१४)	२४५
युवा युगव्यापत	(रघु. ३-३४)	२
यौवनान्तं वयः	(कुमार. ६-४४)	६९

र

रक्ताशोकरूचा	(माह. ३-५)	४३
रवेर्मयूखैरभि	(ऋतु. १-१३)	५१
रक्तपीतकपिशः	(कुमार. ८-४५)	८३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रविमाविशते सताम्	(विक्रमो. ३-७)	८८,१९२
रचितं रति पण्डित	(कुमार. ४-८८)	१०१
रजोभिः स्यन्दनो	(रघु.४.२९)	१५३
रम्यान्तरः कमलिनी	(शाकु.४.१)	१५८१
रक्त कदम्बः	(विक्रमो.४.६०)	१८०
रम्यास्तपोधनानाम्	(शाकु.१.१२)	१८८,२४२
रम्याणि वीक्ष्य	(शाकु.५-२)	१८८
रजोभिस्तुरगो	(रघु.४.२९)	२०२
राममन्मथ शरेण	(रघु.११.२०)	९३,१२३,१३७,२२२
रामदेशादनु	(रघु.१५-९)	२७८
रुद्धनिर्गमन मा	(कुमार.८.७)	८५
रूपं तदोजस्वि	(रघु.५-३७)	१९५
रूद्धापाङ्गप्रसर	(मेघ.२.३२)	१८७

ल

लग्नद्विरेफम्	(कुमार.७.१६)	१०
लज्जातिरश्चाम्	(कुमार.१.४८)	११,१४७,१५५
लग्नंद्विरेफाञ्जन	(कुमार.३.३०)	१४,१६७
लग्नद्विरेफम्	(कुमार.७.१७)	१५५
लब्ध प्रतिष्ठाः	(कुमार.२.२७)	२६८

व

वक्रेतराग्रे	(रघु.१६.६६)	१०
वर्णोदकैः काञ्चन	(रघु.१६.७०)	७८
द्वयं गतम् सम्प्रति	(कुमार.५.५१)	१२२
वपुर्विरूपाक्षम्	(कुमार.५.७२)	१२६,१८४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वनेचराणां वनिता	(कुमार.१.१०)	२०१
वामं सन्धिस्तमित	(मालवि.२.६)	९
वासश्चित्रंमधु	(मेघ.२.११)	७२
वागर्थाविव	(रघु.१.१)	११९
वाचं न मिश्रयति	(शाकु.१.२७)	१३५
वाष्पायते	(विक्रमो.५.९)	२०९
विलोचनं दक्षिणम्	(कुमार.७.५८)	१६,७८
विमुच्य हारम्	(कुमार.५.८)	२५,२०४
विपुलं नितम्ब	(मालवि.३.७)	३३
विपाण्डुरं कीटरजः	(ऋतु.२.१३)	४८
विद्युल्लेखा	(विक्रमो.४.४)	५०,२०६
विवृण्वती शैलसुता	(कुमार.३.६८)	१२८,२१०
विद्युद्वन्तं ललित	(मेघ.२.१)	१७०
विक्षिप्तिशैषैः सुर	(शाकु.७.५)	१६६
विललाप सवाष्प	(रघु.८.४३)	१४८
विवृण्वता दोषम्	(कुमार.५.८१)	१८६
विदितं वो यषा	(कुमार.६.२४)	१८६
विसृष्टरागादधरात्	(कुमार.५.११)	१८६
विसृत्रसुन्दरि	(मालवि.४.१३)	२३७
विधेःसायन्तनस्य	(रघु.१.५६)	२३७
वेहानिलाय	(रघु.१३.९२)	७५
वेदान्तेषु यमाहु	(क्रिमो.१.१)	२३३
वोढाकुरवक	(मालवि.३.९)	४६
वैदेहिपश्य	(रघु.१३.४)	७४,१०२
व्यूढोरस्कः	(रघु.१.१३)	१,२२५,२३१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यूहावुभौतावि.	(रघु.७.५४)	२७५
वृत्ताच्लथम्	(रघु.५.६९)	८९
वृत्तानुपूर्वेन च	(कुमार.१.३५)	२८.४४

स

सर्वातिरिक्तसारेण	(रघु.१.९४)	१
सर्वोपमाद्रन्य	(कुमार.१.४९)	५
सरसिजमनुविद्धम्	(शाक.१.१८)	६,२१४,२४६
सपत्रलेखेषु	(ऋतु.६.७)	२२
शरकाण्डपाण्डु	(मालवि.३.६)	४५
सशीकरांभोधर	(ऋतु.२.१)	४६
सदामनोज्ञम्	(ऋतु.२.६)	४६
सलिलसुभगावाहः	(ऋतु.३.१)	५०
सफेन लालावृत	(ऋतु.१.२१)	५३
सपल्वलोत्तीर्ण	(रघु.२.१५)	५७,७३,८३
सम्पन्नशील	(ऋतु.३.१६)	६०
सकृत्तिवासः	(कुमार.१.५४)	६७
संतानतरूच्छाया	(कुमार.६.४६)	६९
सत्रऋषीश्वरमा	(रघु.१.४३)	७२
सकीचकैः मारूत	(रघु.२.१२)	७३
ससत्त्वमादाय	(रघु.१३.१०)	७५
स तथेति	(कुमार.६.३)	११५
स विंजितम्	(रघु.४.४६)	११६
स हत्त्वा बालिनम्	(रघु.८.७)	१४१
संचारपूतानि	(रघु.२.१५)	१५८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वत्र नोवार्तम्	(रघु.५.१३)	१६३
सममेवसमाक्रान्तम्	(रघु.४.४)	१९०
स नैषधस्यार्थप:	(रघु.६.६७)	२३२,२७४
सतीमपिज्ञाति	(शाकु.५.१६)	२४३
स भूधराणामधिपेन	(कुमार.१.२२)	२६८
सपदि मुकुलिताक्षीम्	(कुमार.४.७६)	२७०
सर्वाङ्गीणाः	(विक्रमो.५.११)	२८१
सा राजहंससैरिव	(कुमार.१.३४)	२९
सा तीर्णसोपान	(रघु.१६.५६)	७७
शापान्तो मे	(मेघ.२.४०)	१११
साक्षात् प्रियामुप	(शाकु.६.१६)	१६१
सामन्तमौलिमणि	(विक्रमो.३.१९)	१७९
सा मङ्गलस्नान	(कुमार.७.११)	२७१
सितेषु हर्म्येषु	(ऋतु.१.९)	१९
सितांशुकामङ्गल	(विक्रमो.३.१२)	१४९,१८३
सिंह केशरछटा	(कुमार.८.४६)	५४
सीकव्यतिकरम्	(ऋतु.१.३)	३४
सुगन्ध निःश्वास	(ऋतु.५.१)	३४
सुगन्धि निःश्वास	(ऋतु.५.१०)	६३
सुभगसलिला	(शाकु.१.३)	२४९
सुतौलक्ष्मण	(रघु.११.७१)	२७६
सुरयुवति सम्भवम्	(शाकु.२.९६)	२८१
सुश्रुषस्व गुरुन्	(शाकु.४.६)	२४०
सूर्याचन्द्रमसौ	(विक्रमो.४.३८)	२०७,२४१
सेवमानौसुखं	(रघु.१.३९)	७२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सैषास्थली यत्र	(रघु.१३.२३)	२९,१४३
सौदामिनी स्फुरति	(ऋतु.३.१२)	६०
स्रस्तां नितम्बात्	(कुमार.३.५५)	१२५
स्रगियं यदि	(रघु.८.४६)	१४७
स्वरेण तस्याम्	(कुमार.१.४५)	२६,१४१
स्तनेषु हाराः	(ऋतु.६.७)	३२
स्नानाद्रर्मुक्तेषु	(रघु.१६.५०)	२२८,२६१
स्त्रीणांविहाय	(ऋतु.३.२५)	६०
स्वायम्भुवान्मरीचेः	(शाकु.७.८)	६८
स्थानमानिकम्	(कुमार.८-३३)	८२
स्मितभिन्नमोह	(शाकु.७-२२)	८८
स्वशरीरशरीरिणो	(रघु.९-८९)	१०६
स्थिताः क्षणम्	(कुमार.५-२४)	११८,१८७,२०४
स्त्रीणांभशिक्षित	(शाकु.५-२२)	१४८
स्फुरतः विच्छुरितम्	(विक्रमो.४-७२)	१६२
स्थितः स्थिताम्	(रघु.२-६)	१९५
स्वसुखनिरभिलाषः	(शाकु.५-१२)	२२५
स्मयमानमायता	(माहं.१-९०)	२४५
स्मरएवताप	(शाकु.३-९)	२८२

श

शक्यमङ्गुलिभिः	(कुमार.८-७२)	८७
शशिना सहयाति	(कुमार.४-३३)	९६
शमयति गजान	(विक्रमो.५-१८)	१८३
शशिनमुपगतेयम्	(रघु.६-८५)	२०२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शरीरमात्रेण	(रघु.५-१५)	२६२
शान्तमिदमाश्रम	(शाकु.१-१४)	१५१
शापोऽप्यदृष्ट	(रघु.९-८०)	१६८
शापान्तो मे	(मेघ.२-४७)	२२९
शापादसिप्रति	(शाकु.७-३२)	२३३
शिरो रूहैः श्रोणि	(ऋतु.२-९८)	११
शिरसि बकुल	(ऋतु.२-२५)	१३
शिरीष पुष्पाधिक	(कुमार.६-४०)	२६
शिखरासक्त	(कुमार. १-४०)	६८
शुश्रूषस्व गुरुन्	(शाकु.४-१४)	११३
शुद्धान्तदुर्लभभिदम्	(शाकु.१-१६)	१६१,१९४
शैलानामवरोहति	(शाकु.७-८)	९०
श्यामाष्वङ्गम्	(मेघ.२-४१)	२०,१८०
स्मयमानमायताक्ष्या	(मालवि.३-१०)	२१

ह

हस्तेलीलाकमलम्	(मेघ.२-२)	७०,१९५
हरितारूण चारू	(कुमार.४-१४)	९८
हरस्तु किञ्चित्	(कुमार.३-६७)	२१२,२१५,२५४
हंस प्रयच्छ मे	(विक्रम.४-३३)	११५-२२८
हिभव्यपायाद्	(कुमार.३-३३)	२१६,२६०
हुत हुताशन दीप्ति	(रघु.९-४०)	४१
हुताग्नि कल्पैः	(ऋतु.१-१६)	५२
हृदये वससि	(कुमार.४-९)	१०१,२२९
हृष्टापिसाह्री	(रघु.७-६९)	२७५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्र

श्रुतिसुखभ्रमर	(रघु.९-३५)	४०
श्रेणीबन्धाद्	(रघु.१-४७)	७२

त्र

त्रिदिवोत्सुकयः	(कुमार.८-६०)	९८
त्रिभागशेषासु	(कुमार.५-५७)	२१३

113485

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

GURUKUL KANGRI LIBRARY		
	Signature	Date
Access on		
Class	RE	27.11.99
Cat on	RE	27.11.99
Tag etc	नारेन्द्र	5.11.99
Filing		29.11.99
E A.R		1/12/99
Any other	RE	27.11.99
Checked		29.11.99

Recommended By----

Compiled
1999-2000

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

20 जुलाई 1914 को उत्तर प्रदेश के शाहजहाँपुर जिले में जनमे डॉ॰ प्रभुदयालु अग्निहोत्री की गणना देश के वरिष्ठतम और मूर्धन्य विद्वानों में की जाती है। वैदिक वाङ्मय, संस्कृतसाहित्य, नव्यव्याकरण, भाषाशास्त्र, भारतीय दर्शन, प्राचीन इतिहास, संस्कृति और पुरातत्त्व आदि विषयों पर उनका असाधारण अधिकार है। पातञ्जल महाभाष्य पर आधारित उनकी कृति 'पतञ्जलि कालीन भारतवर्ष' अपने विषय की एकमात्र विशद् और गम्भीर रचना है। इसी प्रकार प्राचीन और आधुनिक मनोविज्ञान के तुलनात्मक पक्ष पर उनका 'अभिनव मनोविज्ञानम्' जिसमें उन्होंने अर्वाचीन मनोविज्ञान पांच सौ के लगभग नवीन शब्द गढ़े हैं। संस्कृत भाषा में इस विषय की एकमात्र कृति है। उनकी पुस्तक 'संस्कृत साहित्य चिन्तन' उत्तर प्रदेश शासन द्वारा रामचन्द्र शुक्ल पुरस्कार से सम्मानित हुई है। कुमारसम्भव, विक्रमोर्वशीय, ऋतुसंहार और मृच्छकटिक के व्यापक भूमिका और टिप्पणियों सहित अनुवाद काफी लोकप्रिय हुए हैं।

डॉ॰ अग्निहोत्री का स्नात्तकोत्तर अध्यापन और शोध-निर्देशन का पैंतीस वर्षों का अनुभव है। उनके निर्देशन में 40 से अधिक शोधार्थियों ने पी-एच.डी. और डी. लिट्. के लिए सफलतापूर्वक कार्य किया है। राष्ट्रीय महत्त्व की कई संस्थाओं ने उन्हें मानद की उपाधि प्रदान की है जिसमें अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा प्रदत्त 'साहित्य वाचस्पति' भी एक है। सन् 82 में उ॰ प्र॰ संस्कृत अकादमी ने इन्हें तत्कालीन सर्वोच्च विशिष्ट सम्मान प्रदान किया। सन् 88 में उन्हें राष्ट्रपति द्वारा गम्भीर शास्त्रीय वैदुष्य के लिये सम्मानित किया गया।

बहुमुखी प्रतिभा के धनी डॉ॰ अग्निहोत्री श्रेष्ठ वक्ता, समीक्षक और कवि होने के साथ राष्ट्रीय स्वतन्त्रता संग्राम सेनानी भी हैं। आल इण्डिया ओरियण्टल कान्फ्रेंस की वैदिक शाखा के अध्यक्ष और कान्फ्रेंस के उपाध्यक्ष रहे हैं। कई विदेश यात्रायें की हैं। उनके प्रकाशित ग्रन्थों की संख्या 40 से भी अधिक है। वह आज भी युवा के समान सरस्वती-सेवा में रत हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

EASTERN BOOK LINKERS
(Indological Publishers & Book Sellers)
5825, New Chandrawal, Jawahar Nagar,
Delhi-110 007. Phone : 2520287

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar